मीराँ-बृहत्-पद-संग्रह

पद्मावती 'शबनम'

प्रकाशक
लोक सेवक प्रकाशन,
बुलानाला, बनारस।

प्रथम संस्करण
२००४

[मूल्य छ. रुपये]

संवत्
२००६

मुद्रक
प० पृथ्वीनाथ भार्गव,
भार्गव भूषण प्रेस, गायघाट, बनारस।

'शिक्वो'!

'शबनम'

भूमिका

मीराँ के प्रामाणिक पदो के सग्रह का प्रयास इधर कुछ ही दिनो से चल पडा है। इससे पहले मीराँ के नाम से प्रसिद्ध अथवा मीराँ की छाप से युक्त प्राय सभी पद मीराँ रचित मान लिए जाते थे। बात यह थी कि तब तक मीराँ के पद भक्ति-भावना से युक्त साधारण-जनसमाज के लिए गेय पद मात्र थे, उन पदो मे कुछ काव्य-सौन्दर्य, कुछ उच्च भाव-विभूति, कुछ तन्मय कर देने की शक्ति का अनुभव विद्वत्समाज नही कर पाता था, क्योंकि तब तक विद्वत्समाज मे सरल और सहज भाषा मे सरल और सहज अनुभूतियो की सरल और सहज अभिव्यक्ति का महत्व विशेष नही था। ध्वनि-व्यजना और अलकार-वक्रोक्ति की अभ्यस्त सहृदयता ने अनलकृत सहज काव्य-सौन्दर्य की ओर से कुछ ऐसी आँखे मूद ली थी कि मीराँ के इन रससिक्त पदो मे भी हिन्दी के सहृदय कहे जाने वाले विद्वानो को कोई रस नही मिलता था। इसी कारण मीराँ के ये गेय पद साहित्य मे उपेक्षित ही रहे। परतु अब जब कि हिन्दी के कुछ सहृदय विद्वानो को मीराँ के पदो मे रस मिलने लगा है, जब शिक्षित समाज में मीराँ के पदो की चाह बढने लगी है, तब से विद्वानो के मस्तिष्क मे जिज्ञासा और संशय ने घर करना प्रारम्भ कर दिया है। जिज्ञासा ज्ञान-वृद्धि के लिए सबसे बडा वरदान है; इसी जिज्ञासा के वशीभूत हो विद्वान् गहन तत्वो की खोज मे निकल पडता है। मीराँ के प्रति जिज्ञासा की भावना उठते ही उनके पदो के सग्रह की रुचि बढने लगी, उनके जीवन-चरित सम्बंधी विविध प्रश्नो के उत्तर और विविध शकाओ के समाधान ढूंढे जाने लगे, साहित्य, इतिहास और जनश्रुतियो का मथन कर अनेक नयी बाते खोज निकाली गईं। जिज्ञासा के पश्चात् सशय की बारी आई और आधुनिक वैज्ञानिक बुद्धिवाद ने सशय उत्पन्न किया कि मीराँ के नाम से प्रसिद्ध सैकडो सरस और नीरस; साहित्यिक और अनगढ तथा बीहड, अनेक विचार-धारा और भाव-धारा की निर्झरणी तुल्य इन गेय पदो मे स्वय मीराँ की प्रामाणिक रचनाएँ कौनसी है और कितने दूसरो के पद मीराँ के नाम से चल पडे है। मीराँ के नाम से उपलब्ध पदों मे भाषा और भाव, विचार और अभिव्यक्ति की दृष्टि से इतनी भिन्नताएँ दृष्टिगोचर

होती है कि उन सभी को किसी एक की रचना मान लेने मे सदेह होता ही है। अस्तु, विद्वानो ने सशय की कि बागडोर ढीली कर दी। मीराँ के पदो, उनके सम्बध मे प्रसिद्ध कथाओ और जनश्रुतियो पर सदेह करते-करते एक प्रतिष्ठित विद्वान् ने स्वय मीराँ के नाम पर भी सदेह प्रकट किया। उनका कहना है कि मीराँबाई मीराँ के नाम से प्रसिद्ध पदो की गायिका का नाम नही था, परन्तु सतो द्वारा दी गयी उनकी उपाधि मात्र थी। सशय ज्ञानोपलब्धि के लिए एक उपयोगी साधन है, परतु सशय की भी एक सीमा होनी चाहिए। केवल सशय के लिए सशय का कोई महत्व नही।

परतु सदेह करना तो सरल है, उसका समाधान ढूंढ निकालना उतना सरल नही। विशेष रूप से मीराँ के पदो के सम्बन्ध मे यह कठिनाई और भी अधिक है। मीराँ के पद लिखे नही गए थे, वे गाए गए थे। मीराँ भक्त थी, उन्होने भक्ति-भावना के आवेश मे अपने गिरधर नागर की मूर्ति के सामने, अथवा मार्ग पर चलते हुए अथवा वृदावन और द्वारका के मदिरो मे अथवा साधु सतो और महात्माओ के समागम के समय उनके सामने अपने पदो का गान किया था और वे गीत मौखिक परम्परा से बहुत दिनो तक जनता मे प्रसिद्ध रहे। सूर, कबीर, रैदास तथा अन्य सतो और महात्माओ ने भी अपने पद और छद गाए थे, लिखा नही था, परतु उन महात्माओ के शिष्य और सम्प्रदाय वालो ने उन्हीके जीवन काल मे अथवा उनकी मृत्यु के कुछ ही समय उपरात उनकी रचनाओ को लिपिबद्ध कर लिया था जिससे उनकी रचनाओ की प्रामाणिकता बहुत कुछ जाँची जा सकती है। परतु मीराँ का किसी सम्प्रदाय विशेष से सम्बंध नही था, उनकी शिष्य-परम्परा थी ही नही और सतान तथा कुटुम्बी भी उनके नही थे, इसी कारण उनकी रचनाएँ बहुत दिनो तक लिपिबद्ध नही हो सकी, केवल मौखिक परम्परा से ही उनका प्रचलन होता रहा। दूर दूर तक भक्तमडली मे मीराँ के पदो का प्रचार था। राजस्थान, ब्रज और गुजरात मे तो उनके पद गाए ही जाते थे; पंजाब, महाराष्ट्र तथा सुदूर बगाल मे भी मीराँ के पद बडे चाव से सुने और गाए जाते थे। लिपिबद्धता के अभाव और अपेक्षाकृत सुदूर प्रांतो तक प्रसिद्धि और प्रचार के कारण मीराँ के पदो की किस सीमा तक कायापलट हुई होगी, इसका अनुमान लगाना कुछ कठिन नही है।

राजस्थानी, गुजराती और ब्रज के अतिरिक्त मीराँ के नाम से उपलब्ध पदो मे पजाबी, पूर्वी और खडी बोली का मिश्रण इसी कारण मिलता है। पदो के इन मिश्रित, विकृत और परिवर्तित रूपो मे मीराँ के प्रामाणिक पद ढूँढ निकालना असम्भव-सा प्रतीत होता है।

परतु मीराँ के नाम से उपलब्ध पदो मे भाषा-सम्बंधी मिश्रण, विकार और विचित्रताओ से भी अधिक उलझन उत्पन्न करनेवाली भाव, विचार और अभिव्यक्ति की विचित्रताएँ है। मीराँ के पदो मे विचार और अभिव्यक्ति की विचित्रताएँ भी अनेक है। कुछ पदो मे कबीर, रैदास, दादू आदि सत कवियो की विचार-परम्परा की धारा प्रवाहित हुई है, कुछ मे नाथ सम्प्रदाय की विविध मान्यताओ का सकेत है, कुछ पदो मे भागवत पुराण के आधार पर कृष्ण-लीला-सम्बंधी विचारों और भावो की अभिव्यक्ति है, कुछ पद विनय और दैन्य भाव के है, कुछ मे माधुर्य भाव की भक्ति-पद्धति मिलती है और शेष अन्य पदो मे कुटुम्बियो से सघर्ष की परस्पर विरोधी और असगत बातो का वर्णन मिलता है। इन सभी को एक ही मीराँ की रचना मान लेना आज के सशय के युग मे सम्भव नही जान पडता। आज तो हम प्रत्येक कवि की रचना मे एक विशेष प्रकार की विचार-धारा तथा एक विशेष प्रकार की अभिव्यक्ति की खोज करते है और एक ही कवि की रचना मे अनेक प्रकार की विचार-धारा तथा विविध प्रकार की भावाभिव्यक्ति देखकर समालोचको के कान खडे हो जाते है और उनकी सशय वृत्ति को उडान भरने के लिए जैसे पख मिल जाते है। मीराँ के पदो मे अनेक प्रकार की विचार-धारा और अभिव्यक्ति देखकर साधारण रूप से यह विचार उठता है कि किसी एक विशेष विचार-धारा और एक विशेष प्रकार की भावाभिव्यक्ति वाले पद मीराँ की प्रामाणिक रचनाएँ है और शेष सभी पद प्रक्षिप्त और अप्रामाणिक है।

मीराँ के पदो की प्रामाणिकता पर विचार करने के लिए, सुविधा की दृष्टि से, उनके उपलब्ध पदो को प्रतिपाद्य विषय के अनुसार दो भागो मे बाँट लेना होगा। मीराँ की जीवन-सम्बधी सामग्री प्रस्तुत करने वाले पद, जिनमे कुटम्बियो से सघर्ष की अभिव्यक्ति मिलती है, पर्याप्त सख्या मे मिलते है। उनकी प्रामाणिकता के सम्बंध मे सशय करने के पर्याप्त कारण है। इन पदो मे प्राय एक ही बात कितने ही पदो मे

कितनी ही तरह से कही गयी है और जब एक पद की कही बात को दूसरे पदो मे उल्लिखित बातो से मिलाया जाता है तो उनमे प्राय विरोधी, असगत और असम्बद्ध बाते ही अधिक मिलती है। मीराँ का अपने कुटुम्बियो से मतभेद और सघर्ष की बात कालातर से चली आ रही है। नाभादास ने अपने छप्पय मे इसका उल्लेख किया और प्रियादास ने कई कवित्तो मे इस मतभेद और सघर्ष की व्याख्या की। वह मतभेद और सघर्ष मीराँ के जीवन मे किस रूप मे उपस्थित हुआ, उसने क्या-क्या रूप धारण किए, उसका परिणाम क्या हुआ, इन सभी बातो का स्पष्ट उल्लेख मीराँ के पदो मे मिलना कोई आश्चर्य की बात नही है। परतु उस सघर्ष की अभिव्यक्ति मीराँ ने कितनी और किस रूप मे की होगी, यह केवल अनुमान की वस्तु है। सघर्षाभिव्यक्ति के जितने पद उपलब्ध है उनका बहुत थोडा अश ही मीराँ का लिखा जान पडता है। मेरा अनुमान है कि मीराँ का अपने कुटुम्बियो मे मतभेद और सघर्ष परवर्ती काल के कितने ही गीतो और नाटच-रूपको का विषय बन गया था और उन गीतो और नाटच-रूपकों के रचयिता कवि सम्भव प्रमाण[1] द्वारा उस सघर्ष का विकृत और अतिरजित रूप जनता के सामने उपस्थित करते थे। वे ही गीत और नाटच-रूपको के सम्वाद आगे चलकर मीराँ की रचना के रूप मे प्रसिद्ध हो गए। अस्तु, सर्घर्षाभिव्यक्ति के उपलब्ध सभी पदो को मीराँ की प्रामाणिक रचना मानना ठीक नही है।

सघर्षाभिव्यक्ति से इतर मीराँ के पदो मे जो अनेक विचार-धाराएँ और विविध प्रकार की भावाभिव्यक्ति मिलती है, उन सभी को मीराँ की रचना मानना कठिन जान पड़ता है। विशेष रूप से मौखिक परम्परा से प्राप्त मुक्तक रचनाओ मे मिलावट की गुंजाइश सर्वदा बनी रहती है। फिर भी यह असम्भव नही है कि एक ही कवि की रचना मे अनेक प्रकार की

---

१ विद्वानो ने प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्त शब्द, उपमान आदि प्रमाणो के साथ एक सम्भव प्रमाण भी माना है। उदाहरण के लिए शिव और पार्वती का विवाह पुराणो मे वर्णित है; परतु उसमे यह नही लिखा है कि शिव के बाराती कौन थे और शिव को वर रूप मे देखकर पार्वती, मैना, हिमालय आदि ने क्या क्या भाव व्यक्त किए। परतु परवर्ती कवियो ने सम्भव प्रमाण द्वारा शिव की बारात, मैना का खेद आदि का विस्तृत वर्णन किया है। यही है सम्भव प्रमाण।

तन जाउ, मन जाउ, देव गुरुजन जाउ,
प्रान किन जाउ टेक टरति न टारी हौ।
वृन्दाबनवारी बनवारी की मुकुट वारी,
पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौ।

इन सब उल्लेखो से जान पडता है कि नाभादास, ध्रुवदास और देवकवि को मीराँ के जिन पदो को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था उनमे अधिकाश पदो मे पीताम्बरधारी रसिक-शिरोमणि भगवान श्रीकृष्ण की ब्रजलीला का वर्णन गोपी-भाव से किया गया था। इससे यह नही कहा जा सकता कि मीराँ ने केवल कृष्ण-लीला का ही गान किया, सत-परम्परा की रचनाएँ मीराँ ने नही की अथवा नाथ-सम्प्रदाय के प्रभाव से जोगी वाले पद मीराँ के रचित नही है। परतु इससे यह तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि मीराँ की प्रसिद्धि जिन पदो से हुई थी, मीराँ की जो विशिष्टतम रचनाएँ है, मीराँ की जिन रचनाओ की दूर-दूर तक प्रसिद्धि थी, वे रचनाएँ माधुर्य-भाव की भक्ति से पूर्ण भगवान कृष्ण की ब्रज-लीला के गान थे। इसीलिए तो मै मीराँ के कृष्णलीला-सम्बधी तथा माधुर्य भाव के अभिव्यक्ति वाले विरह पदो को मीराँ की सर्वाधिक प्रामाणिक रचना मानता हूँ।

मीराँ के सम्बध मे प्रसिद्ध कुछ जनश्रुतियो से भी यह स्पष्ट है कि मीराँ अपने प्रौढ वय और अतिम काल मे गिरधर नागर भगवान कृष्ण की लीलाओ का गान माधुर्य-भाव से करती थी। वृन्दाबन मे जीव गुसाई (अथवा रूप गोस्वामी) को फटकार और मिलन वाली जनश्रुति से मीराँ के माधुर्य-भाव की स्वीकृति मिलती है और द्वारका मे रणछोड जी के मदिर मे मूर्ति के सामने नाचते-गाते भगवान कृष्ण की मूर्ति मे विलीन होने की जनश्रुति से भी मीराँ के माधुर्य-भाव और कृष्ण-लीला के पद-गान की ही स्वीकृति मिलती है। उपर्युक्त जनश्रुतियाँ चाहे सत्य न भी हो फिर भी इसमे तो कोई सदेह नही है कि साधारण भक्त जनता मीराँ को इसी रूप मे मानती चली आ रही है। मीराँ माधुर्य-भाव के भक्ति की प्रतीक है; अस्तु, विषय और भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से कृष्णलीला के माधुर्य-भाव से पूर्ण पद ही मीराँ की सर्वाधिक प्रामाणिक रचनाएँ मानी जा सकती है।

इसके विपरीत [प्राचीन किसी उल्लेख मे मीरॉं के संत-परम्परा तथा नाथ-सम्प्रदाय के योगियो से प्रभावित होने की बात नही मिलती।] [जनश्रुतियो मे भी केवल एक जनश्रुति मीरॉं को रैदास की शिष्या प्रमाणित करती है]। नाथ सम्प्रदाय के जोगियो के सम्बध मे किसी भी जनश्रुति मे स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। फिर भी यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता कि मीरॉं की वे रचनाएँ जिनपर संत-परम्परा और नाथ-परम्परा का प्रभाव स्पष्ट है, उनकी प्रामाणिक रचनाएँ नही हैं। परतु [इतना तो निर्विवाद रूप से स्वीकार करना पडेगा कि मीरॉं की माधुर्य-भाव की अभिव्यक्ति और कृष्णलीला के पद अपेक्षाकृत सर्वाधिक प्रामाणिक हैं।]

प्रस्तुत पुस्तक मे मीरॉं के सरस पदो से एकात रुचि रखने वाली श्रीमती पद्मावती देवी जी 'शबनम' ने बडे लगन और परिश्रम से काफी दौड़-धूप कर सैकडो नए पद ढूँढ निकाले है। मीरॉं के साहित्य का अध्ययन उनका रुचिकर विषय है और उनके पदो का प्रामाणिक सग्रह प्रस्तुत करना उनकी चिर अभिलषित वस्तु रही है। मुझे पाडुलिपि रूप मे समस्त पदो के देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। मुझे बडी प्रसन्नता है कि देवीजी ने केवल पदो का सग्रह ही नही किया है, भाषा और भाव की दृष्टि से उनका सुचारु रूप से वर्गीकरण भी कर दिया है और राजस्थानी के भाव स्पष्ट करने के लिए फुटनोट मे कुछ कठिन शब्दो का अर्थ भी दे दिया है। विशिष्ट पदो पर टिप्पणियाँ देकर सुयोग्य लेखिका न अपने गहन अध्ययन का परिचय दिया है जिससे पाठक अवश्य ही लाभान्वित होगे।

प्रस्तुत पुस्तक मे कुछ पदो के आठ-आठ दश-दश पाठातर दिए गए है। इतने अधिक पाठातर इस बात को स्पष्ट कर देते है कि मौखिक परम्परा से चलनेवाले पदो मे गानेवाले किस प्रकार परिवर्तन करते चलते है। कभी कभी गाने वाले को केवल भाव की ही स्मृति रहती है और वे उस भाव को अपनी रुचि के अनुसार नए शब्दो का परिधान प्रदान करते है, कभी किसी दूसरे पद के कुछ चरण अन्य पदो मे जुड जाया करते है और कभी शब्द तो वही रहते है, परंतु राग और भाव मे ही परिवर्तन हो जाते है। इस प्रकार के पदो को किसी एक ही पद का पाठातर माना जाय अथवा उनमे से कुछ पद स्वतत्र मान लिए जायँ—इसके लिए कोई

नियम स्थिर करना बहुत कठिन है। यह भी सम्भव है कि स्वय मीराँ ने ही एक ही भाव के कई पद कई स्थानो और अवसरो पर गाए होगे। फिर भी पाठांतर रूप मे देने से उनके तुलनात्मक अध्ययन मे सुविधा होगी, इसमें कोई सदेह नही है।

प्रस्तुत पुस्तक मे देवी जी ने मीराँ के अध्येताओ के लिए बडी मूल्यवान सामग्री दी है जिसके लिए उन्हे जितना भी साधुवाद दिया जाय थोडा है। मुझे आशा है कि इसी प्रकार वे हिन्दी पाठको के लिए अध्ययन और मनन की सामग्री देती रहेगी।

दुर्गाकुंड, काशी,
फाल्गुन कृष्ण द्वितीया,
स० २००८

श्रीकृष्ण लाल

प्राक्कथन

'मीरॉ-बृहत्-पद-सग्रह' जैसे नाम से ही पुस्तक का विषय स्पष्ट है। मीरॉ के पदो के कई सग्रह प्रकाशित हो चुके है तथापि ऐसा कोई सग्रह प्राप्त नही जिस मे मीरॉ के नाम पर प्रचलित प्राय सभी पद और उसके पाठान्तर भी प्राप्त हो सके। अपनी प्रथम पुस्तक, 'मीरॉ, एक अध्ययन' लिखते हुए मुझ को एक ऐसे बृहत्-सग्रह की आवश्यकता प्रतीत हुई अत प्रस्तुत पुस्तक उपस्थित कर के मै ने एक प्रयास किया है। प्रकाशित व अप्रकाशित सग्रहो व मौखिक परम्परा से प्राप्त पद और उन के पाठान्तरो का सग्रह कर मीरॉ के नाम पर प्रचलित सभी पदो को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है तथापि बहुत सुम्भव है कि कुछ पद फिर भी छूट गये हो।

[अद्यावधि प्राप्त मीरॉ का जीवन-वृत्तान्त सुनिश्चित इतिहास की पुष्टता को प्राप्त नही कर सका। भक्त-गाथाओ के रूप मे प्राप्त प्राचीन-साहित्य से भी इस ओर कोई स्पष्ट प्रकाश नही पडता। प्राप्त पदो मे भी कोई स्पष्ट उल्लेख नही मिलता। इतना ही नही, प्राप्त पदो मे अधिकाश की प्रामाणिकता असदिग्ध नही। उपर्युक्त परिस्थितियो मे किसी भी एक आधार पर सर्वथा निर्भर नही किया जा सकता। सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री की समन्वयात्मक विवेचना ही सत्य के सर्वाधिक निकट पड सकती है।]

[प्राप्त सामग्री मे भक्त-गाथाऍ महत्वपूर्ण बहि साक्ष्य सिद्ध होती है। भक्तो की रचनाओ मे सर्व-प्रथम उल्लेख नाभादास कृत 'भक्तमाल' मे मिलता है। नाभादास मीरॉ के सुदृढ भक्ति-भाव की भूरि-भूरि प्रशसा करते है तथापि जीवन-वृत्त पर कोई प्रकाश नही डालते। महाकवि देव भी नाभादास का ही अनुसरण करते है। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका और ध्रुवदास रचित 'भक्तनामावली' मे मीरॉ का उल्लेख है। ये दोनो ही उल्लेख जनश्रुतियो पर आधारित है अत इन पर भी सर्वथा निर्भर नही किया जा सकता। प्रियादास कृत टीका से मीरॉ के विवाह तक उनके माता और पिता दोनो के ही जीवित रहने का प्रमाण मिलता है। मीरॉ की बृन्दावन यात्रा का सर्व-प्रथम उल्लेख भी ध्रुवदास मे ही मिलता है। रघुराजसिह कृत 'भक्तमाल' मे भी मीरॉ का उल्लेख मिलता है। यह ग्रथ भी

प्रियादास कृत 'भक्तमाल' मे प्राप्त जनश्रुतियो का एक विस्तृत सग्रह ही है। भक्त-गाथाओ मे अन्य महत्वपूर्ण ग्रथ 'चौरासी' और 'दो सौ बावन वैष्णवण की वार्ताएँ' है। इन ग्रथो की प्रामाणिकता ही सर्वथा सदिग्ध हैं, तिस पर ये साम्प्रदायिक ग्रथ भी है। इतना ही नही, दोनो ग्रथो मे प्राप्त उल्लेख परस्पर विरोधात्मक भी है। ऐसी स्थिति मे इनको भी निश्चित प्रमाण स्वरूप उपस्थित नही किया जा सकता।

मीराँ का सम्बन्ध राजस्थान के दो विख्यात राजकुलो से था अत मीराँ के जीवन-वृत्त को एक सुदृढ रूपरेखा देने के लिये राजस्थान का इतिहास भी अपेक्षित है।

राजस्थान का इतिहास लिखते हुए कर्नल टाड ने मीराँ के जीवन-वृत्तान्त पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से विचार करने का सर्व-प्रथम प्रयास किया। कर्नल टाड द्वारा हुए इस प्रयास के पूर्व मीराँ का प्राप्त जीवन-वृत्त अलौकिक गाथाओ से परिपूर्ण एक अतिरजित पौराणिक कथा मात्र था। यत्किचित प्राप्त प्रमाण और जनश्रुतियो के आधार पर कर्नल टाड ने मीराँ को राणा कुम्भ की राणी सिद्ध किया। 'एनाल्स एन्ड एन्टीक्वीटीस आफ राजस्थान' देखने से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ के पिता कौन थे इसका निर्णय वे स्वय भी न कर सके। कर्नल टाड के मतानुसार मीराँ को राणा कुम्भ की रानी मानने पर समय की सगति के आधार पर राव दूदा को ही मीराँ के पिता मानना युक्तियुक्त होता है। प्राप्त पदाभिव्यक्तियाँ इसका समर्थन भी करती है।

कर्नल टाड के मत का खण्डन सर्व-प्रथम स्ट्रेटन ने अपनी पुस्तक 'मेवार एन्ड इट्स फेमिलीस' मे किया परन्तु वे भी कोई निश्चित प्रमाण नही देते। तदपश्चात् मुशी देवीप्रसाद ने कर्नल टाड का खण्डन करते हुए मीराँ को राव रत्नसिह की पुत्री और महाराणा साँगा के पुत्र भोजराज की विधवा सिद्ध करने का प्रयास किया। मुशी जी का यह प्रयास भी अपूर्ण व भ्रमाच्छादित ही सिद्ध होता है।

मुंशी जी लिखित 'मीराँबाई का जीवन और उनका काव्य' देखने से ही यह निश्चित हो जाता है कि मुँशी जी स्वय भी सशय मे ही थे। मुंशी जी ने महकमे तवारीख, मेवाड, से प्राप्त दो विभिन्न समाचारो के आधार पर ही चलने का प्रयास किया। प्राप्त दोनो समाचार विरोधात्मक है। अत सर्व-प्रथम उनका आधार ही भ्रमात्मक सिद्ध हो जाता है। इसी तरह मीराँ

द्वारा किये गये विष-पान की कथा भी भ्रमजनक रूप में ही दी गई है। विष-पान से मीराँ की मृत्यु हो जाने और मरते-मरते मीराँ का विष लाने वाले मुसाहिब को श्राप देने की कथा भी देते हैं। मीराँ के इस श्राप से उस मुसाहिब के वश मे आज तक भी धन और जन की एक ही साथ वृद्धि न होने की चर्चा भी करते हैं। तब भी, इस के बाद ही विष-पान जैसी अप्रिय घटना के कारण राव बीरमदेव द्वारा मीराँ को बुला लिये जाने की चर्चा भी करते है। मीराँ द्वारा की गई तीर्थ-यात्राओ की भी चर्चा करते हैं। उनके मतानुसार सम्भवत मीराँ ने दो बार तीर्थ-यात्रा की थी। पहली बार गृह-त्याग के पूर्व और दूसरी बार गृह-त्याग के बाद। दूसरी बार भी वे सम्भवत वृन्दावन होती हुई ही द्वारिका जाती है। भूरिदान भाट के कथन के आधार पर वे मीराँ का मृत्यु सवत् १६०३ मानते है। उपर्युक्त सक्षिप्त विवेचना से मुंशीजी के कथन की अपूर्णता सिद्ध हो जाती है।

फिर भी अन्य सामग्री के नितान्त अभाव के कारण प्राय सभी आधुनिक विद्वानो ने मुंशी जी के मतको ही आधार माना। इस आधार पर अपनी अपनी विवेचना के अनुसार घटना-क्रम के सवतो मे कुछ अन्तर पड़ता है। कुछ विद्वान मीराँ का जन्म वि० १५५५ स० मानते है तो अन्य वि० १५६० स०। भारतेंदु हरिश्चन्द्र मीराँ का मृत्यु सवत् वि० १६३० स० तक खीच ले जाते है। वे भी मेवाड के राजघराने से प्राप्त सामग्री को ही अपने कथन का आधार बताते है। गुजराती साहित्यकारो ने कर्नल टाड का ही समर्थन किया है। बगाल की जनश्रुति व कलाकार-वर्ग भी कर्नल टाड का समर्थन करते हुए मीराँ को राणा कुम्भ की रानी व राव दूदा जी की पुत्री मानते है।

प्रसिद्ध इतिहासकारो ने भी अपने अपने विभिन्न ग्रथो मे मुंशी जी का ही समर्थन किया। अद्यावधि प्राप्त राजस्थान का इतिहास भी अपूर्ण ही है। कविराजा श्यामलदास कृत 'वीर-विनोद', स्व० विद्वान ओझा जी लिखित 'उदयपुर राज्य का इतिहास' और श्री हरिविलास सारडा लिखित महाराणा साँगा मे, प्राप्त विभिन्न उद्धरण परस्पर विरोधात्मक ही हैं। 'मीराँ-स्मृति-ग्रथ' की भूमिका लिखते हुए श्री रामप्रसाद त्रिपाठी लिखते है, "मीराँ का विवाह राणा साँगा के किसी राजकुमार से हुआ। ओझा जी का अनुमान है कि उसका नाम भोजराज था।" अत सहज ही सशय की स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त स्थिति मे पदो से व्यक्त होती भावनाओ और घटनाओ का महत्व विशेष रूपेण बढ जाता है। इस बढी हुई महत्ता के कारण पदो की प्रामाणिकता पर भी विचार कर लेना सर्व-प्रथम आवश्यक हो जाता है। तथाकथित मीरॉ के पदो के सकलन का एकमात्र आधार गेय परम्परा ही रही है। मात्र राजस्थान मे ही नहीं अपितु समस्त उत्तर भारत मे ही ये पद विशेष जन-प्रिय हुए। अस्तु, कही कोई नवीन पद या पदाश मीरॉ के नाम पर चल पडा तो कही मीरॉ के पद ही विशेष परिवर्तनो के साथ चल पडे। अत प्रामाणिक पदो को छॉट लेना असम्भव नही तो भी अत्यन्त दुरूह कार्य अवश्य ही हो गया है। पदो की हस्तलिखित प्रति के सर्वथा अभाव मे इस कार्य की दुरूहता अपनी चरम सीमा को पहुँच गयी। फिर भी भाव और भाषा के आधार पर वर्गीकरण करने से कुछ पदो को निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहना सम्भव हो सकता है। शेष पदो की प्रामाणिकता असदिग्ध नही तथापि कोई ऐसा सूत्र भी प्राप्त नही जिस के आधार पर हम उन को सुनिश्चित रूपेण प्रक्षिप्त या प्रामाणिक कह सके।

वस्तुत मेरी प्रथम पुस्तक 'मीरॉ, एक अध्ययन' ही इस पुस्तक की पृष्ठभूमि है फिर भी प्रस्तुत सग्रह मे किये गये पदो के वर्गीकरण के आधार का एक सक्षिप्त परिचय अप्रासगिक न होगा। तथाकथित मीरॉ के पदो को भाव के आधार पर प्रमुखत दो भागो मे बॉटा जा सकता है। कुछ पद ऐसे है जिन से व्यक्त होती भावनाओ और घटनाओ से जीवन-वृत्त पर एक हल्का सा प्रकाश पडता है। ऐसे पद जीवन-खड के अन्तर्गत रखे गये है। अन्य पदो से व्यक्त होती भावनाओ से विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरो का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है। ऐसे पद उपासना-खड के अन्तर्गत रखे गये है।

जीवन-खड के अन्तर्गत आनेवाले पदो से भी जीवन-वृत्तान्त पर कोई प्रत्यक्ष प्रकाश नही पडता अपितु व्यक्त भावनाओ के आधार पर कुछ घटनाओ व स्थिति का आभास मिलता है। गेय-परम्परा से प्राप्त इन पदो से व्यक्त होती घटनाओ को ज्यो-का-त्यो मान लेना भ्रमात्मक ही सिद्ध होगा अत ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के आधार पर इन घटनाओ की विवेचना आवश्यक हो जाती है। इस विवेचना के लिये प्राप्त पदो को भावाभि-व्यक्ति के आधार पर विभिन्न वर्गो मे बॉट देना आवश्यक है। ऐसे पदो की श्रेणी मे सर्व-प्रथम आने वाले पद वे है जिन मे मीरॉ और

परिवार व समाज के बीच हुए गहरे मतभेद की अभिव्यक्ति मिलती है। परिजनो और मीराँ के बीच हुए गहरे मतभेद और सघर्ष की अभिव्यक्ति नाभादास मे भी मिलती है। अन्य भक्त-गाथाओ व प्राप्त इतिहास मे भी इसका समर्थन मिलता है। समाज मे निन्दा होने के कारण परिवार-वालो ने मीराँ के साधु-समागम का गहरा विरोध किया। पदो से व्यक्त होती इस भावना को इतिहास व भक्त-कथाओ का पूर्ण समर्थन प्राप्त है। ऐसे पद लगभग सभी कथोपकथन और वर्णनात्मक शैली मे प्राप्त है। अधिकाश पदो मे दोनो ही शैलियो का सम्मिश्रण हुआ है। भावावेश मे अपने उद्गारो को गा उठने वाली मीराँ द्वारा इन उपर्युक्त शैलियो मे रचना अयुक्त ही प्रतीत होती है। इन पदाभिव्यक्तियो से स्पष्ट हो जाता है कि यह कथनोपकथन मीराँ व माँ, ननद ऊदाँ बाई, सास और किसी राणा के बीच हुआ है। अद्यावधि मीराँ की माता का उनकी छोटी वयस मे ही निधन हो जाना मान्य है। प्रियादास कृत 'भक्तमाल' की टीका व अन्य उद्धरणो[1] के आधार पर भी पदो से व्यक्त होने वाले इस पहलू को सर्वथा अमान्य नही कहा जा सकता। ननद ऊदाँ बाई या सास के बारे मे भी वर्तमान इतिहास कोई सुनिश्चित हल नही दे पाता है। इसी तरह यह भी सुस्पष्ट नही हो पाता कि पदो मे वर्णित यह राणा कौन थे। पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह राणा मीराँ के पति ही सिद्ध होते है। कुछ पदो (स० ५) मे तो राणा के साथ हुए विवाह का विशद वर्णन भी है। इतना ही नही विभिन्न पदाभिव्यक्तियो से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि इस विवाह कार्य को मीराँ की अनिच्छा और कठिन विरोध की अवहेलना कर सम्पन्न किया जाता है। प्राप्त इतिहास बताता है कि गृह-प्रवेश के साथ ही साथ मीराँ का अन्य परिवारवालो से देवी-पूजा के प्रश्न को लेकर विरोध हो गया था। राजस्थानी प्रथानुसार गृह-प्रवेश के अवसर पर देवी-पूजा का कोई प्रसग ही नही उठता। अस्तु बहुत सम्भव है कि विवाह के प्रति उदासीनता की कथावस्तु ही काला-न्तर मे देवी-पूजा के प्रति उदासीनता की कथा मे परिवर्तित हो गई हो। "लाजै कुम्भा जी रो वैसणो" जैसी कुछ पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह कहा जा सकता है कि पदो मे वर्णित ये राणा सम्भवत मीराँ के पति राणा कुम्भ ही थे। "लाजै दूदा जी रो वैसणो" जैसी अभिव्यक्ति

[1] देखे, 'मीराँ, एक अध्ययन'—मातापिता

से भी इस ओर कुछ प्रकाश पडता है। दूदा जी की पुत्री का राणा कुम्भ के साथ ब्याहा जाना समय के दृष्टिकोण से असगत भी नही ठहरता। यहाँ एक और पहलू भी विशेष विचारणीय है। राजस्थान और बगाल की जनश्रुतियाँ मीराँ को सधवा ही प्रमाणित करती है परन्तु ऐसो क्षेत्रो मे जहाँ मीराँ के साहित्य का प्रचार पिछले कुछ वर्षो मे हुआ है, जनश्रुति मीराँ को विधवा ही मानती है। मीराँ के जीवन का प्रमुख भाग राजस्थान मे व्यतीत हुआ अत वहाँ की जनश्रुति तुलनात्मक दृष्टिकोण से अधिक मान्य है। मीराँ की ख्याति राजस्थान के बाहर बगाल मे ही सर्व-प्रथम फैली, यहाँ तक कि बगाल मे 'भजन' शब्द ही मीराँ के पदो के लिये रूढिरूप हो गया। अत राजस्थान के बाद बगाल की जनश्रुति को ही विशेष महत्व दिया जा सकता है। इन दोनो ही जनश्रुतियो से मीराँ विधवा सिद्ध नही होती। विभिन्न स्थलो पर एक ही रूप मे चलने वाली जनश्रुति नितान्त निराधार हो, ऐसा सम्भव नही प्रतीत होता। भक्त-गाथाओ के आधार पर भी मीराँ का वैधव्य कही से भी लक्षित नही होता। अस्तु, अद्यावधि मान्य इतिहास की अपूर्णता को देखते प्राय सभी पदो से व्यक्त होती उपर्युक्त भावना को कोरी जनश्रुति कह कर कदापि टाला नही जा सकता।

ऐसी कुछ पदाभिव्यक्तियो मे मीराँ के दृढ भक्ति-भाव की भूरि-भूरि प्रशसा भी मिलती है। स्पष्ट ही है कि ऐसी भक्तिमती नारी द्वारा स्वय अपनी प्रशसा असगत ही है। फिर ऐसे पदो की क्रिया तृतीय-पुरुष वाचक है। इस से भी यही लक्षित होता है कि ऐसे पद किसी अन्य की रचना है।

मतभेद द्योतक अधिकाश पद राजस्थानी भाषा मे ही प्राप्त है। कुछ पद ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे और कुछ थोडे से शुद्ध ब्रजभाषा मे भी मिलते है। मतभेद द्योतक पदो मे अधिकाश का राजस्थानी मे पाया जाना सगत भी है। इन राजस्थानी मे प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति पर सतमत का गहरा प्रभाव दृष्टिगोचर होता है जब कि ब्रजभाषा मे प्राप्त पदो पर वैष्णव-प्रभाव ही अधिक स्पष्ट है। ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदो पर दोनो ही मतो का प्रभाव है। भाषा के परिवर्तन के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति मे आया यह गहरा परिवर्तन विशेष विचारणीय है।

प्राप्त पदाभिव्यक्तियो से ही यह प्रत्यक्ष हो जाता है कि यह मतभेद शीघ्र ही कटु सघर्ष मे परिवर्तित हो गया। "ताला चौकी" बिठा कर मीराँ को महलो की सीमा मे बाँध रखने का निष्फल प्रयास बार बार

किया गया। "जहर पियाला", "साँप पिटारा", "सूल सेज" आदि के द्वारा मीराँ की हत्या का षडयन्त्र भी किया गया। उपर्युक्त प्रयासो में निष्फल क्रुद्ध राणा ने स्वय ही मीराँ को "खड्ग" के पार उतारने का प्रयास किया। इन अप्रिय घटनाओ के कारण असतुष्ट हो मीराँ स्वय ही एक दिन पति-गृह त्याग कर अपने पीहर चली जाने को उद्यत होती है। यहाँ पदाभिव्यक्तियाँ विरोधात्मक है। कुछ पदाभिव्यक्तियो से मीराँ का अपने पीहर मेडते पहुँच कर तीर्थ-हेतु जाना सिद्ध होता है, तो अन्य पदाभिव्यक्तियो से बीच रास्ते से ही तीर्थ की ओर मुड जाना सिद्ध होता है। अधिकाश पदाभिव्यक्तियाँ प्रथम मान्यता का ही समर्थन करती है। पति-गृह से असतुष्ट हो कर मीराँ का पितृ-गृह जाना और कालान्तर मे तीर्थ-हेतु प्रस्थान, मान्य इतिहास का एक सुनिश्चित पहलू है। इतना ही नही प्राप्त इतिहास का यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सब विद्वान् एकमत है और इतिहास व पदाभिव्यक्तियो मे भी गहरा सामञ्जस्य है। इस गहरे साम्य के बावजूद भी इस तीर्थयात्रा के लक्ष्य को लेकर दोनो मे गहरा विरोध है। पदाभिव्यक्तियो के आधार पर जहाँ मीराँ का पितृ-गृह त्याग कर सीधे द्वारिका जाना सिद्ध होता है, वहाँ प्राप्त वृत्तान्त द्वारा मीराँ का वृन्दावन होते हुए द्वारिका जाना ही मान्य है। "डाँवो तो छोडयो मीराँ मेडतो, पेलाँ पोखर जाय" (पद स० १, पाठान्तर २) "डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेडतो, पुष्कर न्हावा जाय" (पद स० ७) "डाँवो तो छोडयो मीराँ मेडतो, पूठ दयी चितौड" जैसी अभिव्यक्तियो के आधार पर मीराँ द्वारा की गयी तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्धारित किया जा सकता है। ध्रुवदास रचित 'भक्त नामावली' मे ही मीराँ की वृन्दावन-यात्रा का सर्व-प्रथम उल्लेख है। मुशी देवीप्रसाद भी इस विषय मे अनिश्चित ही है। इतना ही नही, उनके मतानुसार मीराँ ने सम्भवत दो बार तीर्थ-यात्रा की थी। घटना और समय के क्रमानुसार विचार करने पर मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन-यात्रा असम्भव ही सिद्ध होती है।

"इन सरवरिया री पाल" जैसे पदो से उपर्युक्त घटना पर और भी प्रकाश पडता है। ऐसी पदाभिव्यक्तियो से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण राजसी ठाट को छोड कर मीराँ अकेली ही "सरवर के पाल" खडी है। गृह-त्याग कर "पेलाँ पोखर" या "पुष्कर न्हाने" जाने जैसी उपर्युक्त पदाभिव्यक्तियो से लक्षित होनेवाले तीर्थ-यात्रा का मार्ग निर्देश और घटना-क्रम का सामञ्जस्य भी ठीक बैठ जाता है। गृह-त्याग

के बाद मीराँ की मानसिक स्थिति अत्यन्त करुण हो उठी है। "भर भर धोबा धोये नैन, साधाँ रो सग जोवति" मीराँ "आमण दूमणी" हो उठी हैं। अपने दृढ भक्ति-भाव और समर्पण के बाद भी सतत महल-निवासिनी मीराँ का अपने को नितान्त एकाकिनी पाकर क्षणिक आकुलता का अनुभव करना असगत भी नही कहा जा सकता। सम्भव है कि प्राप्त वृत्तान्त और प्राप्त पदो मे सामञ्जस्य की एक कडी सिद्ध होने वाले इन पदो से व्यक्त होती अन्य भावनाओ और घटनाओ का पक्षपात विहीन विश्लेषण इतिहास की सुदृढ रूपरेखा बनाने मे सफल हो सके।

विभिन्न अलौकिक गाथाओ का वर्णन भी इन सघर्ष द्योतक पदो का एक प्रधान अग है। राणा द्वारा मीराँ तक "जहर पियाला" भेजे जाने की कथा प्राय सर्वत्र ही मिलती है। पदाभिव्यक्तियो और प्राप्त सामग्री के आधार पर भी यह सुनिश्चित हो जाता है कि मीराँ के साधु-समागम के कारण फैलती बदनामी के कारण राणा ने मीराँ तक "जहर पियाला" भेजने मे ही अपना कल्याण समझा। अत कुछ लोगो के मतानुसार अपने एक मुँहलगे मुसाहिब के द्वारा और अन्य कुछ किम्बदन्तियो के अनुसार अपनी बहन ऊदाँ बाई के द्वारा यह "पियाला" मीराँ तक पहुँचा दिया जाता है। पदाभिव्यक्तियो से यह प्रकट होता है कि ननद ऊदाँ इस "पियाले" के रहस्य को जानती थी और कई बार मीराँ को इससे आगाह भी कर चुकी थी। नाभादास मे भी मीराँ को बन्धुजन द्वारा दिये गये विष की चर्चा मिलती है। इस विष-पान का प्रभाव मीराँ पर क्या पडा, यह सर्वथा अनिश्चित ही है। मुंशीजी भी दोनो ही मान्यताओ का उल्लेख करते है। एक मान्यता के अनुसार मीराँ की मृत्यु हो जाती है और मरते मरते वे विष लानेवाले राणा के मुँहलगे मुसाहिब को श्राप देती है, जिस के कारण आज तक भी उस मुसाहिब के वश मे धन और जन की बृद्धि एक साथ नही हो पाती। दूसरी मान्यता के अनुसार मीराँ किसी रहस्यमय तरीके से बच जाती है और जब उनके पितृव्य बीरमदेव को इस अप्रिय घटना का पता चलता है तो मीराँ को लिवा ले जाते है। परन्तु यहाँ भी साधु-समागम मे गहरी रोक-टोक है। अत एक दिन मीराँ दोनो ही कुलो और सम्पूर्ण राज वैभव को "तजि बटुक की नाई" चली जाती है अपने आराध्य के आश्रय मे। अस्तु, यही सम्भव प्रतीत होता है कि मीराँ ने अपने जीवन की किसी घटना का विष-पान के रुपक मे वर्णन किया हो और नाभादास ने भी

उसकी चर्चा ठीक उसी रूप मे कर दी हो और कालान्तर मे कवि-हृदय का यह सत्य ही जनश्रुतियो मे वस्तुत सत्य बन गया हो। जो भी हो, यह तो निश्चित है कि विष-पान की जनश्रुति अन्य जनश्रुतियो से बहुत पुरानी है क्योकि नाभादास मे भी इस की चर्चा मिलती है।

"सूल सेज" और "सॉप पिटारा" भेजे जाने की अथवा "खड्ग" से हत्या के प्रयास की जनश्रुतियो का वर्णन रघुराजसिह कृत 'भक्तनामावली' मे भी प्राप्त नही होता। अत यह सिद्ध हो जाता है कि इन का प्रचलन बहुत बाद मे हुआ है। फिर, एक ही कथा के कई विभिन्न रूप भी पाये जाते है। अत उनकी प्रामाणिकता और भी सदिग्ध है। उदाहरणार्थ "सॉप पिटारा" की कथा है। यह सॉप कही "सालिगराम की बटिया" मे, कही "चन्दन हार" मे और कही "मोतीडारो हारो" मे भी परिवर्तित हो जाता है। इन उपर्युक्त कथाओ के द्योतक कुछ इने-गिने पद वर्णनात्मक शैली मे ही प्राप्त है। अस्तु, ऐसी कथाओ को मीरॉ के प्रति भक्तो की अतिरजित श्रद्धाजलि मात्र ही कहा जा सकता है।

अभिव्यक्ति के आधार पर अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होनेवाले ये सघर्ष द्योतक सभी पद राजस्थानी मे ही प्राप्त है। उपर्युक्त विभिन्न समूहो मे यही एक ऐसा समूह है जिसके पद केवल राजस्थानी मे ही प्राप्त है। इन प्राप्त पदो मे कुछ पद तो ठेठ पुरानी राजस्थानी मे प्राप्त है और शेष पदो की भाषा आधुनिक राजस्थानी है।

मतभेद और सघर्ष द्योतक लगभग सभी पद वर्णनात्मक और कथोपकथन की मिश्रित शैलियो मे प्राप्त है। शैली के आधार पर ये पद नौटकियो के पद्यबद्ध वार्तालाप कहे जा सकते है। पारस्परिक वार्तालाप के बीच-बीच मे कथा-वस्तु का वर्णन नौटकियो के लिये आवश्यक भी सिद्ध होता है। नौटकियो और रामलीला आदि करने वालो मे ऐसी परम्परा प्रचलित भी है। अपनी पुस्तक 'मीरॉ बाई' मे पृष्ठ ११ पर डा० श्री कृष्णलाल लिखते है, "मध्यकालीन भारत मे प्रमुख भक्तो और महापुरुषो की स्मृति अनेक गीतो, कथा-वार्ताओ और प्रसगो तथा रूपको द्वारा जीवित रखी जाती थी। कवि और गायक गीतो और पदो मे उन महात्माओ की कीर्ति गाते फिरते थे। वृद्धगण उनके सबन्ध मे अनेक कथा और प्रसग उत्सुक श्रोताओ को सुनाते रहते थे और सगीत अथवा छंदबद्ध वार्तालापो मे उनके जीवन के प्रमुख प्रसंग रूपको के रूप मे प्रदर्शित किए जाते थे।" अस्तु, उपर्युक्त श्रेणी के पद

अपने प्रचलित रूप मे तो प्रमाणिक कदापि नही माने जा सकते है। तब भी, सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री मे सामञ्जस्य की एक कडी सिद्ध होनेवाले इन पदों की अभिव्यक्ति की सर्वथा अवहेलना भी नही की जा सकती। एक मध्य-मार्ग को अपना कर ही इस गम्भीर समस्या का हल निकाला जा सकता है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्राप्त पदाभिव्यक्तियो और प्राप्त सामग्री की मनोवैज्ञानिक आलोचना ही प्रस्तुत समस्या का एकमात्र हल हो सकती है।

यहाँ, प्रचलित जनश्रुतियो पर विचार कर लेना भी अप्रासगिक न होगा। ऐतिहासिक जनश्रुतियो का नितान्त निराधार रूपेण चल पडना सम्भव नही प्रतीत होता। सूक्ष्मातिसूक्ष्म आधार को कल्पना और भावना के आधार पर अतिरजित और अलौकिक बनाया जा सकता है, परन्तु आधार के नितान्त अभाव में ऐसा सम्भव नही प्रतीत होता, विशेषत जब विभिन्न पदाभिव्यक्तियो में कथा एक ही रूप मे मिलती हो। मीराँ की यात्राओ का मार्ग-निर्देश करने वाली विभिन्न पदाभिव्यक्तियो से एक ही तथ्य प्रकट होता है। इतना ही नही, प्राप्त भक्त-गाथाएँ, पदाभिव्यक्तियाँ और जनश्रुतियो का सम्मिश्रण ही हमारे मान्य इतिहास का एक महत्वपूर्ण आधार है। अस्तु, इतिहास की सुदृढ रूपरेखा तय्यार करने के लिये सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री की समन्वयात्मक आलोचना अत्यावश्यक हो जाती है।

प्राप्त पदो मे सर्वाधिक सख्या ऐसे पदो की है जिनकी अभिव्यक्ति वियोगात्मक है। ऐसे कुछ पदो में सघर्ष की भी अभिव्यक्ति मिलती है परन्तु अधिकाश पदो से मात्र वियोग ही लक्षित होता है। वियोग की यह अभिव्यक्ति अधिकाश सघर्ष-द्योतक पदो मे भी मिलती है। अत प्रस्तुत पुस्तक मे मतभेद द्योतक पदो के बाद ही वियोग द्योतक पद और तब संघर्ष द्योतक पद रखे गये है, परन्तु प्रस्तुत विवेचना में इस क्रम को बदल कर सघर्ष द्योतक पदो की चर्चा पहले ही कर दी गई है क्योकि उपर्युक्त दोनो भावाभिव्यक्ति द्योतक पदो की विवेचना के कई पहलू सर्वथा एक है और शेष मे भी गहरा साम्य है।

सघर्ष द्योतक पदो मे प्राप्त वियोगाभिव्यक्तियो मे वह भाव-गाम्भीर्य नही जो वियोग द्योतक पदाभिव्यक्तियो की विशेषता है। ऐसी पदाभिव्यक्तियो से विरह-व्याकुला नारी की सुरुचिपूर्ण भोजन, भवन और शृङ्गारादि के प्रति गहरी उदासीनता ही लक्षित होती है। नौटकियो की शैली में प्राप्त पदो मे भाव-गाम्भीर्य ही कृत्रिम सिद्ध होता।

वियोग द्योतक पदो मे "दरद की मारी" नारी की करुण. आतुरता का अति गम्भीर व सुन्दर चित्र खीचा गया है। अन्य भक्त-कवियो मे भी विरहाभिव्यक्ति मिलती है। वैष्णव-साहित्य राधा-कृष्ण के प्रेम और वियोग के गीतो से परिपूर्ण है तो सत-साहित्य भी इस वियोगाभिव्यक्ति से रिक्त नही। "राम की बहुरिया" बने हुए कबीर की वियोगाभिव्यक्ति कही कही नारी हृदय की सहज वियोगाभिव्यक्ति के समकक्ष आ जाती है। इतने पर भी, "सूनी सेज न कोई" या "तेरा साँइयाँ तुझ्झ मे" जैसी भावनाओ का एक अन्तश्रोत सतत् लक्षित होता रहता है। मीराँ की विरहाभिव्यक्ति इन दोनो से ही सर्वथा भिन्न पडती है। यहाँ न तो वैष्णव साहित्य की अतिशयोक्ति है न सत-साहित्य का तत्व-चिन्तन। यहाँ तो केवल एक ऐसा दर्द है जिसको कोई नही जानता और शायद जान भी नही सकता। मीराँ स्वय ही कहती है —

"दरद की मारी मै बन बन डोलूं, मेरो दरद न जाने कोय।
घायल की गति घायलया जाने, की जिन लाई होय।"
"को विरहणी को दुख जाणे हो।
जा घट विरहा सोई लखि है, कै कोई हरिजन मानै हो।"

यह दर्द भी सम्पूर्ण मानव-भावनाओ से ओतप्रोत है। इस मे खीज है, उपालम्भ है, मनावन है और है आत्म-समर्पण, जो सर्वोपरि है। मीराँ के आँसू गोकुल मे बाढ नही लाते अपितु वे भी "मोतियन की माल" बन जाते है, शायद आराध्य की पूजा हेतु ही। विरहाकुला गोपियाँ मधुबन को आराध्य के वियोग मे भी हरा भरा रहने के लिये धिक्कारती है परन्तु मीराँ स्वय अपने कठिन हृदय को ही धिक्कारती है जो आराध्य के वियोग मे अब तक भी फट नही गया —

"पिड माँ सू प्राण पापी, निकस क्यूँ नही जात।"

परन्तु यहाँ भी कितनी बडी विवशता है। आराध्य के दर्शनो के लोभ मे ही प्राण अब भी अटके हुए है —

"सावण आवण कहि गया रे, हरि आवण की आस।
रैन अधेरी बीज चमकै, तारा गिणत निरास।
लेई कटारी कठ सारूँ, मरूँगी जहर विष खाई।
मीराँ दासी राम राती, लालच रही ललचाइ।"

मीराँ द्वारा की गई इन गम्भीर विरहाभिव्यक्तियो मे किसी व्यक्तिगत

दाम्पत्य ,सम्बन्ध को व्यक्त करने वाला अन्तश्रोत पुन पुन लक्षित हो उठता है। अस्तु, श्री परशुराम 'जी चतुर्वेदी के शब्दो मे कहा जा सकता है कि "मीराँबाई के इष्टदेव सगुण व साकार श्रीकृष्ण थे।"[1] वियोगाभिव्यक्ति द्योतक पद राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, ब्रज, गुजराती, पजाबी और खडी बोली आदि विभिन्न बोलियो मे प्राप्त है। राजस्थानी और ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति लगभग एक ही सी पडती है। ये अभिव्यक्तियाँ हृदय-गत भावनाओ के छद-अलकार-विहीन शुद्धतम चित्र है। इनकी अभिव्यक्ति मे एक तडप है, एक टीस है। अधिकाश पदो मे अपने इष्टदेव से शीघ्रातिशीघ्र दर्शन देने के लिये अति करुण प्रार्थना की गई है। ऐसे कुछ पदो पर नाथ-पथ का हल्का-सा प्रभाव भी दृष्टिगोचर होता है। ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त कुछ पदो पर सतमत का भी प्रभाव मिलता है। ऐसे कुछ पदो मे गुरु की चर्चा मिलती है। एक पद मे मीराँ अपने गुरु का नाम रैदास बताती है। ब्रजभाषा मे प्राप्त पद साहित्यिक सोन्दर्य का विशेष रूपेण सृजन करते है। यहाँ तक कि कुछ पद तो सूरदास के पदो से भी होड लेते से प्रतीत होते है। ऐसे अधिकाश पदो मे पौराणिक गाथाओ का ही वर्णन है। हिन्दी की अपूर्व गायिका मीराँ की महत्ता एक कवयित्री के रूप मे नही अपितु एक भक्तिमती नारी के रूप मे ही है। हृदय-गत भावनाओ की सहज सरल अभिव्यक्ति के कारण ही ये पद इतने अधिक जन-प्रिय हो सके है।

मीराँ का वृन्दावन-गमन और निवास बहु-मान्य होते हुए भी असदिग्ध नही। प्राप्त सामग्री मे घटना ओर समय के क्रमो मे असम्बद्धता स्पष्ट ही है। शास्त्रीय शिक्षा का सुअवसर भी मीराँ को प्राप्त हुआ हो, ऐसा भी प्राप्त सामग्री से स्पष्ट नही होता। अस्तु, विशुद्ध ब्रजभाषा मे उच्चकोटि के ये कुछ पद प्रामाणिक रूपेण मीराँ की रचना हो या न हो, पर हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि निस्सदेह ही है।

गुजराती मे प्राप्त अधिकाश पदो की अभिव्यक्तियो मे विरोधाभास और पूर्वापर सबध का अभाव है। इन मे वह भाव-गाम्भीर्य भी नही जो मीराँ के पदो की विशेषता है। पजाबी मे दो और खडी बोली में एक पद प्राप्त है। इनकी अभिव्यक्ति भी बहुत हल्की पडती है।

---

१ 'मीराँ-स्मृति-ग्रथ'—'सतमत और मीराँ' पृ० ४६३।

मिलन जनित आनन्द को व्यक्त करने वाले कुछ पद उपर्युक्त सभी भाषाओ मे प्राप्त है। इनमे से अधिकाश ब्रजभाषा मे ही है। "बहोत दिनाँ की जोवती, बिरहिन पिव पाया जी" जेसी पदाभिव्यक्ति ही इन पदो की विशेषता है। ऐसे कुछ पदो से बैष्णव मत का प्रभाव सुस्पष्ट है शेष से सतमत का प्रभाव ही व्यक्त होता है तथापि उमडते हुए आनन्द की सहज अभिव्यक्ति ही इनकी विशेषता है। शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा मे प्राप्त सतमत से प्रभावित इन पदो की प्रमाणिकता विशेष-विचारणीय है।

आराध्य के प्रति एक गहरा समर्पण ही मीराँ की विशेषता है। ऐसे अनुभूति-द्योतक कुछ थोडे से पद प्राप्त होते है। राजस्थानी मे ऐसे दो पद प्राप्त है जिनमे एक, "मीराँ रग लाग्यो हरि" की प्रामाणिकता विशेष विचारणीय है। ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त दोनो पदो की प्रामाणिकता भी असदिग्ध नही। ब्रजभाषा मे प्राप्त पदो की कुछ अपनी विशेषताएँ भी है। इनकी अभिव्यक्ति के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यद्यपि मीराँ को समाज और स्वजनो से गहरी लाछना ही मिली थी तथापि किसी एक वर्ग से गहरा समर्थन और सम्मान भी मिला था।

"कोई कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहै कुलनासी।
कोई कहै मीराँ दीप आगरी, नाम पिया सूँ रसी।"

लोक-निन्दा और पारिवारिक कटुता की सर्वथा अवहेलना करते हुए अपने निर्धारित मार्ग पर दृढ रहने की अभिव्यक्ति ही इन पदो की दूसरी विशेषता है। अवधी और गुजराती मे भी समर्पण द्योतक कुछ पद प्राप्त होते है परन्तु भाव और भाषा के आधार पर इनकी प्रामाणिकता सर्वथा सदिग्ध ही प्रतीत होती है। इन विभिन्न भाषाओ मे प्राप्त समर्पण-द्योतक अधिकाश पदो पर सतमत का ही विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। ऐसे अधिकाश पदो मे "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर" जैसी टेक-परम्परा "यूँ कहै मीराँ बाई", "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा" आदि विभिन्न प्रयोगो मे परिवर्तित हो गई है।

कुछ पदो मे यह परम्परा 'मीरा दासी', 'दासी मीरा', 'मीरा दास' और 'जन मीराँ' मे भी परिवर्तित हो गई है। ऐसे पद अन्य सभी प्राप्त पदो से सर्वथा भिन्न पडते है। इन पदाभिव्यक्तियो से मीराँ के जीवन पर बहुमुखी प्रकाश पड़ता है। ऐसी अभिव्यक्तियो से विभिन्न घटना-क्रम के

साथ ही साथ विभिन्न धार्मिक मतो का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है। ऐसे पदो मे सर्वाधिक सख्या उन पदो की है जिनकी अभिव्यक्ति वियोगात्मक है और जो नाथ-पथ से विशेष प्रभावित है। विशेषत इन्ही पदाभिव्यक्तियो के आधार पर मीरॉ के इष्टदेव "सगुण व साकार" प्रतीत होते है।

राजस्थानी मे प्राप्त 'दासी' ओर 'जन' छाप युक्त अधिकाश पदो मे विरहाकुला नारी की आराध्य से शीघ्र दर्शन देने की आतुर प्रार्थना है। ऐसे अधिकाश पदो पर विभिन्न धार्मिक मतमतान्तरो का कोई विशेष प्रभाव नही दीखता तथापि एक पद (स २८३) से सतमत का और कुछ पदो से विभिन्न पौराणिक गाथाओ का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। पद स० २८४ ही एक ऐसा पद है जिसमे रणछोड जी का वर्णन हुआ है।

ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे प्राप्त पदाभिव्यक्ति भी वियोग-द्योतक ही है। इन पदो पर पौराणिक गाथा और नाथ-पथ का समान रुपेण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

ब्रजभाषा मे प्राप्त ऐसे पदो पर सतमत का ही विशेष प्रभाव है। इन पदाभिव्यक्तियो से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ख्याति फैलने के बाद परिवारवालो से मीराँ को सम्मान मिला।

"कुल कुटुम्बी आन बैठे, मनहुँ मधुमासी।
दास मीरा लाल गिरधर, मिटी जग हाँसी।"

यह एक विशेष विचारणीय पहलू है। अन्य कुछ पदो से आनन्द और दृढ भक्ति-भाव भी लक्षित होता है। कुछ पदो पर पौराणिक गाथाओ का भी प्रभाव मिलता है परन्तु ऐसे पदो मे भाव-गाम्भीर्य नही है।

गुजराती मे प्राप्त पदो मे पौराणिक गाथाओ के साथ ही निर्वेद की भी अभिव्यक्ति मिलती है। पजाबी मे एक ही पद प्राप्त होता है जिसकी भी प्रामाणिकता सदिग्ध ही है।

'दास' और 'जन' प्रयोग की परम्परा अन्य भक्त-कवियो में भी प्राप्त होती है। एच० एच० विलसन के मतानुसार दक्षिण भारत मे 'मीराँ दासी' सम्प्रदाय की स्थापना हुई थी। श्री नटवर नडियाल भी अपनी पुस्तक मे इस सम्प्रदाय की कुछ चर्चा करते हैं। अन्यत्र कही कोई ऐसा स्पष्ट उल्लेख नही मिलता जिसके आधार पर इस सम्प्रदाय का इतिहास जाना जा सके।

हिन्दी जगत् मे मीरॉ सर्व-प्रथम एक भक्तिमती नारी के ही रूप मे आती है। इनके नाम पर प्रचलित विभिन्न पदो से विभिन्न धार्मिक

भावनाओ का प्रभाव सुस्पष्ट होता है। विक्रम की १५, १६ और. १७वी शताब्दियो का युग विभिन्न धार्मिक भावनाओ से आलोडित एक अपूर्व युग था। इस युग मे प्रस्फुटित होती प्रेरणा ब्राह्मणो द्वारा प्रसारित पौराणिक युग-धर्म व इनकी रूढियो को एक गहरी चुनौती थी। इस युग मे एकेश्वरवाद के शुष्क सिद्धान्तो और प्रचलित कर्मकाण्ड का सर्वथा खण्डन करने वाली एक अद्भुत व अभूतपूर्व धार्मिक प्रवृत्ति का उदय हुआ। यह प्रवृत्ति मानव-हृदय की रस-सिक्त सहज भावनाओ के अधिक निकट पडी। नवीन उदित होने वाली इस प्रवृत्ति मे तत्व-चिन्तन और आत्मज्ञान के शुष्क सिद्धान्तो के प्रति गहरी उदासीनता थी तो ब्राह्मणो द्वारा प्रसारित कर्म-काण्ड मे भी कोई आस्था नही थी। इतना ही नही, बौद्धो की सेवा, दया और जीव-मात्र के प्रति प्रेम के सिद्धान्तो से भी पूर्ण सतोष न था। व्यक्तिगत हृदय की प्रवृत्तियाँ ही इस नवीन धर्म की नीव थी। यह धर्म व्यक्ति का धर्म था। आराध्य के प्रति एकान्त समर्पण ही इसकी विशेषता थी। इसी धर्म को पडितो ने भक्ति-धर्म की सज्ञा प्रदान की। इस भक्ति-धर्म का उद्गम कब और कहॉ हुआ, यह निश्चित रूपेण नही कहा जा सकता यद्यपि श्रीमद्भागवत् मे ही इसका सर्व-प्रथम स्पष्ट उल्लेख मिलता है। गीता मे प्रतिपादित भक्ति-धर्म मे और जन-समुदाय मे प्रसारित भक्ति धर्म के मूल सिद्धान्तो मे ही गहरा अन्तर है। गीतानुमोदित भक्ति-मार्ग मे ज्ञान और कर्म भी सर्वथा अपेक्षित है परन्तु जनता मे प्रचलित इस धर्म मे नारद के भक्ति-सूत्र तथा भागवत के अनुकूल विशुद्ध भावमय मार्ग ही अपेक्षित है। पूर्ण शान्ति और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति ही इसका लक्ष्य था। जनता मे इस धर्म को प्रसारित करने का श्रेय दक्षिण भारत के वैष्णव गायक-कवि अलवारो को प्राप्त है। "जॉति पॉंति पूछै नही कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" जैसी भावना को जन्म इन्ही अलवार साधको से मिला। ये स्वय जाति-बहिष्कृत थे और शूद्रो व जाति-बहिष्कृतो को भी उपदेश देते थे। इन अलवार कवियो के सुमधुर गान से प्रस्फुटित होने वाली इस विशुद्ध भक्ति-भावना ने कालान्तर मे पडितो और विचारको को भी प्रभावित किया। फलत हृदयगत भावनाओ से उद्भासित इस धर्म का भी एक शास्त्र बन गया। विभिन्न यम-नियम और दार्शनिक सिद्धान्तो के आधार पर एक गहरा वितण्डावाद खडा हो गया जो भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। रामानुज इस आन्दोलन के प्रमुख आचार्य थे।

क्रमश - यह आन्दोलन दक्षिण भारत मे उत्तर भाग्त की ओर प्रसारित होने लगा। उत्तर भारत मे इसके अग्रगण्य नेता थे रामानन्द, जिन्होंने काशी को अपना क्षेत्र बनाया।

"भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानन्द।
प्रकट करी कबीर ने, सप्त दीप नौ खड।"

उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होते हुए इस नवीन आन्दोलन के प्रभाव से राजस्थान भी अछूता न रह सका। राजस्थान में प्रत्येक प्रचलित धर्म को राजाश्रय प्राप्त हुआ तथा विचार-स्वातन्त्र्य का पूर्ण अनुमोदन हुआ। फलत. एकलिंग और भवानी के उपासक राणा-परिवार मे भी महाराणा कुम्भ वैष्णव भक्ति के रग मे रग कर राधा-कृष्ण के प्रेम-गीत गा उठे तो दूसरी ओर "अकबर के गर्ब दलनहार और चितोड के जोद्धार" वीर श्रेष्ठ जयमल भी परम वैष्णव सुविख्यात हुए। चितौड की महाराणी झाली ने भी रामानन्द के शिष्य कबीर के गुरुभाई चर्मकार रैदास को अपना गुरु स्वीकार करने मे गौरव का ही अनुभव किया। राजस्थान, इस युग मे प्रवाहित होनेवाली इन तीनो ही विभिन्न धाराओ का सगमराज बना हुआ था। अस्तु, मीराँ की रचना पर भी तीनो ही विभिन्न धाराओ का प्रभाव का पाया जाना स्वाभाविक ही सिद्ध होता है। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि मीराँ अपने युग की प्रतिनिधि कवयित्री थी।

प्राप्त पदो मे तीनो धाराएँ इतनी स्पष्ट है कि इनको बड़ी सरलता से छाँटा जा सकता है। कृष्ण-भक्ति के कारण ही मीराँ की सर्वाधिक ख्याति हुई। अत वैष्णव-परम्परा से प्रभावित पदो पर ही सर्व-प्रथम विचार कर लेना उचित होगा।

वैष्णव-परम्परा से प्रभावित पदो को भी दो विभिन्न प्रभेदो मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम समूह उन पदो का है जिनसे निर्वेद की भावना झलकती है। इनमे ससार के सुख और सम्बन्धो को मोह जनित और नश्वर मान कर उनकी ओर से एक गहरी उदासीनता और परमात्मा के शरणागत होने पर ही पूर्ण शान्ति और आनन्द की प्राप्ति सम्भव होने की ही अभिव्यक्ति मिलती है। ये पदाभिव्यक्तियाँ अधिकाशतः उपदेशात्मक है। कुछ पदों पर विभिन्न पौराणिक गाथाओ का प्रभाव भी मिलता है। ऐसे पद राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, ब्रज, गुजराती और खडी बोली मे भी पाये जाते है। इन पदो मे से अधिकाश की प्रामाणिकता सदिग्ध ही है। खड़ीबोली मे प्राप्त पदो को भाषा के आधार पर निश्चित-

रुपेण प्रक्षिप्त कहा जा सकता है। गुजराती मे प्राप्त अधिकाश पद भी भाव और भाषा के आधार पर प्रामाणिक नही प्रतीत होते है। राजस्थानी और ब्रज मिश्रित राज्स्थानी मे प्राप्त अधिकाश पदो मे पूर्वापर सबध का और अर्थ-सगति का सर्वथा अभाव है। अस्तु, ऐसे अधिकाश पदो को तो प्राप्त रूप मे प्रामाणिक मान लेना सगत नही सिद्ध होता।

वैष्णव परम्परा से प्रभावित अन्य पदो पर पौराणिक गाथाओ का का विशेष प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वियोगाभिव्यक्ति द्योतक पदो के बाद सर्वाधिक सख्या इन्ही पदो की है। इनमे भी बहुसख्यक पद राधा-कृष्ण की प्रेम-लीला और बॉसुरी-वर्णन के ही है। इसी वर्ग के पद सर्वाधिक विभिन्न प्रान्तीय बोलियो मे भी प्राप्त है। राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, ब्रज, गुजराती, अवधी, भोजपुरी आदि बोलियॉ इन पदो की भाषा है। निर्वेदाभिव्यक्ति द्योतक पदो की तरह ही इन मे भी अधिकाश मे पूर्वापर सबध और अर्थ-सगति का अभाव है। अत बहुत सम्भव है कि इनमे से अधिकाश पद प्रामाणिक न हो। 'मीर माधो', 'रैदास' आदि अन्य भक्त कवियो के पद भी मीरॉ के नाम पर चल पडे है। सर्वाधिक सख्या मे 'चन्द्रसखी' के पद ही मीरॉ के पदो से मिल कर मीरॉ के ही नाम पर चल पडे है। राजस्थान के इस जन-प्रिय कवि का साहित्य और वृतान्त दोनो ही गहरे अन्धकार मे है। मीरॉ के पदो की तरह इनके सकलन का भी एकमात्र आधार लोक-गीत ही है। लोक-गीतो की यह परम्परा भी बडे वेग से लुप्त हो रही है। अत समय रहते ही सकलन हो जाने की अत्यधिक आवश्यकता है। प्रस्तुत सग्रह को तय्यार करने के प्रसग मे ही 'चन्द्रसखी' के कुछ पदो को सकलित करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। ये लगभग सौ पद है। इन प्राप्त पदो से 'चन्द्रसखी' के व्यक्तित्व या जीवन-वृतान्त पर कोई प्रकाश नही पडता। ऐसी भी एक मान्यता है कि सम्भवत मीरॉ ने ही इस उपनाम से रचना की परन्तु ऐसी मान्यता का कोई आधार नही। 'चन्द्रसखी' नामक यह भक्त कौन थे और कब हुए थे यह जानने का कोई भी सूत्र अद्यावधि उपलब्ध नही। इनकी प्रामाणिक रचनाओ को भी छॉट लेने का भी कोई आधार नही। जो भी हो, प्राप्त पदो के आधार पर इतना तो निश्चित-रुपेण ही कहा जा सकता है कि 'चन्द्रसखी' और मीरॉ के कुछ पदो मे भाव और भाषा का गहरा साम्य है। इतना ही नही, कुछ पद तो एक दूसरे

के गेय-रुपान्तर ही प्रतीत होते है, तो अन्य कुछ पदो मे शब्दावली भी हूबहू एक ही है। उपर्युक्त परिस्थिति मे यह कहना सम्भव नही कि कौन पद मौलिक रूपेण किसका है। इतने पर भी, 'चन्द्रसखी' के पदो मे प्राप्त "चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि" जैसी टेक के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'चन्द्रसखी' की भक्ति वात्सल्य-भाव की ही थी। मीराँ अपनी माधुर्य-भाव की भक्ति के लिये ही प्रसिद्ध हुई। सम्भवत इस आधार पर कुछ पदो को छाँट लेने का प्रयास सफल हो सके।

तथाकथित मीराँ के कुछ पदो से सतमत का प्रभाव विशेप रूपेण स्पष्ट हो जाता है। मतभेद, सघर्ष वियोग, आनन्द, समर्पण आदि सभी विभिन्न भावाभिव्यक्ति द्योतक पदो से भी सतमत का प्रभाव लक्षित होता है। 'दासी' और 'जन' प्रयोग युक्त पदो मे भी कुछ थोडे से पद सतमत से प्रभावित मिल जाते है। कुछ पदो मे मीराँ अपने गुरु का नाम रैदास बताती है। मुँशी देवीप्रसाद के आधार पर मीराँ को भोजराज की विधवा मान लेने पर मीराँ और रैदास दोनो के जीवन-काल मे लगभग सौ वर्ष का अन्तर पड जाता है। अत रैदास का मीराँ का गुरु होना सर्वथा ही असम्भव हो जाता है परन्तु मु शी देवीप्रसाद का कथन भी सर्वथा प्रामाणिक नही सिद्ध होता। असम्भव नही कि मीराँ राव दूदा जी की पुत्री और राणा कुम्भ की ही राणी हो। जनश्रुतियाँ और पदाभिव्यक्तियाँ इसका समर्थन करती है तथा इतिहास सुनिश्चित न होते हुए भी विरोधात्मक नही। सर्व-मान्य है कि मीराँ का विरोध कृष्ण-पूजा के हेतु नही अपितु कुलमर्यादा के विरुद्ध पडने वाले साधु-समागम के कारण हुआ। अस्तु, अद्यावधि इन रचनाओ को निश्चित रूपेण प्रामाणिक या प्रक्षिप्त कहना युक्तियुक्त न होगा। फिर भी, प्रामाणिक पदो के छाँट लेने के लिये ही भाव-भाषा के आधार पर इनका विश्लेषण आवश्यक हो जाता है। राजस्थानी, ब्रज मिश्रित राजस्थानी, और ब्रज तीनो ही भाषाओ मे सतमत से प्रभावित पद प्राप्त होते है। संतमत से प्रभावित शुद्ध ब्रजभाषा मे प्राप्त इन कुछ पदों की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध ही प्रतीत होती है। ऐसे अधिकाश पदो मे अर्थ-संगति और पूर्वापर सबध का अभाव है, फलत. उपर्युक्त सदेह को एक और समर्थन मिलता है।

वैष्णव और सतमत से प्रभावित इस राणापरिवार मे एकलिङ्ग और भवानी की पूजा का महत्व सदा ही अक्षुण्ण रहा। एकलिग के पुजारी

नाथ-पंथानुयायी जोगी ही हुआ करते थे। राज-परिवार पर नाथ-पथ के इस गहरे प्रभाव के रहते हुए भी जनता इससे विमुख हो चली थी। जनता में नाथ-पथ और उसके योगियो के प्रति आदर-सम्मान नही रह गया था।

बहुत सम्भव है कि राजपरिवार से सम्बन्धित होने के कारण मीराँ भी कुछ विशिष्ट योगियो के सम्पर्क मे आयी हो और इनसे प्रभावित भी हुई हो। अत नाथ-परम्परा से प्रभावित पदो की रचना अयुक्त नही कही जा सकती।

ऐसे पदो मे सर्वाधिक पदो की अभिव्यक्ति वियोगात्मक है। इतना ही नही, इन्ही पदो मे प्राप्त अभिव्यक्तियो के आधार पर किसी व्यक्तिगत दाम्पत्य सम्बन्ध को व्यक्त करनेवाला अन्त श्रोत विशेष रूपेण प्रस्फुटित हो जाता है। किसी जाते हुए 'जोगी' को रोक रखने का निष्फल प्रयास, 'जोगी' के वियोग की वेदना और उसके विश्वासघात के प्रति गहरे उपालम्भ के साथ ही साथ एक गहरे समर्पण की अभिव्यक्ति ही इन पदो की विशेषता है। इन पदाभिव्यक्तियो के आधार पर यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि मीराँ अपने नाथ परम्परानुसार सुसज्जित 'जोगी' आराध्य के अनुकूल स्वय भी "भगवाँ भेष" धारण कर "जोगण" बनने को "आकुल व्याकुल" हो उठी है।

इनमे अधिकाश पद राजस्थानी मे ही प्राप्त है, जैसा कि स्थिति विशेष मे स्वाभाविक भी प्रतीत होता है। कुछ पद ब्रज मिश्रित राजस्थानी मे और कुछ पद ब्रज व गुजराती भाषा मे भी प्राप्त है। नाथ-प्रभाव द्योतक ये थोडे से पद, विशेषत इनमे प्राप्त वियोगाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

विभिन्न भाव और भाषा मे प्राप्त लगभग सभी पदो की टेक है "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर"। 'दासी' और 'जन' प्रयोग-युक्त पदो मे यह परम्परा खण्डित हो गई है परन्तु इनकी प्रामाणिकता ही सर्वथा सदिग्ध है। गुजराती भाषा मे प्राप्त अधिकाश पदो मे यह टेक "मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण" मे परिवर्तित हो गई है। इस परिवर्तन के लिये गेय-परम्परा ही उत्तरदायी प्रतीत होती है। कुछ पदो मे "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा", "यू कहै मीराँ बाई", "मीराँ व्याकुल विरहणी" आदि भी टेक रूप मे व्यवहृत हुए है। अन्य कुछ पदो मे मीराँ ने अपने आराध्य को "जोगी" "गुसाई" आदि सम्बोधनो से भी पुन-पुन सम्बोधित किया है। "जिन भेखाँ म्हाँरो साँ ब रीझै, सोई भेख धारणाँ।" के

अनुकूल मीराँ स्वय भी कभी "मोतियन माँग भराँ" के लिये अत्युत्सुक हो उठती है तो कभी "कर जटाधारी वेश" "जोगण" बनने को "आकुल व्याकुल" हो जाती है। इतने पर भी कभी-कभी इस योग-साधना पर झुझला जाती है "भाग लिखियो सो ही पायो।"

अपनी माधुर्य भाव की भक्ति के कारण ही मीरा ख्याति को प्राप्त हुई।' नाभादास जी लिखते है, "सदरिस गोपिन प्रेम प्रगट कलिजुगहि दिखायो।' पति-भाव से ही मीराँ ने अपने आराध्य की पूजा की। अत पदों मे प्राप्त वियोग और शृङ्गार, खीज और समर्पण की अभिव्यक्ति तो सहज ही प्रतीत होती है परन्तु कुछ पदो मे प्राप्त बाल-वर्णन उतना ही असगत भी प्रतीत होता है। सूर आदि अन्य ब्रजभाषा के कवियो मे भी सयोग और विप्रलम्भ शृङ्गार के अति उत्कट वर्णन के साथ ही साथ वात्सल्य और बाल-वर्णन की अभिव्यक्ति भी मिलती है। ब्रजभाषा के इन भक्त-कवियो ने आराध्य कृष्ण की विभिन्न लीलाओ का वर्णन किया; वे कवि थे परन्तु मीराँ तो स्वय ही गोपिका बनी हुई थी। एक कवि की तरह उन्होने अपने इष्टदेव की लीलाओं का वर्णन नही किया अपितु आराध्य मे तन्मय हो जाने अनजाने ही कुछ गा उठी, भावातिरेक मे बेसुध हृदय के छद-अलकार विहीन वे निश्छल चित्र ही हिन्दी-साहित्य की अपूर्व निधि बन गये। अस्तु, मीराँ के पदो में वात्सल्य-युक्त वर्णन कुछ अटपटा ही लगता है। मुग्धा नारी द्वारा अपने ही प्रियतम के बालरूप का वर्णन युक्तिसगत नही प्रतीत होता।

कुछ पदो मे पूर्वापर सबध और अर्थ-सगति का सर्वथा अभाव है। अन्य कुछ पदो मे पुनरुक्ति और अस्पष्टता दोष भी है। गेय-परम्परा से प्राप्त पदो से ऐसा होना अस्वाभाविक या आश्चर्यजनक भी नही। ऐसे पदो को भी प्रचलित रूप मे तो प्रामाणिक नही ही माना जा सकता है।

कुछ पद विशेष जन-प्रिय होकर विभिन्न क्षेत्रो मे गाये जाने लगे। अत क्षेत्र विशेष की भाषा का प्रभाव उन पर पडा और फलत उनकी भाषा मे भी परिवर्तन आ गया। बहुत सम्भव है कि इसी तरह मीराँ के कुछ पदो की भाषा मे क्रमश इतना अधिक परिवर्तन हो गया हो कि उसके मौलिक रूप का निर्णय कर लेना दुरूह ही नही वरन् असम्भव भी है। स्थिति विशेष मे भाषा के इस परिवर्तन के साथ ही साथ भाव परिवर्तन हो जाना भी सहज प्रतीत होता है। यह मान लेना कि पद विशेष की अभि-

व्यक्ति मौलिक रूपेण मीराँ की ही है, मात्र भाषा ही गेय-परम्परा के कारण परिवर्तित हो गई है, प्रियकर हो सकता है और हमारी हृदयगत भावनाओ के निकटतर भी पड सकता है परन्तु खोज कार्य मे सहायक कदापि नही हो सकता है। यह भी माना जा सकता है कि उनमे काव्य-सत्य है। तथापि इस काव्य-सत्य के साथ ही साथ उनमे से वस्तुत सत्य को भी खोज निकालने का प्रयास आकाश-कुसुम को पाने का ही प्रयास मात्र होगा। प्राप्त रूप मे ऐसे पदो की प्रामाणिकता सदिग्ध ही सिद्ध होती है।

प्रस्तुत सग्रह मे भाव और भाषा के आधार पर ही पदो का वर्गीकरण किया गया है। मीराँ का जीवन कुछ विशिष्ट क्षेत्रो मे व्यतीत हुआ। अत उन विभिन्न क्षेत्रो की भाषा का प्रभाव उनकी रचना मे पाया जाना स्वाभाविक ही है। साधु-समागम के प्रभाव के कारण भी अन्य भाषाओ के कुछ शब्द-विशेष का प्रयोग भी सम्भव हो सकता है। परन्तु विभिन्न प्रान्तीय बोलियो मे इक्के-दुक्के पदो की रचना असम्भव ही प्रतीत होती है। अत ऐसे पदो को प्रक्षिप्त कहना ही युक्तियुक्त होगा।

राजस्थान मे ही मीराँ ने जन्म लिया और राजस्थान मे ही उनका अधिकाश जीवन व्यतीत हुआ अत अधिकाश पदो का शुद्ध राजस्थानी भाषा मे पाया जाना ही युक्ति-सगत है। फिर भी पुरानी राजस्थानी और आधुनिक राजस्थानी मे गहरा भेद है। अत राजस्थानी मे प्राप्त पदो की भाषा की शुद्धता पुरानी राजस्थानी के माप पर ही निर्धारित की जा सकती है। ऐसा एक प्रयास मैं कर भी रही हूँ और आशा रखती हूँ कि शीघ्र ही हिन्दी-साहित्य की यह छोटी सी सेवा भी कर सकूँगी।

इसके बाद वे पद आते है जो मिश्रित भाषाओ के अन्तर्गत रक्खे गए है। इनमे से कुछ की भाषा प्रधानत राजस्थानी होते हुए भी ब्रजभाषा से प्रभावित है। तो अन्य कुछ की भाषा प्रधानत ब्रजभाषा होते हुए राजस्थानी से प्रभावित है। साधु-समागम के कारण भी भाषा का यह सम्मिश्रण सम्भव हो सकता है। अद्यावधि मीराँ का बृज-क्षेत्र मे गमन और निवास भी मान्य है।

तथाकथित मीराँ के पदो की एक बडी सख्या ब्रजभाषा मे भी प्राप्त है। इनमे से कुछ की भाषा विशुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। ऐसे कुछ पद साहित्यिक सौन्दर्य का सृजन करने मे सूरदास के पदो से भी होड लेते है अद्यावधि प्राप्त सामग्री के आधार पर मीराँ की वृन्दावन-यात्रा और निवास बहुमान्य होते हुए भी सुनिश्चित इतिहास नही अपितु एक अत्यन्त विवाद-

ग्रस्त विषय है। 'इन पदो की साहित्यिकता भी इनकी प्रामाणिकता के विरुद्ध ही गवाही देती है। मीराँ को शास्त्रीय अध्ययन का सुअवसर प्राप्त हुआ हो, ऐसा भी कोई निश्चित इंगित प्राप्त सामग्री में नही मिलता। प्राप्त पद कवि की रचना न होकर एक स्वत सिद्ध भक्त के भावातिरेक के सत्यतम चित्र है। अत. शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा में प्राप्त पदो की प्रामाणिकता विशेष सन्दिग्ध हो जाती है।

गुजराती में भी मीराँ के नाम पर प्रचलित पद पर्याप्त संख्या मे प्राप्त होते है। अपने जीवन के अन्तिम काल मे मीराँ का द्वारिका-गमन और निवास इतिहास सिद्ध है। अद्यावधि मान्य इतिहास, प्राप्त जनश्रुतियों और पदाभिव्यक्तियो से भी उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है।

अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि प्राप्त सम्पूर्ण सामग्री में यही एक ऐसा पहलू है जो सर्व-सम्मति से सुनिश्चित है। क्रमश विकसित होते हुए जीवन के अन्तिम समय की भावाभिव्यक्ति मे इतने निम्न स्तर के घरेलू जीवन व अन्य बहुत ही हल्की भावनाओं का चित्रण बहुत सहज नही प्रतीत होता। चितौड़ के सम्पूर्ण राज-वैभव व तद्जनित सुख-सुविधा को "तजि बटुक की नाई" अपने आराध्य के शरण मे द्वारिका आ जाने पर मीराँ जैसी भक्तिमती नारी की रचना मे विराग और नैराश्य की भावनाओ का मिलना ही अधिक सहज है। अस्तु, गुजराती में पद रचना असम्भव या असगत नही प्रतीत होती तथापि अभिव्यक्ति के आधार पर प्राप्त पदो की प्रामाणिकता में सदेह ही उत्पन्न होता है।

कुछ गुजराती मे प्राप्त पदो मे "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर" "मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण" में भी परिवर्तित हो गया है—बहुत सम्भव है कि गेय परम्परा ही इसका कारण हो, अस्तु, ऐसे पदो की प्रामाणिकता और भी सदिग्ध है।

भोजपुरी, अवधी, बिहारी आदि विभिन्न बोलियो में भी कुछ पद प्राप्त होते है। राजस्थान, ब्रज, और द्वारिका से बाहर भी कभी मीराँ ने प्रयाण किया हो ऐसा **आभास** कहीं कोई नही मिलता। साधु-समागम के कारण पडे प्रभाव के कारण भी ऐसे इक्के-दुक्के पदों की रचना सम्भव नही। अत इन पदो को निश्चित रुपेण प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

खडी बोली मे प्राप्त कुछ पद भी भाषा की आधुनिकता के आधार पर निश्चित रुपेण प्रक्षिप्त ही कहे जा सकते है।

प्रस्तुत सग्रह मे बहुत से पदो पर एक ऐसा † चिह्न लगा दिया गया है। भाषा और भाव के आधार पर प्रक्षिप्त प्रतीत होनेवाले पदो पर ही यह चिह्न लगाया गया है। जैसा कि ऊपर कहा गया है बहुत सम्भव कि शेष पदो मे से भी अधिकाश प्रक्षिप्त ही हो परन्तु उनको प्रक्षिप्त या प्रामाणिक कहने का कोई सुनिश्चित सूत्र अद्यावधि उपलब्ध नही। बहुत सम्भव है कि प्राप्त सामग्री के गहरे अध्ययन के बाद शेष पदो पर भी निश्चय पूर्वक विचार किया जा सके। किसी ऐसे ही प्रामाणिक सग्रह के आधार पर ही मीराँ की जीवन-वृत्त को सुनिश्चित इतिहास का रूप दिया जा सकता है।

इस सग्रह मे लिखित व मौखिक परम्परा से प्राप्त मीराँ के नाम पर प्रचलित सभी पदो को एकत्रित करने का प्रयास किया गया है, फिर भी बहुत सम्भव है कि और भी कुछ ऐसे पद प्राप्त हो सके जो इस सग्रह मे नही आ सके है। विभिन्न प्राप्त सग्रह, जिनकी सूची 'मीराँ, एक अध्ययन' मे दे दी गयी है, इन पदो के सग्रह का मूल आधार रही है। अत उन सभी विद्वानो की कृतज्ञ हूँ। श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी (जयपुर) द्वारा २०० पद ऐसे प्राप्त हुए जिनके बिना यह सग्रह निश्चित ही अधूरा रह जाता, अत मैं उनकी विशेष कृतज्ञ हूँ। इन पदो मे अधिकाश राजस्थानी भाषा मे है। इनमे अधिकाश की अभिव्यक्ति मतभेद, सघर्ष और वियोग-द्योतक है। इन पदाभिव्यक्तियो से विभिन्न धार्मिक मतो का विशेषत सतमत का ही प्रभाव स्पष्ट हो जाता है। कुछ पदो के विषय मे अपने विचार (जो पद विशेष के नीचे दिये गये है) देकर इन्होने मेरे कार्य मे अधिक सुगमता ला दी। उनके इस कष्ट के लिये मै विशेष आभारी हूँ।

भाई श्री नर्मदेश्वर जी चतुर्वेदी और उनके अग्रज हिन्दी के सुविख्यात विद्वान् श्री परशुराम जी चतुर्वेदी द्वारा सामग्री एकत्रित करने मे पर्याप्त सहायता मिली। अपनी राजस्थान की यात्रा-काल मे किसी दादू पन्थी सत के हस्त-लिखित सग्रह से प्राप्त ६२ पद आपने मुझ को दिये जिनमे लगभग ५० मेरे सग्रह मे थे और शेष पद नवीन थे। इनमे से अधिकाश नाथ-परम्परा प्रभाव द्योतक है। 'दासी' और 'जन' प्रयोग युक्त पद भी इस सग्रह का एक बडा भाग है। शेष पदो पर सतमत का ही विशेष प्रभाव है। इनमे अधिकाश की अभिव्यक्ति वियोगात्मक और भाषा राज-स्थानी व ब्रज मिश्रित राजस्थानी है।

उपर्युक्त पदी के सिवाय कुछ पद लोक-गीत परम्परा से भी प्राप्त हुए। विशेष प्रयास के करने बाद कुल १४ पदों को एकत्रित करने मे सफल हो सकी। ये पद भी 'मीरॉ', एक अध्ययन' मे परिशिप्ट मे दे दिये गये है। लोक-गीत परम्परा से प्राप्त प्राय पद सग्रह मे वर्तमान किसी-न-किसी पद का गेय रूपान्तर मात्र ही सिद्ध हुए।

बनारस हिन्दू. विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभाग के अध्यक्ष हिन्दी के सुविख्यात विद्वान् श्री हजारीप्रसाद जी द्विवेदी ने पदो के वर्गीकरण के बारे मे जो महत्वपूर्ण सुझाव दिये उनके बिना इस सग्रह को इस रूप में प्रस्तुत करना सम्भव न होता। "मीरा बाई" के विद्वान् लेखक डा० श्रीकृष्ण लाल ने अपनी कार्य-व्यस्त दिनचर्या के बाद भी सग्रह मे महत्वपूर्ण सुझाव देने और भूमिका लिखने का कष्ट स्वीकार किया। गुरुजनों के प्रति कृत-ज्ञता प्रकाश करना भी धृष्टता ही होगी, अत मै इनको नमस्कार ही करती हूँ।

अनुज तुल्य श्री अवधेश तिवारी के सहयोग और कार्य-निष्ठा के बिना प्रस्तुत सग्रह असम्भव ही था। इन पदो की पुन पुन. प्रतिलिपि करना सुगम या रुचिकर कार्य नही। उनकी अटूट लगन और कठिन परिश्रम के बिना यह सग्रह कदाचित तय्यार नही हो सकता था। अपने छोटे देवर श्री जानकी प्रसाद झुनझुनवाला, श्री गोपालचन्द सराफ और पुत्र तुल्य श्री बाल-कृष्ण मालवीय के विशेष सहयोग की महत्ता भी सदा अक्षुण्ण रहेगी। भाई श्री नरेन्द्र श्रीवास्तव और भाई श्री सुधाकर पाण्डेय ने प्रूफ देखने का भार उठा कर मेरे कार्य को विशेष सुगम बना दिया। मानव-जीवन में स्निग्ध भावनाओ का एक अपना विशिष्ठ स्थान है। अतः उपर्युक्त सभी स्वजनो के स्नेहमय सहयोग के लिये कृतज्ञता प्रकाशन या धन्यवाद दोनो ही असम्भव है।

प्रस्तुत सग्रह मे जो अपूर्णता और गलतियाँ रह गई हो, उन पर प्रकाश डाल कर गुरुजन मेरा प्रोत्साहन और पथ-प्रदर्शन करेंगे, ऐसी ही आशा करती हूँ।

विशेष प्रयास के बावजूद भी प्रूफ आदि की जो गलतियाँ छूट गयी हो, उनके लिये मै क्षमाप्रार्थिनी हूँ।

पद्मावती

विषय-सूची

"दासी" और "जन" प्रयोग युक्त पद

उपासना खण्ड

वैष्णव-प्रभाव द्योतक पद —निर्वेदाभिव्यक्ति

पौराणिक गाथाएँ

राधावर्णन

बाँसुरी वर्णन

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

संतमत-प्रभाव द्योतक पद

मतभेद

राजस्थानी मे प्राप्त पद

वियोगाभिव्यक्ति

राजस्थानी मे प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं मे प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों मे प्राप्त पद

पजाबी मे प्राप्त पद

खडी बोली मे प्राप्त पद

संघर्षाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं मे प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

खड़ी बोली में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

मिलन और बधाई

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

समर्पण द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

व्रजभाषा में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

"दासी" और "जन" प्रयोग युक्त पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं मे प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पजाबी मे प्राप्त पद

उपासना खण्ड

वैष्णव प्रभावद्योतक--निर्वेदाभिव्यक्ति

राजस्थानी मे प्राप्त पद--

मिश्रित भाषाओं में प्रात पद

विभिन्न बोलियों मे प्राप्त पद

खडी बोली मे प्राप्त पद

पजाबी मे प्राप्त पद

भोजपुरी मे प्राप्त पद

बिहारी मे प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

राधा वर्णन

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

बाँसुरी वर्णन

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती में प्राप्त पद

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा मे प्राप्त पद

गुजराती मे प्राप्त पद

संत-मत प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

गुजराती मे प्राप्त पद

जीवन खण्ड

मतभेद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

तू मत बरजै माई री, साधाँ दरसन जाती ।
राम नाम हिरदै बसै, माहिले मदमाती ।
माई कहै सुन धीहड़ी, काहे गुण फूली ।
लोक सोवै सुख नीदड़ली, थे क्यूँ रैणज भूली ।
गेली दुनियाँ बावली, ज्यॉकूं राम न भावै ।
ज्यॉ रे हिरदै हरि बसै, त्याँ कूँ नीद न आवै ।
चौबास्याँ की बावडी, ज्यॉ कू नीर न पीजै ।
हरि नारे अमृत झरै, ज्यॉ की आस करीजै ।
रूप सुरगा राम जी, मुख निरखत जीजै ।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै ॥१॥†

उपर्युक्त पद मे "माहिले" के स्थान मे "म्हॉरे" होना युक्तियुक्त है, क्योकि "माहिले" जैसा कोई शब्द हिन्दी या राजस्थानी मे नही है ।

२

मीराँ . माई, म्हॉने सुपणे मे परण गया जगदीस ।
सोती को सुपणा आविया जी, सुपणा बिस्वाबीस[1] ।
माँ गेली[2] दीखे मीरा बावली, सुपणा आल जंजाल ।
मीराँ माई, म्हॉने सुपणे मे, परण गया गोपाल ।

---

१ शुभ, २ पागल,

अंग अंग हल्दी मै करी जी, सूधे भीज्यो गात ।
माई, म्हॉने सुपणे मे परण गया दीनानाथ ।
छप्पन कोटि जहॉ जाण[१] पधारे, दुल्हा श्री भगवान ।
सुपणे में तोरण[२] बॉधियो जी, सुपणे मे आयी जाण ।
मीरॉ को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग ।
सुपणे मे म्हॉने परण गया जी, हो गया अचल सुहाग ॥२॥†

पाठान्तर—१

माई म्हॉने सुपना मे परणी गोपाल ।
गैली ये मीरॉ भई बावरी, सुपनू छै आल जजाल ।
जो तू ने सुपना मे गिरधर मिलिया, तो कछुक सैनाण बताय ।
हल्दी तो पीठी म्हॉरे अग लिपटाई, मॅहदी सूॅ राच्या म्हॉरा हाथ।
छप्पन कोड जादू जान-पधारिया, दूल्हो श्री भगवान ।
सॉवरियो सिर पेच कलगी, सोरठणी तलवार ।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, पूरबले भरतार ।†

पाठान्तर—२

माई, री म्हॉने सुपणे में परणी गोपाल ।
राती पीरी चूनर पहरी, महदी पान रसाल ।
कॉई करॉ और संग भॉवर, म्हॉने जग जंजाल ।
मीरॉ प्रभु गिरधरन लाल सूँ, करी सगाई हाल ।†

पाठान्तर—३

माई, मै तो सपना मे परणी गोपाल ।
हाथी भी लायो घोडा भी लायो और लायो सुखपाल ।†

---

१ बारात, २ लकडी का बनाया हुआ एक चित्रित त्रिकोण जो बारात के समय पर लडकी के पिता के दरवाजे पर बॉध दिया जाता है। नियमानुसार दुलहा नीम की छड़ी से इसको छू देता है, तब अन्य रस्में की जाती है।

पाठान्तर—४

माई हूँ सुपणे मे परणी गोपाल।
मति करो म्हाँरी ब्याव सगाई, क्यूँ बाँधो जजाल।
झूठा मात पिता बधु, बध्यो अबध्या ख्याल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साँचो पति नन्दलाल।†

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रामाणिकता सदिग्ध है। मीराँ की छोटी बयस मे ही मीराँ की माता का निधन हो गया था, यही अद्यावधि सर्वमान्य है। भाषा पर भी आधुनिक राजस्थानी का प्रभाव स्पष्ट है।

३

कूडो वर कुण परणीजे माय, परणूँ तो मर मर जाय।
लख चौरासी को चूडलो रे बाला, पहर्‌यो कितीयक बार।
कै तो जीव जानत है सजनी, कै जाने सिरजणहार।
सात बरस की मै राम आरध्यौ, जब पाया करतार।
मीराँ ने परमातम मिलीया, भव भव का भरतार॥ ३॥†

यह पद श्री भटनागर जी द्वारा प्राप्त हुआ है। पदाभिव्यक्ति मे अर्थ सगति नही है। अत पद को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

४

म्हाँने गुरू गोविन्द री आण, गोरल ना पूजाँ।
और जो पूजो गोरज्या जी, थे क्यूँ न पूजो गोर।
मन बाँछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजो और।
नहि हम पूजाँ गोरज्याँ जी, नहि पूजाँ अनदेव।
बाल सनेही गोविन्दो, साध सता को काम।
थे बेटी राठोडाँ की, थाँने राज दियो भगवान।
राज करे ज्याँने करने दीज्यो, मै भगता री दास।

सेवा साधू जनन की, म्हॉरे राम मिलण की आस।
लाजै पीहर सासरो, माइतणौ मौसाल।
सब ही लाजै मेडतिया जी, थाँसू बुरा कहै ससार।
चोरी करूँ न मारगी[1], नहि मै करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालताँ, झक मारो ससार।
नहि मै पीहर सासरे, नहि मै पिया जी की साथ।
मीराँ ने गोविन्द मिलिया जी, गुरू मिलया रैदास ॥४॥

पाठान्तर—१

साधो रो सग निवारो राई[2], भाभी जी गोरल पूजो जी राज।
साइयाँ[3] पूजे गोर ने थे पूजो गणगोर, मन बॉछत फल पावस्यौ।
भाभी जी रुठे गणगोर।
नै पूजूँ गणगौर नै नहि पूजूँ अनदेव,
बाल सामरो जाको थे नहि जानो भेव।
सेवा सालगराम की साध संता रो काम,
थे, बेटी राठौड की, थॉने राज दियो भगवान।
राज करे ज्याँनें करन द्यो, मै सन्तां की दास।
भगति करॉ भगवान की, म्हॉरे राम मिलण की आस।
लाजै पीहर सासरो, लाजै या मोसार,
नितरा[4] आवै ओलमा, थांने बुरा कहै संसार।
चोरी न करूँ कुमारगी, नहि कुमाऊं पाप,
पुन रे मारग चालता, म्हांसू कांई हठ लाग्या छो आप।
कदि[5] ठाकुर परचो[6] दियो, कदि मानी परतीति।
कुल को नातो तोडियो, भाभी जी नहि छै राजा की रीति।
नहि जाऊं पीहर सासरे, नहि पिया के पास।
मीराँ सरणै राम के, म्हांने गुरू मिलिया रैदास।

---

१ कुमार्गी होना, २ राजा, ३ सखियाँ, ४ नित्यप्रति, ५ कब, ६ प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाना,

५

मीरॉ तो जन्मी मेरता सजनी म्हांरी हे।
आन लियो ओतार[1] पिय म्हांरो गिरधारी।
और सहेली पूजे गोरजा सजनी म्हारी हे।
थे बी पूजो गोर पिंय म्हांरो गिरधारी।
और तो पूजे गोरजा हे सजनी म्हांरी हे।
म्हे म्हाको सालिगराम पिय म्हारो गिरधारी।
परोहित उरे[2] बुलाय के हे सजनी म्हारी हे।
मीरॉ की लगन लिखाय पिय म्हांरो गिरधारी।
पिरोहित बैसो बिच जाय के हे सजनी म्हारी हे।
पौच्यो छै गढ चितौर हे पिय म्हांरो गिरधारी।
गेली भई मीरा बावली सजनी म्हांरी हे।
अकल कुमारी[3] बारी बसै पिय म्हारो गिरधारी।
कागद मीरां मोकल्या हे सजनी म्हांरी हे।
थारी खुसी परै तो राणा आव पिय म्हारो गिरधारी।
हाथी सिधारे राणा सात सै सजनी म्हारी हे।
घुरला वार न पार पिय म्हांरो गिरधारी।
नेजे तो आवे चमकता म्हांरी सजनी हे।
उडती आवे छै खेह पिया म्हांरो गिरधारी।
काकड[4] आयो राणा राजई सजनी म्हांरी हे।
काकड करहा[5] झुकाय पिय म्हांरो गिरधारी।
आय पहुच्यो राणा मेडते सजनी म्हारी हे।
बाजे बहोत बजाय पिय म्हारो गिरधारी।
बागा तो आया राणा राई सजनी म्हारी हे।
तबुवा दिये है तनाय पिय म्हांरो गिरधारी।

---

१ अवतार, २ यहाँ, ३ अखड कुमारी, ४ सरहद्द, ५ सरहद ने अपने शिखर झुका दिये, अर्थात सरहद के लोगो ने बारात सजाकर आते हुए राणा का विशेष स्वागत किया ।"

तोरण आया राणा राजई सजनी म्हारी हे।
कामिण[१] कलस सँवारि पिय म्हांरो गिरधारी।
फेराँ[२] तो आया राणा राजई सजनी म्हांरी हे।
एक मीराँ की मीराँ दोय पिय म्हारी गिरधारी।
परण पधारियो राणा रांजई सजनी म्हारी हे।
पहुंच्यो गढ चितौर पिय म्हारो गिरधारी।
महला पधार्‌यो राणा राजई सजनी म्हारी हे।
एक मीराँ की चार मीराँ पिया म्हारो गिरधारी।
सछा उरे बुलाय कै सजनी म्हारी हे।
मीराँ कू समझाय, पिय म्हारो गिरधारी।
समझाये समझे नहि सजनी म्हारी हे।
बजर सिला विष बाट पिय म्हारो गिरधारी।
बजर सिला बिष बांटियो सजनी म्हारी हे।
पर फेटा बीच छानि पिय म्हारो गिरधारी।
पर फेटा बीच छानियो सजनी म्हांरी हे।
देवो मीराँ जी को जाय पिय म्हांरो गिरधारी।
चरनोदक आरोग्यो[३] सजनी म्हारी हे।
दूनो बढयौ छै सनेस[४] पिय म्हांरो गिरधारी।
पगा जू बाधे घूघरा, सजनी म्हांरी हे।
गावै छै गुन गोविन्द पिय म्हांरो गिरधारी।
पटका[५] खोल पगां पर्‌यौ सजनी म्हांरी हे।
अपनो गुरुजी बताय पिय म्हांरो गिरधारी।
म्हांरो गुरु रैदास है सजनी म्हारी हे।
पढे सुने फल होय पिय म्हारो गिरधारी ॥५॥

लगभग एक ही भावना को व्यक्त करने वाले उपर्युक्त दोनो ही पद विशेष ध्यान देने योग्य है। पहले पद से यह स्पष्ट नही होता कि

१ घर मे काम करने वाले नौकर, २ भाँवरें, ३ खा लिया, ४ स्नेह, ५ दरवाजा।

वार्तालाप किस विशेष व्यक्ति से हो रहा है। पहले पद (न० ४) के दूसरे पाठ से वार्तालाप का किसी ननद के साथ होना और दूसरे पद (न०५) से वार्तालाप का किसी सखी के साथ होना ही स्पष्ट होता है। साथ ही इस पद (न० ५) की कुछ अपनी विशेषताएँ भी है। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि मीराँ का विरोध न केवल गोर-पूजा से है अपितु राणा के साथ निश्चित किए गए विवाह से भी है। परन्तु इस विरोध के वावजूद भी मीराँ का विवाह हो जाता है। चित्तौड पहुँच कर भी मीराँ राणा की कुल परम्पराओ को स्वीकार नही करती। अत विष देने की योजना की जाती है। इस योजना मे निष्फल हो राणा प्रायश्चित करते है तथा मीराँ के गुरु को जानने की इच्छा प्रकट करते है। यह "रैदास" कौन हो सकते है ? मीराँ द्वारा बार बार "रैदास" को अपना गुरु बताना भी एक अत्यन्त विचारणीय प्रश्न है।

६

दे माई म्हाको गिरधर लाल।

थारे चरणा की आनि करत हो, और न मणि लाल ।

नात सगो परिवारो सारो, मने लागे मानो काल।

मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, छबि लखि भई निहाल ॥६॥†

उपर्युक्त पद प्रियादास कृत "भक्तमाल" की टीका मे आए उद्धरण का ही गेय-रूपान्तर मात्र सिद्ध होता है।

७

मीराँ ए ज्ञान धरम की गाठडी, हीरा रतन जडाओ जी ।

लोग थांरी निन्दरा करे, साधा मे मत जाओ जी ।

कुण गुरु समझायो, घर को धन्धो छोडचो जी ।

लोग थारी निन्दरा करे, साधा मे मत जाओ जी ।

कने कहोगी बाई माइडी, कणे कहोगी बाई बीरो जी ?

कूण थारा पगलिया चापसी, कूण बूझे मन री बात ?

बुढी टेढी म्हांरी मायडी, बीरा भर्यो ससार ।

पावडी[1] पगलियां चापसी[2] माला बुझै मन की बात ।
हरिदास दर्जी की बीनती जी, धोला[3] वस्तर सिमाओ जी ।
देर नगारो[4] मीराँ चढ गयी, माता हियो मत हारो जी ।
बागा मे बोली कोयली, बन मे दादुर मोर ।
मीराँ ने गिरिधर मिलिया जी, नागर नन्द किशोर ॥७॥†

उपर्युक्त पद से यह अज्ञात ही रह जाता है कि ऐसी दृढ अभि-व्यक्ति किसके प्रति हुई ? बहुत सम्भव है कि यह हरिदास दर्जी नामक कोई "रैदासी" सत ही मीराँ के गुरु "रैदास" हों।

८

कोई कछु कहो रे रग लाग्यो, रगलाग्यो भ्रम भाग्यो ।
लोग कहै मीराँ भई बावरी, भ्रम दूनी ने खा गयो ।
कोई कहै रग लाग्यो ।
मीराँ साधा मे यूँ रम बैठी, ज्यूँ गूदड़ी मे तागो ।
सोने में सुहागो ।
मीराँ सूती अपने भवन में, सतगुरु आय जगा गयो ।
ज्ञानी गुरु आय जगा गयो ॥८॥†

९

थांने बरज बरज मैं हारी, भाभी मानो बात हमारी ।
राणे रोस कियो था ऊपर, साधो मे मत जारी ।
कुल को दाग लगै छे भाभी, निन्दा हो रही भारी ।
साधो रे सग बन बन भटको, लाज गमाई सारी ।
बड़ा घरां मे जन्म लियो छै, नाचो दै दै तारी ।
बर पायो हिंदुवाणै सूरज, अब बिदल मे काई धारी ।
मीराँ गिरधर साध सग तज, चलो हमारे लारी ।

---

१ खडाऊ या चप्पल, २ दबावेगी, ३ डंके की चोट,

मीराँ : मीराँ बात नही जग छानी, ऊदाँ समझो सुघर सयानी ।
साधू मात पिता मेरे, सजन सनेही ग्यानी ।
सत चरण की सरण रैण दिन, सत्त कहत हू बानी ।
राणा ने समझाओ जाओ, मै तो बात न मानी ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सता हाथ बिकानी ।

ऊदाँ . भाभी ! बोलो बात बिचारी ।
साधो की सगति दुख भारी, मानो बात हमारी ।
छापा तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी ।
रतन जडित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी ।
मीराँ जी थे चालो महल मे, थाँनें सोगन म्हांरी ।

मीराँ · भाव भगत भूषण सजे, सील सतो सिगार ।
ओढी चूनर प्रेम की, म्हारो गिरधर जी भरतार ।
ऊदाँ बाई मन समझ, जाओ अपने धाम ।
राज पाट भोगो तुम ही, हमसे न तासूँ काम ॥९॥

१०

म्हांरी बात जगत सूँ छानी, साधा सूँ नही छानी री ।
साधू मात पिता कुल मेरे, साधू निरमल ग्यानी री ।
राणा ने समझाओ बाई, (ऊदाँ) मै तो एक न मानी री ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सतन हाथ बिकानी री ॥१०॥†

इस पद को स्वतन्त्र पद न मानकर पद स. ७ की ही कुछ पक्तियो "मीराँ गिरिधर · · हाथ बिकानी" का ही गेय रूपान्तर मानना अधिक युक्ति-सगत प्रतीत होता है। प्रथम पक्ति के सिवा अन्य पक्तियों पर ब्रजभाषा की छाप स्पष्ट है।

११

भाभी मीराँ ! कुल ने लगायी गाल, ईडर गढ़ ते आया ओलमा[1] ।
बाई ऊदाँ ! थाँरे म्हाँरे नातो नाहि, बासो बस्या का आया जी ओलमा ।
भाभी मीराँ ! साधाँ को सग निवारि, सारो सहर थाँरी निन्दा करै ।
बाई ऊदाँ करे तो पड्या झख मारो, मन लाग्यो रमता राम सूँ ।
भाभी मीराँ पहरो नी मोत्या को हार, गहणो पहर्यो रतन जडाव को ।
बाई ऊदाँ छोड्यो मोत्यां को हार, गहणो तो पहर्यो सील सन्तोष को ।
भाभी मीराँ ! औराँ के आवे छै आच्छी[2] रूढी जान,
थाँरे आवे हरिजन पावनाँ ।
बाई ऊदाँ चौबसियाँ[3] झाँक, साधाँ को मडल लागे सुहावणो ।
भाभी मीराँ ! लाजे गढ चितौड, राणो जी लाजै गढ़ रा राजबी ।
बाई ऊदाँ ! तार्यो तार्यो चित्तौड, राणा जी तार्या गढ रा राजवी ।
भाभी मीराँ ! लाजै लाजै थाँरा मायड बाप, पीहर लाजै जी मेडतो ।
बाई उदाँ ! तार्या म्हें तो मायड बाप, पीहर तार्यो जी मेडतो ।
भाभी मीराँ ! राणा जी कियो छै थां पर कोप, रतन कचोले विष घोलियो ।
बाई ऊदाँ ! घोल्यो तो घोलवा द्यो कर, चरणामृत वो ही म्हे पीवस्यां ।
भाभी मीराँ ! देखतड़ा ही मर जाय, विष तो कहिए बासक नाग को ।
बाई ऊदाँ ! नही म्हारे माय र बाप, अमर डाली धरती झेलिया ।
भाभी मीराँ ! राणा उभा छै थारे द्वार, पोथी मागें छै थारे ज्ञान की ।
बाई ऊदाँ ! म्हारी खाँड़ा री धार, ज्ञान निभावन राणा छै नही ।
भाभी मीराँ ! राणा जी रो बचन न लोप, उन रूठ्यां भीड़ी कोऊ नहीं ।
बाई ऊदाँ ! रमापति आवे म्हारी भीड़, अरज करूं छूँ तांसू बीनती ॥११॥

१२

भाभी मीराँ हो साधा को संग निवारि,
थारी लोक निन्दा करै ।

---

१ शिकायत, २ भली सुन्दर, ३ बरॉम्दा ।

साचाँ साहिब जी यो दुख सह्यो न जाई,
हीवडो तो सुमर भर्यो
सांचा साहिब जी बिडद री लाज,
कर जोडे मीराँ बिनती करै ॥१२॥ †

उपर्युक्त पद मे कुम्भा जी तथा दूदा जी का नाम आया है, यह विचारणीय है। ऐसे पदो से यही स्पष्ट हो जाता है कि मीराँ का विवाह "कुँवर" से नही अपितु "राणा" से ही हुआ था, परन्तु यही एक पद ऐसा है जिसके आधार पर यह राणा कौन थे, इस पर प्रकाश पडता है। पद की पक्ति "राणा जी रा बाघेला ...... मेडती" विशेष महत्वपूर्ण है। इस अभिव्यक्ति के आधार पर कहा जा सकता है कि मीराँ तक जहर का प्याला पहुँचाने वाले राणा के बाघेला सरदार ही थे। पद विशेष विचारणीय है।

१३

ऊदाँ : माया थे क्यूँ रे तजी भाभी मीराँ , क्यूँ रे लियो बैराग,
काई थारे मन बसी ।
मीराँ : याही म्हारे मन बसी ऊदाँ, यूँ लियो बैराग,
माया यूँ रे तजी ।
ऊदाँ . ऊचा नीचा बेसणा ये भाभी उत्तम तिहारी जात,
राणा सो वर पाइयो हे भाभी, नो कूँटाँ[1] में थांरो राज।
मीराँ : ऐसा तो मोती ओस का ये बाई, जैसी यो संसार,
लगै झकोलो पोन को ये बाई, छिन मे सब ढल जाय।
ऊदाँ: खीर खांड को भोजन जीमो भाभी, ओढ़ो दिखनी चीर[2]।
राणा सो वर पाइयो थे भाभी, सब महलाय थांरो सीर।

---

१ कोना, दिशा, २ दिखनी चीर . दक्षिण से आया हुआ वस्त्र। राजस्थान में इसको अति उत्तम और सुन्दर माना जाता है। अपनी बहुमूल्यता के कारण यह राजघराने के ही उपयुक्त पड़ता है। अत यह शब्द सुन्दर और कीमती वस्त्र के लिए रूढ़ि रूप हो गया।

मीराँ खीर खाड को भोजन त्याग्यो ये बाई, त्याग्यो दिखणी चीर
राणा सो वर त्याग्यो ये बाई, सब सतन मे म्हारो सीर।
ऊदाँ · बास्या-कूस्या[1] टुकडा ये भाभी, और मिलेगी खाटी छाय
रो रो भूखा मरो ये भाभी, नही मिलेगो हरि आय।
मीराँ बास्या तो कूस्या टूकड़ा ये बाई, पीस्यां खाटी छाय[2]।
म्हे रोवा भूखा मरा ये बाई, जब रे मिलेगो म्हरि आय ॥१३॥†
माया म्हे तो यूँ र तजी।

१४

सुणजो जी थे भाभी मीराँ, थापे राणा जी कोप कियो छै जी।
भाभी थारे मारणा कारणे, प्यालो हाथ लियो छै जी।
उठ उठ भाजे रोस रो, या तो हाथ खग लियो छै जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरत पान कियो छै जी ॥१४॥†

यह पद भी कोई स्वतन्त्र पद न होकर पद न० ११ की कुछ पंक्तियो का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है।

१५

अकोलो लाग्यो जी रग गिरधर को आन।
गिरधर गिरधर काई करो, कोई गिरधर श्याम सुजाण।
मीराँ तो चन्दा भई, कोई गिरधर उँग्यो भान।
ऊदाँ थे तो बावली, कोई निहचै करल्यो ध्यान।
आपा दोन्यू मिल भजा, कोई ज्यो गोप्याँ बिच कान[3]।
मीराँ ने गिरधर मिलिया जी, ममता रो राख्यो मान ॥१५॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। कीर्तन मडली मे प्राय ऐसे गीत मिलते है। प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ की किसी ननद का नाम ऊदाँ बाई नही मिलता। भोजराज की चार बहने थी। १. कुवरबाई

---

१ रूखा सखा, २ छॉछ, मट्ठा, ३ कान्ह, कृष्ण।

२ पद्मावाई, ३ गंगाबाई और ४ राज बाई। प्रसिद्ध ऐतिहासिक गहलोत जी के अनुसार मीराँ की एक ननद का डूगरगढ व्याहा जाना सिद्ध होता है। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर उपर्युक्त पदो को प्रामाणिक मानना सम्भव नही।

१६

अब मीराँ मान लीजो म्हारी , हो जी थाने सखिया बरजे सारी।
राणा बरजे, राणी बरजे, बरजे सब परिवारी।
कुवर पाटवी सो भी बरजे, और सहेल्या सारी।
सीस फूल सिर ऊपर सोहै, बिदली शोभा भारी।
साधन के ढिग बैठ बैठ के, लाज गमाई सारी।
नित प्रति उठि नीच घर जाओ, कुल को लगाओ गारी।
बडा घरा की छोरू कहावो, नाचो दे दे तारी।
वर पायो हिन्दुवाणे सूरज, इब दिल मे काई धारी।
तार्‌यो पीहर, सासरो तार्‌यो, माय मोसाली तारी।
मीराँ ने सद्‌गुरु मिलिया जी, चरण कमल बलिहारी ॥१४॥

पदाभिव्यक्ति के आधार पर यह स्पष्ट नही होता कि यह संवाद किस के साथ हो रहा है। प्रथम दो पक्तियो की अभिव्यक्ति अवश्य ही कुछ नई सी प्रतीत होती है। परन्तु अन्य पक्तियों को देखने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि ऊदाँ-मीराँ सवाद की भावनाओ की ही पुनुरुक्ति हुई है। इतने अधिकारपूर्ण ढंग से विरोध किसी प्रभावशाली निकट संबधी द्वारा ही संभव है। बहुत सम्भव है कि यह सवाद भी ऊदाँ-मीराँ के बीच हुआ हो।

पद की प्रथम दो पंक्तियाँ विशेष महत्वपूर्ण है। "राणा" और "राणी" तो विरोध करते ही है, इतना ही नही, "कुवर पाटवी सो भी बरजे"। यह "कुंवर पांटवी" कौन है? क्या यही भोजराज है? प्राप्त इतिहास बताता है कि मीराँ का सघर्ष वैधव्य के बाद ही प्रारम्भ

१ युवराज।

हुआ, जब कि भोजराज के सौतेले छोटे भाई राज्याधिकारी बने। उपर्युक्त पद के आधार पर मीराँ का संघर्ष भोजराज की जीवित-अवस्था मे ही प्रारम्भ हो जाता है और वह भी कृष्ण की आराधना हेतु नही अपितु इसलिये कि "नितप्रति उठि नीच घर जाओ" और "नाचो दे दे तारी"।

अन्तिम पक्ति मे वर्णित यह "सदगुरू" भी अब तक एक रहस्य ही बने हुए है। सम्भव है कि "सदगुरू" कौन थे, यह जान लेने पर मीराँ के जीवन वृतान्त पर गहरा प्रकाश पड सकेगा।

१७

नहि भावै थारो देसडलो रग रूडो[१]।
थारे देसा मे राणा साध नही छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहना गाठी राणा हम सब त्याग्या, त्याग्या कर रो चूडो।
काजल टीकी हम सब त्याग्या, त्याग्या बाधन जूड़ो।
मेवा मिसरी मै सब त्याग्या, त्याग्या छै सक्कर बूरो।
तन की आस कबहु नहि कीनी, ज्यूँ रण माही सूरो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो मै पूरो ॥१७॥

पाठान्तर १,

नहि भावै थारो देसड़लो जी रूडो रूडो।
हरि की भगति करै नही कोई, लोग बसै सब कूडो।
पाटी माग उतारि धरूंगी, न पहिरू कर चूडो।
मीराँ हठीली कह सतन सो, वर पायो छै पूरो।

पाठान्तर २,

राणा जी थारो देसडलो रग रूडो।
थारे मुलक मे भक्ति नहि छै, लोग बसे सब कूड़ो।

---

१ रगो से भरा सजा हुआ सुन्दर।

पाट पटम्बर सब ही मै त्यागा, तज दियो कर रो चूडो।
मेवा मिसरी मै सब ही त्यागा, त्यागा छै सक्कर बूरो।
तन की मै आस कबहू नहि कीनी, ज्यूँ रण माहि सूरो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वर पायो छै पूरो।

पाठान्तर ३,

राणा जी थारो देसड़लो छै रग रूड़ो।
राम नाम की भक्ति न भावे, लोग बसै सब कूडो।
मेवा मिठाई मीरा सब ही त्यागे, त्याग्यो छै सान और बूरो।
गहणो तो गाठो मीरा सब ही त्याग्यो, त्याग्यो छै बैया रो चूडो।
साल दुसाला मीरा सब सोई त्याग्या, सिर पर बांध्यो छै जूडो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बर पायो छै मीरा रूडो।

पाठान्तर ४,

देसडलो रूड़ो रूडो, राणा जी थांरो देसडलो।
भगत न भावै म्हारा राम की,लोग बसै सब छै कूडो।
मेवा मिसरी सब ही त्याग्या, त्याग दियो छै बूरो।
तन की आस कबहू नहि कीनी, ज्यूँ रण माहि सूरो।
भाई मात कुटुम्बी त्याग्यो, त्याग दियो छै चूडो।
घूँघट को पटि दूर कियो, सरि बाध्यौ छै जूड़ो।
यो ससार भव दु ख को सागर, मै हाकीयौ दूरो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वर पायो छै पूरो।

यह पाठ भटनागर जी द्वारा किसी दादू पथी सत के सग्रह से प्राप्त हुआ।

१८

राणौ जी मेवाडो म्हांरे दाय न आवे।
गिरधर मो मन भाया भोलि माय।

राणा जी म्हारू रूस रह्यो है,

कडा वचन सुनाय भोली माय।

गुरू कृपा सूॅं सत पधार्‌या,

सता श्याम मिलाय भोली माय।

बाधि घूघरा नृत्य करू म्हे,

हरि गुण गाय रिझावा भोली माय।

मीराँ के प्रभु आस पराई,

गिरिधर सेजाँ आया भोली माय ॥१८॥†

पद की प्रथम पक्ति की अभिव्यक्ति पद स० १७ की अभिव्यक्ति से मिलती है। परन्तु शेष पदाभिव्यक्ति सर्वथा विभिन्न पडती है। पदाभिव्यक्ति मे सगति का भी अभाव है। "भोली माय" जैसा सम्बोधन पद की हर पक्ति मे प्रयुक्त हुआ है जो विशेष विचारणीय है।

१९

अब नहि मानूॅं राणा थारी, मै बर पायो गिरधारी।

मनि कपूर की एक गति है, कोऊ कहो हजारी।

ककर कचन एक गति है, गुॅंज मिरच इकसारी।

अनड घणी को सरणो लीनो, हाथ सुमिरनी धारी।

जोग लियो जब क्या दलगीरी, गुरू पाया निज भारा।

साधू सगत मह दिल राजी, भइ कुटुम्ब सूँ न्यारी।

क्रोड बार समझाओ मोकूँ, चालूॅंगी बुद्धि हमारी।

रतन जडित की टोपी सिर पै, हार कठ को भारा।

चरन घूघरू घमस पडत है, म्हे करा स्याम सूॅं यारी।

लाज सरम सब ही मै हारी, यौ तन चरण अधारी।

मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, झक मारो ससारी॥१९॥†

पाठान्तर १,

अब नहि मानाला म्हे थारी, म्हाने बर मिलि गिरधारी।
मन कपूर की एक ही गति है, कहा कहू बार हजारी।
ककर कचन एक गिणत है, गुज मिरच एक सारी।
अनन्त धणी के सरणे आई, हाथ सुमिरिणी धारी।
जोग लियो जब बाद तजी री, गुर पाया निज भारी।
साध सगत मेरो मंन राजी, भई कुटुब सू न्यारी।
क्रोड बार समझावो मोकू, चालूगी बुद्धि हमारी।
म्हे राणा के परत[1] न रहस्या, कई बार कह कह हारी।
सौ बातन की एक बात है, अब तो समझ गवारी।
रतन जडित की टोपी सिर पर, हार कठ को भारी।
चरण घूँघरा घमस पडत है, "म्हे" करॉ स्याम सू न्यारी।
लाज सरम तो सभी गुमाई, यो तन चरणा धारी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी।†

उपर्युक्त पद निम्नॉकित अन्तर के साथ भी पाया जाता है।
१ अतिभारी। २. जब बाद तजी री। ३ मै भई स्याम की प्यारी।

पाठान्तर २,

अब तो नही म्हें थांरी म्हांने, वर मिलिया गिरधारी।
मन कपूर की एक ही गति है, कहा कहूं बार हजारी।
ककर कंचन एक गिणत है, गुज मिरच इकसारी।
अनन्त धणी के सरणे आई, हाथ सुमिरणी धारी।
जोग लियो जब सब ही त्याग्यो, गुरु पाया निज भारी।
साध संगत मेरो दिल राजी, भई कुटुब सू न्यारी।
कोटि बेर समझावो मोकूं, चालूगी बुद्धि हमारी।
म्हें राणा के परत न जावा, केई बेर कह हारी।

---

१ लौट कर।

सुवरण राग एक ही गति है, अब तो समझ गवारी।
रतन जटित की टोपी सिर पर, हीरा कठी धारी।
पाय घूघरा घमस पडत है, करी स्याम सू यारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहारी।†

उपर्युक्त पद मे अभिव्यक्त भावनाएँ विशेष महत्वपूर्ण है। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट होता है कि पद की रचना गृह त्याग के बाद ही हुई है। "जोग लियो कह हारी" जैसी अभिव्यक्ति के आधार पर ऐसा सम्भव प्रतीत होता है कि इस पद की रचना शायद मीराँ को लौटा लाने के प्रयास के अवसर पर हुई है। पद की नवी पक्ति मे प्रयुक्त "गवारी" सम्बोधन किसके प्रति हुआ, यह भी कही से स्पष्ट नही होता। पद विशेष विचारणीय है।

२०

अरे राणा पहली क्यो न बरजी, लागी गिरधारिया से प्रीत।
मार चाहे छाँड राणा, नही रहू मै बरजी।
सगुना साहिब सुमरता रे, मै थारे कोठे[1] खटकी।
राणा जी भेज्या विष रा प्याला, कर चरणामृत गटकी।
दीनबन्धु सांवरिया है रे, जाणत है घट घट की।
म्हांरे हिरदा माहि बसी है, लटकन मोर मुकुट की।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मै छू नागर नटकी ॥२०॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

२१

राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मे चलूगी चाल अनूठी।
साकली गली मे सतगुरु मिलिया, क्यूकर फिरू अपूठी।
सदगुरु जी सू बाता करता, दुरजन लोगा ने दीठी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अँगीठी ॥२१॥

---

१ कहाँ

पाठान्तर १,

याही बदनामी मीठी हो, राणा जी, याही बदनामी मीठी ।
रावली ड्योढया म्हाने सतगुरु मिलिया,किस बिध फिरुगी अपूठी।
सत सगति मे ग्यान सुणै छी, दुरजन लोगा मोहि दीठी ।
यो मन मेरो हरि मे बसियो, जैसे रग मजीठी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो ज्यूँ अगीठी ।

पाठान्तपुर २,

राणा जी म्हाने याही बदनामी मीठी ।
साकडली सेरयां जन मिलिया, क्यू कर फिरू अपूठी ।
राम जी सू मे तो बात करै छी, दुरजन लोगा ने दीठी ।
बुरा जी कहो नै कोई,भला जी कहो नै,नै आनो किस की बसीठी ।
जन मीराँ के है निन्दक प्राणी, जल बलि होई अगीठी । †

पाठान्तर ३,

राणा जी मुझे यह बदनामी लगे मीठी ।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मै चलूगी चाल अपूठी ।
साकली गली मे सतगुरु मिलिया, क्यू कर फिरूं अपूठी ।
सतगुरु जी सू बातज करता, दुरजन लोगा ने दीठी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अंगीठी ।†

इस पाठ की प्रथम दो पक्तियों पर भापा की दृष्टि से आधुनिक प्रभाव है ।

पाठान्तर ४,

राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी ।
थे तो राणा जी राजकवर छो, म्हे राठोडा री बेटी ।
भलाई कहो म्हांने बुराई कहौ जी, नही माना रे किसी की ।

साकडी गली मे म्हारा सतगुरु मिलिया, कैसे फिरूगी अपूठी।
खभ फाड मीराँ कने गरज्या, दुरजन जलाये अगीठी। †

पाठान्तर ५,

राणा जी म्हाने या बदनामी लागे मीठी।
थारो रमैयो मीरा म्हाने बतावो, नाहि तो भक्ति थारी झूठी।
म्हारो रमैयो थारे घट मे बिराजे, थांरे हिये की क्यू फूटी।
प्रेम सहित मै करूगी रसोई, म्हारे गिरधर के भोग लगाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रग दियो रग मजीठी[1]। †

पद की तीसरी पक्ति की अभिव्यक्ति व भाषा शेष पद से सर्वथा भिन्न पडती है। अन्य पाठान्तरो मे भी ऐसी अभिव्यक्ति नही मिलती। अत इस पक्ति को तो निश्चित रूपेण प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

२२

माई! म्हाँरे साधाँ रो इकत्यार[2] है।
साधु ही पीहर, साधु ही सासरो, साँवरिया भरतार है।
जात पाँत कुल कुटुम्ब कबीला, साधू ही परवार है।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रमस्याँ साधा री लार[3] है ॥२२॥

---

१ मजीठी। यह रग राजस्थान मे विशेष रूप से बनाया जाता है। कई विभिन्न वनस्पतियो का रस मिला कर उबाल दिया जाता है। इस खौलते हुए रस मे ही कपडा भिगो देते हैं। कपडे का रग कुछ कालिमा लिए हुए लाल हो जाता है। साथ ही, बनस्पतियो के कारण, कपडे मे कुछ हल्की सी सुगन्ध भी हो जाती है। यह रग और सुगन्ध कपडे के चिथडे चिथडे हो जाने के बाद भी नही छूटता। अत 'रग दियो रग मजीठी' एक मुहावरा भी बन गया है। जिस का अर्थ है कि कभी न छूटने वाला रग। २ जोर, दबाव, ३ पीछे।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

राणा जी ! अब न रहूगी तोरी हटकी ।
साध संग मोहि प्यारा लागै, लाज गई घूँघट की ।
पीहर मेडता छोड़ा आपणा, सुरत निरत दोऊ चटकी ।
सतगुरु मुकुर दिखाया घट का, नाचूगी दे दे चुटकी ।
हार सिगार सभी ल्यौ अपना, चूडी कर की पटकी ।
मेरा सुहाग अब मोकूं दरसा, और न जाने घट की ।
महल किला राणा मोहि न चाहिये, सारी रेशम पट की ।
हुई दिवानी मीराँ डोलै, केस लटा सब छिटकी ।।२३।।

पाठान्तर १,

अब न रहूगी अटकी, मन लाग्यो गिरधर से ।
माणक मोती परत न पहिरू, मे तो कब की नटकी ।
गहणे म्हारे माला कठी, और चनण की कुटकी ।
राजपणा की रीत गुमाई, साधा रे संग भटकी ।
जेठ भऊ की लाज न राखी, घूँघट परै जो पटकी ।
म्हाने गुरू मिलिया अविनासी, दई ज्ञान की गुटकी ।
नित प्रति उठि जाऊं गुरू दरसण, नाचूँ दै दे चुटकी ।
लागी चोट निज नाम धणी की, म्हांरे हिवड़े खटकी ।
परम गुरू के सरणै जाऊ, करू प्रणाम सिर लटकी ।
साधा के सग करम लिखायो, हर सागर मे लटकी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण से छुटकी । †

† उपर्युक्त पाठ के प्राय. सभी क्रिया पद खड़ी बोली मे है ।

पाठान्तर २,

अब ना रहूगी स्याम अटकी, अजी म्हारो गिरधर से लाग्यौ
माणक मोती परत न पहिनूँ, मै तो नट गई कब की।
गहणो म्हारे माला कठी, और चन्दन की कुटकी।
राजापणा की रीति गुमाई, साधन के संग भटकी।
जेठ भऊ की लाज न राखी, घूँघट परै जो पटकी।
राज रीति मे करम लिखायो, हरि सागर मे लटकी।
चोट लगी निज नाम हरि की, सो म्हारे हिवडे खटकी।
प्रेम गुरा के चरण गहू, परणाम करू सिर लटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी।

उपर्युक्त दोनो पाठो मे "जेठ भऊ की लाज न राखी" अभिव्यक्ति विशेष महत्व पूर्ण है। प्रथम पाठ मे "राणा" को सम्बोधित किया गया है। यद्यपि अन्य पाठो से यह नही मालूम पडता कि पद किसी विशेष व्यक्ति को सम्बोधित करके कहा गया है। क्या यह "राणा" मीराँ के जेठ है ? जैसा कि उपर्युक्त दोनो पाठान्तरो से प्रतीत होता है। तब मीराँ किस की स्त्री थी ? अद्यावधि मान्य इतिहासानुसार मीराँ के पति भोजराज ही पाटवी के कुमार थे।

पाठान्तर ३,

अब न रहूगी अटकी, म्हारो मन लाग्यो गिरधर से।
म्हाने गुरु मिलिया अविनासी, दई ज्ञान की गुटकी।
लगी चोट निज नाम धणी की, म्हारे हिवड़े खटकी।
माणक मोती मे न पहिनूँ, मै तो कब न नटकी।
गहना म्हारे दोवड़ो, और चनणां की कुटकी।
राजकुल की लाज गमाई, साधा के सग भटकी।
नित प्रति उठि जाऊ गुरू दरसन, नाचूँ दै दै चुटकी।
परम गुरा के सरणे जाऊ, करु प्रणाम सिर लटकी।
जेठ बहू की काण न माना, पडो घूँघट पर पटकी।

करम लिखायो साध सगत मे, हर सागर मे लटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भव सागर से छटकी।।†

उपर्युक्त पाठ प्रथम पाठ के विशेष निकट पडता हे।

पाठान्तर ४,

मेरो मन लाग्यो हरि जूँ सूँ, अब न रहूंगी अटकी।
गुरू मिलिया रैदास जी, दीन्ही ज्ञान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरि की, म्हारे हिवडे खटकी।
माणक मोती परत न पहिरू, मै कब की नटकी।
गेणो तो म्हारे माला दोवडी, और चन्दन की कुटकी।
राजकुल की लाज गमाई, साधा के सग भटकी।
नित उठि हरि के मंदिर जास्या, नाचा दे दे चुटकी।
भाग खुल्यो म्हारो साध संगत सूँ, सांवरिया की बटकी।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड गई पटकी।
परम गुरा के सरण मै रहस्या, परणाम करा लुटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूं छुटकी।।†

पाठान्तर ५,

रूप देख अटकी, तेरो रूप देख अटकी।
देह ते बिदेह भई, ढुरि परि सिर मटकी।
मात पिता भ्रात बधु, सब ही मिल हटकी।
हिरदा ते टरत नाहि मूरति नागर नटकी।
प्रगट भयो पूरन नेह लोक जानें भटकी।
मीराँ प्रभु गिरिधर बिन, कौन लहे घटकी।।†

इस पाठ की चतुर्थ पक्ति के उत्तरार्द्ध "मूरति नागर नटकी" पाठ के बदले "सूरति वा नटकी" पाठ भी मिलता है।

पाठान्तर ६,

माई ! मै तो गोविन्द सो अटकी ।
चकित भए मै दृग दोऊ मेरे, लखि शोभा नटकी।
शोभा अग अग प्रति भूषण, बनमाला लटकी।
मोर मुकुट कटि किकनि राजे, दुति दामिनी पटकी।
रमित भई हो सावरे के सग, लोग कहै भटकी।
छुटि लाज कानि लोग, डर रह्यो न घर हटकी।
बिना गोपाल लाल बिन सजनी, को जाने घटकी।
मीराँ प्रभु के सग फिरेगी, कुज कुज भटकी।†

पाठान्तर ५ और ६ की भापा स्पष्ट रूपेण ब्रज भाषा है। भाषा के इस अतर के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति मे भी कितना गहरा अन्तर आ गया है। यह पहलू अत्यन्त विचारणीय ह। खडी बोली से प्रभावित राजस्थानी भाषा मे प्राप्त सम्पूर्ण पाठो से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है, जब कि ब्रजभाषा के पदो से वैष्णव प्रभाव ही स्पष्ट होता है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

बरजी मै काहू की नाहि रहू।
सुनो री सखी तुम सो, या मन की साची बात कहू।
साधु सगति करि हरि सुख लेऊ, जगतै हौ दूरि रहू।
तन मन धन मेरो सब ही जावो, भल मेरो सीस लहू।
मन मम लाग्यो सुमरण सेती, सब का मै बोल सहू।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सत्गुरु शरण गहू। ॥२४॥

उपर्युक्त पाठ की प्रथम पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर पाया जाता है —

सुनो री सखी तुम चेतन होइ के, मन की बात कहू ।

२

बरजी नाही रहूगी, म्हारो स्याम सुँदर भरतार।
इक बार बरजी, दोय बार बरजी, बरजी सो सो बार।
सासू बरजी ननदी बरजी,' राणो जी दावदार।
मीराँ के प्रभु अविनासी, पूरण ब्रह्म अपार। ॥२५॥

पद की तीसरी पक्ति का उत्तरार्द्ध विचारणीय है। "राणो जी 'दावदारा" सकेत किस ओर है ? राणा पद के दावेदार कुवर पाटवी या दबदबेबार "रोबीले व्यक्तित्व वाले" राणा स्वय, दोनो ही तरफ इसको घटाया जा सकता है। इतिहास और मान्यताए भी दुविधा-जनक ही है। अत उस आधार पर भी निर्णय नही किया जा सकता ।

३

काहू की मै बरजी नाही रहू।
जौ कोई मोकूँ एक कहै, मै एक की लाख कहू।
सास की जाइ मेरी ननद हठीली, यह दुख किन से कहू।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जग उपाहास सहू ॥२६॥ †

पदाभिव्यक्ति मे असगति है। साथ ही मीराँ जैसी भक्तिमती नारी द्वारा ऐसी छोटी वृत्तियो का वर्णन, वह भी गृह त्याग के बाद असम्भव ही प्रतीत होता है। पद की शुद्ध ब्रजभाषा को देखते हुए ऐसा ही प्रतीत होता है कि बृन्दावन पहुंचने पर ही ऐसे पदों की रचना हुई होगी।

पाठान्तर १,

मेरो मन लाग्यो सखी सांवलिया सो,
काहू की बरजी नाहि रहोंगी।
जो कोऊ मोको एक कहेगो,
एक की लाख कहोंगी।

सासु बुरी है, ननद हठीली,
यह दुख कोह बहोगी।·
मीराँ के प्रभु गिरिधर के कारण,
जग उपाहास सहोगी।†

इस पाठ की भाषा भी अशुद्ध है। "सहोगी, बहोगी" आदि न तो राजस्थानी मे ही होता है और न ब्रजभाषा मे ही। खडी बोली मे भी "सहूगी" आदि होगा। अस्तु, ऐसे पद और उसके गेय रूपान्तरो को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

लगभग एक ही भाव को व्यक्त करने वाले इन पदो पर विभिन्न भाषाओ का प्रभाव विचारणीय है। भाषा के अन्तर के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति मे भी अन्तर पड गया है। बहुत सम्भव है कि इसी तरह से मीराँ के अन्य पदो मे भी भाषा परिवर्त्तन के साथ ही साथ भाव परिवर्तन भी हुआ हो। यह एक अत्यन्त गम्भीर विचारणीय प्रश्न है।

४

नैना लोभी रे बहुरि सके नहि आय।
रोम रोम नख शिख सब निरखत, ललकि रहै ललचाय।
मैं ठाढ़ी गृह आपणे री, मोहन निकले आय।
बदन चन्द परकासत हेली, मन्द मन्द मुसकाय।
लोग कुटुम्बी बरजि बरजही, मानत पर हाथ गए बिकाय।
भली कहो कोई बुरी कहो, मै सब लई सीस चढ़ाय।
मीराँ प्रभु गिरिधरन लाल बिनु, पल भर रह्यो न जाय॥ २७॥†

पद की अन्तिम पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर पाया जाता है।

"मीराँ के प्रभु गिरिधर के बिनि, पल भर रह्यो न जाय।"

कही कही पद की तीसरी पक्ति "मै ठाढी . ललचाय" के बाद निम्नाकित एक पक्ति और भी मिलती है।

"सारग ओट तजे कुल अकुस, बदन दिये मुसकाय ।"

उपर्युक्त पद मे आए 'गिरिधरन लाल' का प्रयोग विशेप विचारणीय है ।

५

नयन लागे तब घूँघट कैसो, लोक लाज तिनका ज्यूँ तोर्यो ।
नेकी बदी हूं सिर पर धारी, मन हाथी आकुस दे मार्यो ।
प्रगट निसान बजाय[1] चली, राणा राव सकल जग छोर्यो ।
मीराँ सबल धणी के सरणे, का भयो भूपति मुख मोर्यो ।।२८।।

पद की तृतीय पक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। मीरा सिर्फ राणा परिवार "श्वसुर कुल" का ही परित्याग नही कर रही है, अपितु "राव परिवार" "पितृ कुल" का भी त्याग कर रही है। ऐसी ही अभिव्यक्ति सघर्ष द्योतक एक और पद मे भी है, जिसका प्रारम्भ होता है "अब नहि बिसरू म्हारे हिरदे लिख्यो हरि नाम। " सदेश वाहक द्वारा लौट जाने का आग्रह किए जाने पर मीराँ का उत्तर है, "कर सूरापण[1] नीसरी, म्हारे कुण राणे कुण राव।" इन दोनो ही पदो मे प्रयुक्त यह "राव" शब्द विशेष विचारणीय है।

इसी पक्ति के पूर्वार्द्ध से व्यक्त होने वाली भावना "प्रगट निसान बजाय चली" भी विरोधाभिव्यक्ति के राजस्थानी पद स० ५ म मिलती है। माता के प्रति मीराँ का कथन "देर नगारो[2] मीराँ चढ गयी, माता हियो मत हारी जी" यद्यपि मीराँ की दृढ भक्ति भावना अन्य पदों से भी व्यक्त होती है, तथापि इस तरह की भावना अन्य पदो म नही मिलती ।

---

१ भीष्म प्रतिज्ञा, २ ताल ठोककर।

वियोगाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

छोड मत जाज्यो जी महाराज,
मै अबला बल नाहि गुसाई, तुम ही मेरे सिरताज।
मै गुणहीन गुण नाहि गुसाँई, तुम समरथ महाराज।
थाँरी होइ के किणरे[1] जाऊँ, तुम ही हिंवडा[2] री साज[3]
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अब के लाज। ।।२९।।

२

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहडी लगाय,
छोड गया बिस्वास सघाती,[4] प्रेम की बाती[5] बराय[6]।
बिरह समद[7] मे छोड गया हो, नेह की नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम बिन रह्यो न जाय। ।।३०।।

पाठान्तर १,

पिया तें कहाँ गयो नेहरा लगाय।
छाँडि गयो अब कहाँ बिसोसी, प्रेम की बाती बराय।
बिरह समुद्र मे छाडि गयो पिव, नेह की नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिनि रह्यो न जाय।

---

१ कहाँ, २ हृदय का, ३ शृंगार ४ विश्वासघात करके, ५ दीप, ६ जलाकर, ७ समुद्र।

३

हो जी हरि कित गये नेह लगाय।
नेह लगाय मेरो मन हर लियो, रस भरि टेर सुनाय।
मेरे मन मे ऐसी आवै, मरुँ जहर विप खाय।
छॉड़ि गयो विश्वासघात करि, नेह केरि नाव चलाय।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, रहै मधुपुरी छाय ॥३१॥

पाठान्तर १,

कितहूँ गये नेह लगाये।
प्रीति लगाई मेरी मन हर लीनो, रस भरि टेर सुनाई।
हम से बैर प्रीति कुब्जा से, हमै न कहूँ सुहाई।
मेरे तो मन मे ऐसी आवे, मरुँगी जहर विष खाई।
हमकूँ छॉडि गये विस्वासी, बिरह की नाव चढाई।
मीरॉ के प्रभु हरि अबिनासी, रहे मधुपुरी छाई।

उपर्युक्त तीनो पदों का गहरा साभ्य विशेष विचारणीय है इस पद व इसके पाठान्तर पर ब्रज भाषा का प्रभाव सुस्पष्ट है। भाषा के इस अन्तर के साथ ही साथ भावाभिव्यक्ति पर भी पौराणिक गाथाओ का प्रभाव विचारणीय है।

उपर्युक्त पद और उसके सभी पाठान्तरो मे विश्वासघात करने की भावना बहुत ही स्पष्ट हो उठती है, यह एक विचारणीय पहलू है।

४

जावो हरि निरमोहिडा, जाणी थॉरी प्रीत।
लगन लगी जब प्रीत और ही, अब कुछ अँवली[१] रीत।
अमृत प्याय के विष क्यूँ दीजै, कूण गाँव की रीत।
मीरॉ कहै प्रभु गिरिधर नागर, आप गरज के मीत ॥३२॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ उलटी।

५

थाँने काँई काँई[1] कह समझावूँ, म्हाँरा बाल्हा गिरधारी।
पूरब जनम की प्रीति हमारी, अब नही जात निवारी[2]।
सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीत भई छै भारी।
म्हाँरे घर पधारो गिरधारी, मगल गावै नारी।
मोती चोक पुराऊँ बाल्हा[3], तन मन तो पर वारी।
म्हाँरा सगपण[4] तोसूँ साँवलिया, जुग सो नही बिचारी।
मीराँ कहै गोपिन को बाल्हो, हमसूँ भयो ब्रह्मचारी।
चरन सरन है दासी तुम्हारी, पलक न कीजै न्यारी। ॥३३॥

पद मे व्यक्त की गयी भावना विशेष ध्यान देने योग्य है। इस भाव को प्रदर्शित करने वाला यह पद अपनी तरह का एक ही है। मीराँ के पदो मे प्राय प्राप्त टेक परम्परा (मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर) भी इसम नही है।

सम्पूर्ण पद की राजस्थानी भाषा को देखत हुए अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त "तुम्हारी" शब्द के बदले "थाँरी" शब्द का होना अधिक युक्ति युक्त प्रतीत होता है।

६

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर म्हाँरे मै गिरिधर की, कहो तो बजाऊँ ढोल।
आप तो जाय विदेशाँ छाये, हमको पड गयो झोल[5]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम के कोल[6]। ॥३४॥

पाठान्तर १,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल[7]।
दुनियाँ क्यो दे बोल, ये करमन के भोग।

---

१ क्या-क्या, २ हटाई, ३ बालम, ४. व्याह द्वारा हुए सबध ५ अनिश्चित परिस्थिति, ६ बचन, ७ ताने।

आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दिया जोग ।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल ।

इस पाठ पर ब्रज भाषा का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

गिरिधर, दुनियाँ दे छै बोल।
गिरिधर मेरा मै गिरिधर की, कहो तो बजाऊ ढोल।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ लिख दियो जोग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पिछले जनम का कोल।

उपर्युक्त तीनो पदो पर विचार करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि इन प्रथम दोनो पाठो का सम्मिश्रण ही इस पाठ विशेष का आधार है।

७

अपने करम को छै दोस, काकूँ दीजै उधो।
सुणियो मेरी भैण[1] पडोसण, गैले[2] चालत लागी चोट।
पहली मै ग्यान मान नही कीनो, मै ममता की बाँधी पोट।
मे जाणूं हरि नाहि तजैगे, करम लिख्यो भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, परो निवारोनी सोच ।।३५।।†

पद की द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त "भैण" शब्द के बदले "बग्गड' शब्द का ही प्रयोग मिलता है।

पदाभिव्यक्ति से पश्चाताप ही प्रकट होता है। इस भावना का द्योतक पद यही एक है।

पाठान्तर १,

अपणां करम ही का खोट, दोष काँई दीजै री आली।
सुणजो री मेरी सग की सहेली, बाट चलत लागी चोट।

---

१ बहन, २ रास्ता।

मै तॉ सूँ बूझूँ कोई न बतावे, सब ही बटाऊँ लोग।
अपणॉ दरद कूँ सब कोई जाणै, पर दु ख को नाहि कोई।
मीरॉ के प्रभु हरि अबिनासी, बची चरण की ओट।

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही हुआ है।†

पाठान्तर २,

सखी आपणॉ स्याम षोटा, दोष नही कुबज्या मे।
आपन हाथि लिख न भेजे, कॉई कागद का टोटा।
खारी बेल के कडा फल लागा, कहा छोटा कहा मोटा।
कुबज्या दासी कसराय की, वे नन्दजी का ढोटा।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणॉ का वोटा।†

भाषा पर ब्रज का और भाव पर पौराणिक गाथाओ का प्रभाव है।

पाठान्तर ३,

कछु दोष नही कुबज्या ने, बिरी अपना स्याम खोटा।
आप न आवे, पतिया न भेजे, कागज का कॉई टोटा।
नौ लख धेनु नन्द घर दूधे, माखन का नाई टोटा।
आपही जाय द्वारिका छाये, ले समुँदर की ओटा।
कुबज्या दासी कसराय की, वे नन्द जी का ढोटा।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, कुबज्या बड़ी हरि छोटा।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का अभाव है। कुछ पक्तियो, (पक्ति स० २ और ४) के आधारपर इस पाठ को पाठ स० २ का ही विस्तृत रूप कहा जा सकता है।

इस पाठ की अन्तिम पक्ति है, "मीरा के प्रभु गिरिधर नागर"। परन्तु प्रथम तीनो पाठ की अन्तिम पक्ति है "मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी" यह भी एक महत्वपूर्ण विचारणीय पहलू है।

८

निरमोहिडा नेह न जोडे छै।
यो मन कह्यो न माने, अमृत मे बिष घोरे छै,
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम कूँ बिरहा झोरे[१] छै।
कुबज्या दासी कंसराई की, सरब[२] सुख लोरे छै।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लागी प्रीत क्यूँ तोडे छै। ॥३६॥

९

माई, मेरा पिया बिन अलूणो[३] देस।
राग रग सिणगार[४] न भावै, खुलि रहै सिर के केस।
सावण आयो साहिब दूरे, जाइ रहे परदेस।
सेज[५] अलूणी भवन अकेली, रैण भयकर भेस।
आव सलूणे प्रीतम प्यारे, बीते जोबन बेस[६]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तन मन करूँ सब पेस[७]। ॥३७॥

१०

नातो हरि नाँव को माई, मोसूँ तनक न बिसर्‌यो जाई।
पाना[८] ज्यूँ पीली भई, लोग कहै पिड रोग।
छाने[९] लांघण[१०] मै किया जी, राम मिलण के जोग[११]।
बाबल[१२] बैद बुलाइया, पकडि दिखाई (म्हाँरी) बाहि।
मूरखि वेद न जानहि, (म्हाँरे) करक कलेजा माँहि।
वैद जावो घर आपणै, (म्हाँरो) नाव न लेईं।
मै तो दाधी[१४] हरि नांव की, मोहि काहे को दुष देईं।

---

१ झकझोरना, २ सर्व, ३ नमक बिना, भावार्थ, रसहीन, ४ शृंगार, ५ सेज, ६ वयस, ७ समर्पण, ८ पत्ते, ९ छिपा कर, १० उपवास, ११ हेतु। १२ बाबुल, पिता, १३ नाम, १४ जली हुई,

काढि करेजो मै धरू, कागा तू ले जाइ।
जा देसा म्हारो पिव बसै, वे देखे तू खाइ।
छनि आगनि छनि मदिरा, छनि छनि ठाढी होइ।
छाइ ज्यूँ घूमत फिरू, म्हारो मरम न जाने कोइ।
तन सूखि पिजर भयौ, सूका ब्रच्छ की छांहा।
आगलियारी मूँदडी म्हारे आवण लागी बाँहा।
रे रे पापी पषीवडा, पीव का नाम न लेह।
पिव मिलै तो मै जीवूँ, नातरि त्यागूँ (म्हारो) जीव।
कोइक हरजन सामलै[१] रे, पिव कारण जिव देह।
मीराँ व्याकुल ब्रहनी, पिव बिन कसौ सनेह। ॥३८॥

पाठान्तर १,

नातो नाम को रे मोसूँ तनक न तोड्यो जाय।
पाना ज्यूँ पीली पडी रे, लोग कहै घट रोग।
छाने लाघण मै किया रे, राम मिलण के जोग।
बाबल बैद बुलाइया रे, पकड दिखाई म्हाकी बाह।
मूरखि बैद मरम नही जाणै, करक कलेजा माह।
जा बैदा घरि आपणै रे, मेरो नाव न लेइ।
मै तो दाधी विरह की रे, तू काहे को दारु[२] देइ।
मास गले गल[३] छीजिया[४] रे, करक रह्या गल आहि[५]।
आगलिया रो मूँदडो रे, म्हारे, आवण लाग्यो बाहि।
रहो रहो पापी पपीहरा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोई विरहणी साम्हले, (सजनी) पिव कारण जिव देइ।
खिण मदिर खिण आगणे, खिन खिन ठाढी होइ।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री, म्हारी बिथा न बूझै कोइ।

---

१ साम्हलै, सुनले, २ दवा, ३ गल-गल कर, ४ क्रमश नष्ट हो गया, ५ आकर, गले मे आकर।

काँढि कलेजा मै धरू रे, कौवा तू ले जाइ।
ज्या देसा म्हारो पिव बसै, (सजनी) वे देखे तू खाइ।
म्हारो नातो नाव को रे, और न नातो कोइ।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, पिया दरसण दीजो मोइ।

११

तै दरद नहि जान्यू, सुनि रै वैद अनारी।
तू जा वैद घरि आपणै रे, तुझै खबर मोरी नाही।
मोरे दरद को तू मरम नहि जाणै, करक कलेजा रे माही।
प्राण जाण का सोच नहि मोहि, नाथ दरस द्यौ आरी[1]।
तुम दरसन बिन जिव यूँ तरसै, ज्यूँ जल बिन पनवारी।
कहा कहू कछु कहत न आवै, सुणिज्यो आप मुरारी।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, जनम जनम की मै थारी ॥३९॥†

भाषा और भाव दोनो ही के आधार पर यह पद पद स० १० की कुछ पक्तियो का गेय रूपान्तर ही सिद्ध होता है।

पद के इस रूप मे पूर्वापर सम्बन्ध का भी अभाव है। इससे उपर्युक्त कथन का समर्थन ही होता है।

१२

रमैया बिन मोसूँ रह्योइ न जाय।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणाँ रहै मुरझाइ।
बार बार मै अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाइ।
मीराँ कहै प्रभु तुम मिलिया बिन, तरस तरस तन जाइ ॥४०॥

---

१ शीघ्र।

१३

पिय बिन रह्योइ न जाइ।
तन मन मेरो पिया पर वॉरुँ, बार बार बलि जाइ।
निसदिन जोऊँ बाट पियाँ की, कबरे मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुम्हारी, लीजो कठ लगाइ। ॥४१॥

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रथम पक्तियो का साम्य विचारणीय है।

१४

रे पपइया प्यारे कब को बैर चितार्यो[1] ।
मै सूती छी अपने भवन मे, पिय पिय करत पुकार्यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवडो करवत सार्यो।
उठि बैठो बृच्छ की डाली, बोल बोल कठ सार्यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,हरि चरणाँ चित्त धार्यो ॥४२॥

१५

तुम देख्या बिन कल न पडत है, भली ए बुरी कोइं लाख कहो जी।
नेह को पेड़ो बोहोत करुण है, च्यारी कही दस और कहो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, प्रीत करो तो बोल सहोजी।
॥४३॥†

पाठान्तर १,

कृष्ण मेरे नजर के आगे ठाढो रहो रे।
मै जो बुरी सान और भली है, भली की बुरी मेरे दिल रह्यो रे।
प्रीत को पेणूडो बहुत कठिन है, चार कही दस और कहो रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रीत करो तो मेरा बोल सहो रे।†

---

१ बदला लिया।

१६

म्हारो मनडो लाग्यो हरि सूँ, मैं आज करूँ अतर सूँ।
माधोरी मूरति पलक न बिसरूँ, सो ले हिरदै धरूँ।
आवन कह गये अजहूँ न आये, बिन दरसण में तरसूँ।
म्हाँरो जनम सुफल होय, जादिन हरि के चरण परसूँ।
मीरा के प्रभु दरसण दीज्यो, तन मन अरपण करस्यूँ। ॥४४॥

१७

म्हाँरो मन मोह्यो छै जी स्याम सुजाण।
माधुरी मूरत सुरत सुन्दरी जाणे कोटिक भान[1]।
कसूमल पाग केसर्‌यो जामो, सोहै कुडल कान।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम बिन तलफत प्राण। ॥४५॥

१८

बाई, म्हाँरे रावल भेष।
वे स्याम बहो जटाधारी, अब ही अजन रेख।
स्वेत बरण रग के कथा पहर्‌या, भिक्षा मागा देस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करहूँ अलख अलेख ॥४६॥+

पाठान्तर १,

बाई, थाराँ नैन रावल भेख।
बानी श्याम बोहो जटाधारी, अन्जन रेख।
स्वेत अरुण कंथा बिराजत, माँगत देस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, करत करत अलेख।†

---

१. भानु, सूर्य।

पाठान्तर २,

बाई म्हॉरे नैन रावल भेष।
बिना श्याम सखी मे जटाधारी, सेली अंजन रेख।
सुवेद वरण अग कथा राजै, भिक्षा मांगूँ देश।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, करूँगी अलख अलेख ।†

उपर्युक्त तीनो ही पाठो से कोई भी अर्थ स्पष्ट नही होता।

१९

डाल गयो रे गल मोहन फॉसी।
ऊँची सी अटाली पर मेहुँडा बरसत,
बूँद लगी जसी तीर की गॉसी।
अॅबुवा की डाली पर कोयल बोलत,
म्हॉरो तो मरनो भयो थॉरी भयी हॉसी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर,
थे तो मेरा ठाकुर, मै तो थॉरी दासी ॥४७॥†

उपर्युक्त पद मे वसत और वर्षा का वर्णन एक ही साथ हुआ ह, यह असगत प्रतीत होता है।

पाठान्तर १,

डारि गयो मन मोहन फासी।
आॅबा की डाली कोयल इक बोले।
मेरो मरण अरु जग केरी हॉसी।
बिरह की मारी मै बन बन डोलूँ।
प्राण तजूँ, करवत ल्यूँ कासी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर।
तुम मेरे ठाकुर मै तेरी दासी।†

२०

ओलूँडी[1] लगाय गयो है व्रज को बासी, कब मिलि जासी हे।
चपेली री डाल कोयलिया बोले, बोलत बचन उदासी हे।
गोकुल ढूँढ वृन्दावन ढूढ्यो, ढूँढी मथुरा कासी हे।
रैंण द्विवस मछली ज्यूँ तलफ, तलफ तलफ जिवडो जासी हे।
जो कोई प्रभु जी नैं आण मिलावै, छूटत प्राण बचासी हे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,हरि जी मिल्या दु ख जासी हे।
॥४८॥

२१

ओलूँ थारी आवै हो महाराज अविनासी।
हो म्हाने कब रे दरस दिखासी।
बिरह वियोगिन बन बन डोलूँ, करवत लूँगी कासी।
निसि दिन उभी पथ निहारु, कब मोहे धीर बधासी।
कृपा करो म्हारे भवन पधारो, नाही ये जिवडो जासी।
मे भेद अभागण काहे को सरजी, पिया मोसूँ रहत उदासी।
तुम हो हमारे अतरजामी मैं (थारा) चरणा री दासी।
मीराँ तो कुछ जाणत नाही, पकडी टेक निभासी। ॥४९॥

इस पद की अतिम पक्ति सर्वथा नूतन शैली मे है,। पद की भाषा राजस्थानी प्रधान है, अत सातवी पक्ति मे प्रयुक्त 'तुम' और 'हमारे' शब्दो के स्थान पर 'थे' और 'म्हारा' होना ही उपयुक्त प्रतीत होता है।

२२

परम सनेही राम की नित ओलूँ री आवै।
राम हमारे हम है राम के, हरि बिन कछु न सुहावै।

---

१. याद, स्मृति।

आवण कह गए अजहू न आए, जिवडो अति अकुलावे।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरण कवल की लगन लगी, नित बिन दरसण दुख पावै।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, आनन्द वरणूँ न जावै।

।।५०।।

पद की चतुर्थ पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर प्राप्त है।
"तुम दरसण की आस रमैया, निसि दिन चितवत जावै।"

२३

सावरिया, मोरे नैणा आगे रहिज्यो जी।
म्हाने भूल मत जाज्यो जी, मोहन लग्न लगी निभाज्यो जी।
राणा जी भेज्यो विष रो प्यालो, सो अमृत कर पीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी।

।।५१।। †

उपर्युक्त पद की प्रथम दो और अन्तिम दो पक्तियो मे अर्थ समन्वय नही होता। द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त 'पीज्यो' शब्द के स्थान पर 'दीज्यो' शब्द ही अधिक अर्थमय सिद्ध होता है।

२४

सावरिया, म्हारी प्रीतडली न्हिभाज्यो।
प्रीत करो तो स्वामी ऐसी कीज्यो, अधविच मत छिटकाज्यो[1]।
तुम तो स्वामी गुणरा सागर, म्हारा ओगुण चित मति लाज्यो।
काया गढ घेरा ज्यो पड़्या छै, ऊपर आपर खाज्यो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चित्त चरणा रखाज्यो। ।।५२।

पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थहीन प्रतीत होती है।

---

१. दूर हटा देना।

२५

घडी एक नही आवडे[1] तुम दरसण बिन मोय।
तुम ही मेरे प्राण जो, कासू जीवण होय।
धान[2] न भावै, नीद न आवै, बिरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरु रे, मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमायो रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरता[3] रे, नैण गमाया रोय।
जो मै ऐसा जाणती, प्रीत किए दुख होय।
नगर ढिढोरा पीटती रे, प्रीत न कीज्यो कोय।
पथ निहारु, डगर[4] बुहारु[5], ऊभी मारग जोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होई। ॥५३॥

पद की भाषा प्रधानत राजस्थानी है सिर्फ कुछ सर्वनाम खडी बोली के है। जैसे 'तुम' अत इनका भी राजस्थानी के अनुकूल 'थे' हो जाना ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

२६

को विरहणि को दु ख जाणै हो।
जा घट विरहा सोई लख[6] है, कै कोई हरिजन मानै[7] हो।
रोगी आतर[8] वेद बसत है, वैद ही ओखद जाणै हो।
विरह करद[9] उरि अतरि माही, हरि बिनि सुख कानै[10] हो।
दुग्धा आरत फिरै दुखारी, सुरत बसी सुत मानै हो।
चात्रग स्वाति बूँद मन माही, पिव पिव उकलाणै[11] हो।
सब जग कूड़ो कंटक दुनिया दरध[12] न कोई पिछाणै हो।
मीराँ के पति आप रमइया, दूजो नही कोइ छाणै हो। ॥५४॥

---

१ चैन पडे, २ अन्न, ३ याद करते हुए, ४ रास्ता, ५ झाड दूं, साफ करदूं, ६ अदाज लगा लेना, ७ विश्वास कर ले, ८ अतर, ९ करक, १० काम है, छोटा है। ११ व्याकुल होना, १२. दर्द,

२७

रमैया बिन नीद न आवै।
नीद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच दुलावै।
बिन पिया जोत मदिर अँधियारो, दीपक दाय[1] न आवै।
पिया बिन मेरी सेज अलूणी, जागत रैण बिहावै।
पिया कब रे घर आवै।
दादुर मोर पपीहरा बोले, कोयल सबद सुणावै।
घुमट घटा ऊलर होई आई, दामिन दमक डरावै।
नैना झर लावे।
कहा करु कित जाऊ मोरी सजनी, वेदण कूण बुतावै[2]।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जडी घस लावै।
को है सखी सहेली सजनी, पिय कूँ आण मिलावै।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे मन मोहन मोहि भावै।
कबै हस कर बतलावै[3]। ॥५५॥

२८

साजन, म्हारी सेजडली कद आवै हो।
हसि हसि बात करु हिडदा की, जब जिवड़ो जक[4] पावै हो।
पाचू इन्द्री बस नही मोरी, घन ज्यूँ धीर धरावै हो।
कठिन विरह की पीड गुँसाई, मिलि करि तपत बुझावै हो।
या अरदास[5] सुणो हरि मोरी, विरहणी पल्लो बिछावै[6] हो।
॥५६॥

---

१ पसन्द, २ बन्द कर देना, मिटा देना, ३ बात करे। ४ चैन, ५ अर्ज, प्रार्थना, ६ "पल्लो बिछावै"—दैन्य स्वीकार करना।

२९

म्हारे घर आवो जी, राम रसिया, थारी सावरी सूरत मन बसिया।
घुडला जीव पूरबो मोहन, बखतर खासा कसिया।
चुन चुन कलिया सेज बिछाई; ऊपरि राखिया तकिया।
सिरे गाय की पूँछ मगायो, चावल गेया पसिया।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल मन बसिया ॥५७॥†

पदाभिव्यक्ति अर्थ हीन है।

३०

भवन पति, तुम घरि आज्यो हो।
बिदा तागी तन माहिने (म्हारी) तपत बुझाज्यो हो।
रोवत रोवत डोलॉत, सब रैण बिहावै हो।
भूख गई, निदरा गई, पापी जीव न जावै हो।
दुखिया को सुखिया करो, मोहि दरसण दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अब बिलम न कीजै हो। ॥५८॥

पद की भाषा मुख्यत. राजस्थानी है, अत भाषा के दृष्टि कोण से 'डोलॉत' प्रयोग के बदले 'डोलता' प्रयोग ही विशेष शुद्ध है। 'डोलता' का अर्थ है घूमते हुए।

३१

बेग पधारो सावरा कठिन बनी है, आप बिना म्हारो कूण धनी है।
दुखिया कूँ देख देर मत कीज्यो, देर की बिरिया और घणि है।
दिन नही चेत, रैन नही निद्रा, दुसमन के हिये हरस घणि है।
जमडा की फौजा प्रभु आन पड़ी है, बेग हटावो मोटा आप धनीहै।
मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल बिच आन खडी है।
॥५९॥†

पद मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

३२

म्हारे घर होता जाज्यो राज ।
अब के जिन[१] टाला दे जावो, सिर पर राखूँ विराज।
पावणडा[२] म्हाके भले ही पधारो, सब ही सुधारण काज।
म्हे तो जनम जनम की दासी, थे म्हारा सिरताज।
म्हे तो बुरी छा,थाके भली छै घणेरी,तुम हो एक रसराज।
थाने हम सब दिन की चिता,तुम सब के हो गरीब निवाज।
सब के मुगुट सिरोमनि, सिर पर मानूँ पुण्य की लाज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बाह गहे की लाज ॥६०॥†

पाठान्तर १,

होता जाज्यो राज, महलाँ म्हारे होता जाज्यो राज।
मे अगुणी मेरा साहब सुगुणा, सत सवारे काज।
मीराँ के प्रभु मन्दिर पधारो, कर केसरिया साज।†

इस द्वितीय पाठान्तर की भाषा अधिक शुद्ध है । प्रथम पाठ को अभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का अभाव है।

३३

साजन, बेगा[३] घर आज्यो जी।
आदि अतर रा यार हमारा, हम को सुख लाज्यो जी।
निसि दिन चित चरणा धरु, हो मनडा ते न बिसरु।
नजरि परै तुजि ऊपरि, धन जोवन वारु।
हो मे पतिवरता रावरी, काहू तन काजै जी।
अपनी वोरि निहारि के, प्रीति निभाज्यो जी।
हरि बिन सुरति कहा धरु, नित मारग जोऊ जी।

---

१ नही, २ अतिथि, ३ शीघ्र।

साँई तेरे कारणे, भरि नीद न सोऊ हो।
बिछरिया दिन बहु भया, बेगा दरस दिखाज्यो जी।
प्रीति पुराणी जाणि कै, वाही कृपा रषाज्यो जी।
मेरे अवगुण देखि कै, तुम नाहि तुलाज्यो जी।
मेरे कारण रावरो, मति बिडद लाज्यो जी।
वा बिरिया कब होसी, कोइ कहै सदेशा हो।
मीराँ के उणवात रो, मति परो अनेसा हो ।॥६१॥†

पदाभिव्यक्ति मे असगति और पुनुरुक्ति है।

३४

आवो मनमोहना जी जोऊ थारी बाट।
खान पान मोहि नेक न भावै, नैण न लागे कपाट।
तुम आया बिन सुख नाहि मेरे, दिल मे बहोत उचाट।
मीराँ कहे मै भई रावरी, छाडो नही निराट[1]। ॥६२॥

३५

आवो मनमोहना जी मीठा थारां बोल।
बालपना की प्रीत रमइया जी, कदे[2] नहि आयी थारो तोल।
दरसण बिना मोहि जक[3] न पड़त है, चित्त मेरो डावाडोल।
मीराँ कहै मै भई रावरी, कहो तो बजाऊ ढोल। ॥६३॥

पद की द्वितीय पक्ति से व्यक्त होती भावना विशेष विचारणीय है।

३६

कोई कहियो रे विनती जाइकै, म्हारा प्राण पिया नाथ नै।
जा दिन के बिछुरे मन मोहनं, कल न परे दिन रात नै।

---

१ निरावलम्ब २ कभी, ३ चैन ।

देस विदेस सदेश न पूगे[1], बिरहिन तलफे साथ नै।
प्यारा महरम दिल की जाणै, और न जाणै कोई बात नें।
मीराँ दरसण कारण झूरै, ज्यूँ बालक झूरै मात नै। ।।६४।।

पद की चतुर्थ पक्ति मे प्रयुक्त 'महरम' शब्द की अर्थ सगति नही बैठती। इस शब्द के बदले 'म्हारा' कर देने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। भाषा के दृष्टिकोण से भी यह गलत नही हो सकेगा क्योकि पद की भाषा राजस्थानी ही है।

३७

पतिया ने कूण पतीजै,[2] आणि खबरि हरि लीजै।
झूठी पतिया लिख लिख भेजे, क्या कीजै क्या दीजै।
ऐसा है कोइ बाच[3] सुणावै, मै बाचू तो भीजे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल चित दीजै। ।।६५।।

प्रथम और तृतीय पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त है।
प्रथम पक्ति "पतिया ने कूण पतीजै, म्हारो असुँवा सो अचल भीजै।"
तृतीय पक्ति "ऐसा है कोई बाच सुणावै, मै बांचू तन छीजै।"

३८

थे छो म्हारा गुण रा सागर, औगुण (म्हारा) मत जाज्यो जी।
लोक न धीजै (म्हारो) मन न पतीजे, मुखडारो सबद सुणाज्यो जी।
मै तो दासी जनम जनम की, म्हारे आगण रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेड़ो पार लगाज्यो जी। ।।६६।। †

उपर्युक्त पद किसी अन्य पद का अश मात्र प्रतीत होता है।

---

१ पहुचे, २ विश्वास करे ३ पढ़ कर।

३९

मदरो[1] सो बोल मोरा, मोरा स्याम बिन जिव दोरा।
दादुर मोर पपइया बोले, कोयल कर रही शोरा।
झरमर झरमर मेहा बरसे, गाजत हे घन घोरा।
मीराँ के प्रभु राधा बोले, स्याम मिल्या जिव सोरा[2] ॥६७॥

४०

ऊधो, भली निभाई रे, त्यागे गोपी गोकुल म्हाने क्यूँ तरसाहि रे।
चन्दन घिस लाई, वा से प्रीत लगाई, वा नै लाज न आई।
खो देस्यो जी, उधो जी, आखिर चेरी की जाई रे।
बोहोत दिन बीत्या, म्हारी सुध न लई, नैणा से नीद गई।
चांदणी सी रात, म्हारे बैरण भई रे।
रास तो कियो म्हासे, प्रीतडली जोडी अब तुम काहे कूँ तोड़ी।
तोख[3] की मारी, म्हासै हुई छै नेडी[4] रे।
मीराँ जी तो बिना कल ना पडै, पल बिन नाही सरै।
छतियाँ तपै नैणा नीर झरै रै।　　　॥६८॥ †

पद की पाचवी और सातवी पंक्तियो का शेष पद से पूर्वापर संबंध नही बैठता। पद की आठवी पक्ति निरर्थक है।

४१

अहो कांई जाणे गुवालियो, बेदरदी पीर तो पराई।
थे जनमत ही कुल त्यागन कीनों, बन बन धेनु चराई।
चोर चोर दधि माखन खायो, अबला नार त ताई।

१ मधुर, २ आराम युक्त, ३ इर्षा, ४ निकट,

ज्या श्री चँरणा सो म्हारो दु ख जासी, चरणखोल[1] जल पायजोजी।
दरद दिवानी मीराँ वैद सांवलियो, सूती ने आण जगायजोजी।
मीराँ तो दासी थारी जनम की, चरण कमल चित लायजोजी। ॥७१॥

४४

थारे रग रीझी रसिक गोपाल।
निस वासर मै रटूँ निरतर, दरसण द्यो नन्दलाल।
सो पतिव्रत टरै जिंन टारो, मति बिसरो नन्दलाल।
कोऊ कहै नन्दो कोऊ कहै बन्दो, चला भावती चाल।
सो पथ भलि केरो जिन साधो, म्हारो मणि उरमाल।
प्रेम भरी मीराँ जिन गरबै, हरि है गिरधर लाल। ॥७२॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। प्रथम पक्ति मे 'रग' के बदले 'गुण' और अन्तिम पक्ति मे 'गरबै' के बदले 'गरजै' का प्रयोग भी मिलता है। अन्तिम मक्ति पद की प्रामाणिकता का विरोध इगित करती है।

४५

गिरधर रुसणूँ जी कोन गुनाह।
कछु इक औगुण काढो म्हा मै, म्हे भी कानां सुणा।
मै दासी थारी जनम जनम की, थे साहिब सुगणा[2]।
काँई बात सूँ करवो रुसणूँ, क्यो दु.ख पावो छो मना।
किरपा करि मोहि दरसण दीज्यो, बीते दिवस घणा[3]।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, थारो ही नांव गणा[4] ॥७३॥†

पद के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध मे पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है।

---

१ चरण धोकर, २ गुणयुक्त, ३ बहुत, ४ गिनना, निरन्तर जपना।

४६

सहेल्या उद्धौ जी आया है।
आया पठाया स्याम का, मेरे मन नहीं भाया है।
एक निमिष के कारणै, षटमास लगाया है।
पहली प्रीत करी हमसूँ, पीछे पछताया है।
जमुना जल मे नहावता, सषी चीर चुराया है।
कुबज्या दासी कस की, जिन स्याम चुराया है।
मुरली तो मोहन लई, जिणि स्याम रिझाया है।
देषो सखी सहलियो, नैणां कर ल्याया है।
सुष दुष अपने करम का, गोविन्द वर पाया है।
दोस कुणी को दीजिये, मीराँ गुण गाया है। ।।७४।। †

उपर्युक्त पद की क्रियाये सभी आधुनिक हिन्दी मे है। अत पद का प्रक्षिप्त होना ही युक्ति सगत है।

४७

निजर भर न्हालो नाथ जी, हू तो थारे चरणा री दासी।
मै अबला तुम सबला स्वामी, नही मिलणा कौ टालो रे।
फूँक फूँक पग धरु धरणी पर, मति लगाज्यौ कोई कालौ रे।
आप तो जाइ द्वारिका छाये, हम सूँ दे गया टालौ रे।
बालपने को बालसनेही, प्रीति बचन प्रतिपालौ रे।
च्यारि महिना आयो सियालो[1], च्यारि महिना उन्हियालो[2] रे।
कृपा करि मोहि दरसण दीज्यौ, अब ऋतु आयो बरसालौ रे।
सब जग म्हारी निन्दा करत है, कीन्ही मूढो[3] कालौ रे।
सरण तुम्हारी लई सावरा, तुम भी दियो छै म्हासूँ टालौ रे।
म्हारो घर मे भयो अधेरो, आण करो उजियालौ रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, विरह अगनि मत जालौ रे। ।।७५।।†

पदाभिव्यक्ति मे अर्थ संगति और पूर्वापर संबंध का सर्वथा अभाव है।

---

१ जाडे की ऋतु, २ गर्मी की ऋतु, ३ मुख।

४८

राम मिलणरो घणो[१] उमावो,[२] नित उठ जोवूं बाटडिया[३]।
दरस बिना मोहि कछु न सुहावै, जक न पडत है आखड़िया।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पडी बिरह की पाशडिया[४]।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुम्हारी दासडिया।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसै, नाभि बैठे सासडिया।
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखे पासडिया।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरो मन की आसडिया। ॥७६॥

४९

बसीवारो आयो म्हारो देस, थांरी सावरी सूरत वाली बैस[५]।
आऊ आऊ कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घिस गई अगली, घिस गई अंगली की रेख।
मैं वैरागण आदि की, थारे म्हारे कदकी[६] सनेस[७]।
बिन पानी बिन उबहनो, हर गई धुर सपेद[८]।
जोगण होई मैं वन वन हेरु, तेरा न पाया भेस।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूंघरवाला केस।
मीराँ प्रभु गिरधर मिल गये, दूणा बढा सनेस। ॥७७॥†

उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से विरोधाभास ही लक्षित होता है। प्रथम और अन्तिम-पंक्तियों से आराध्य की समीपता और शेष पदाभिव्यक्ति से विरह ही लक्षित होता है।

पद की चतुर्थ पक्ति मे "वैरागण . . . सनेस" सर्वथा विभिन्न पडती है। प्रथम पक्ति के उत्तरार्द्ध में अर्थ सगति का अभाव है। पद की चतुर्थ और छठी पक्ति की अभिव्यक्ति नाथ पथ से प्रभावित है। नाथ पथ और वैष्णव मत का प्रभाव एक साथ एक ही पद मे विचारणीय है।

---

१ बहुत, २ उमग, ३ राह देखना, ४ फंदा, ५ वयस, ६ कब की, ७ मित्रता, स्नेह, परिचय, ८ सफेद।

५०

म्हारी सुध ज्यो जाणो ज्यो लीजो जी।
पल पल भीतर पंथ निहारूं, दरसण म्हाने दीजो जी।
मै तो हू बहु औगण हारी, औगण[१] चित मत दीजो जी।
मै तो दासी थारे चरण कवल की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।
मीराँ तो सतगुरु जी सरणे, हरि चरणा चित दीजो जी। ।।७८।। †

तृतीय पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है।

"मै तो दासी थारे चरणा जना की, मिल बिछुरन मत कीज्यो जी।"

इस पद के विभिन्न बोलियो से प्रभावित कई पाठ मिलते है। उपर्युक्त पाठ की भाषा राजस्थानी है।

पाठान्तर १,

सजन, सुध ज्यूँ जानै त्यूँ लीजै हो।
तुम बिन मोरे और न कोई, किरपा रावरी कीजै हो।
दिन नही भूख रैण नही निद्रा, यूँ तन पल पल छीजै हो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुडन मत कीजै हो।†

'हो' और 'रावरी' जैसे शब्दो के प्रयोग से इस पाठ पर अवधी का प्रभाव प्रतीत होता है। प्रथम पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है।

"ज्यों जानो त्यो लिये सजन, सुधि ज्यों जानो त्यो लीजै।"

पाठान्तर २,

साजन सुधि ज्यो जाणो, त्यो लीज्यौ जी।
म्हे तो दासी जनम जनम की, किरपा रावरी कीज्यौ जी।
उठत बैठत जागत सोवत कबहुक, याद करीज्यौ जी।

---

१ अवगुण।

तुम पतिबरता नारी बिना प्रभु, काहो सो न पतीज्यो जी।
साचो प्रेम प्रीत मो नातो, ताही सो तुम रीझ्यौ जी।
राति दिवस ओहि ध्यान तिहारो, आपही दरसन दीज्यौ जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिलि बिछुरन मत कीज्यौ जी।

इस पाठ की भाषा पर ब्रज भाषा का प्रभाव अति स्पष्ट है। प्रथम दो और अन्तिम पक्तियो के सिवा शेष पद अन्य पाठो से सर्वथा भिन्न पडता है। बीच की चार पक्तियो मे अर्थ और पूर्वापर सबध का अभाव है। इस पाठ विशेष से मिलता जुलता एक और निम्नाकित पाठ भी प्राप्त है।

पाठान्तर ३,

ज्यूँ जाणो ज्यूँ लीज्यो सजन, सुध ज्यूँ जाणे ज्यूँ लीज्यो।
हूँ तो दासी जनम जनम की, कृपा रावरी कीज्यो।
उठत बैठत जागत सोवत, कबहुँक याद करीज्यो।
आवत जावत जीमत सोवत, सुपणे दरस मोये दीज्यो।
मै पतिबरता नारी प्रभु जी, काँहूँ ते न पतीजौ।
साँचो प्रेम प्रीत को नातो, ताही ते तुम हरि रीझौ।
रात दिवस मोहि ध्यान तिहारो, आय दरस मोये दीज्यौ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चित चरणाँ मे लीज्यो।†

पाठान्तर ४,

थे म्हारी सुध ज्यूँ जाणूँ ज्यूँ लीज्यौ।
आप बिना मोहे कछु न सुहावै, बेगो ही दरसण दीज्यो।
मै मद भागण करम अभागण, ओगण चित मत दीज्यौ।
विरह लगी पल छिन न लगन है, तो तन यूँही छीज्यौ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, देख्याँ प्राणपती ज्यौ।

इस पाठ की अन्तिम पक्ति भी सर्वथा भिन्न पड़ती है।

प्रथम पाठ से संतमत का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है, परन्तु अन्य पाठो से विरह वेदना ही विशेष तौर से लक्षित होती है।

५१

पिया जी म्हारे नैणा आगे रहज्यो जी।
नैणा आगे रहज्यो जी, म्हाने भूल मत जाज्यो जी।
भौ सागर मे बही जात हूँ; बेग म्हांरी सुध लीज्यो जी।
राणो जी भेज्या विष का प्याला, सो इमरित कर दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल बिछुडन मत कीज्यो जी।
॥७९॥ †

उपर्युक्त दोनो पदो मे प्राप्त साम्य के आधार पर यह पद भी पद स० ५० का ही गेय रुपान्तर प्रतीत होता है। अन्तिम पक्ति तो हूबहू वही है। अन्य पक्तिया भी विभिन्न पदों मे मिल जा सकती है। गेय परम्परा से प्राप्त पदो मे ऐसे सम्मिश्रण का होना असम्भव नही।[1]

५२

कहो ने जोशी[2] प्यारा, राम मिलण कद होसी।
जो जोशी मोहे प्रभु मिले, तो हीरा जडावूँ थारी पोथी।
जो जोशी मोहे प्रभु ना मिले, तो झूठी पडे तेरी पोथी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, राम मिले सुख होसी। ॥८०॥

५३

इतनूँ काई छै मिजाज म्हारे मदिर आवता।
थाने इतनूँ काई छै मिजाज।
तन मन धन सब अरपण कीनूँ, छाडी छै कुल की लाज।
दो कुल त्याग भई वैरागण, आप मिलन की लाग।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, कुबज्या आई काई या है। ॥८१॥†

अन्तिम पक्ति का उत्तरार्द्ध अर्थ हीन है। प्रथम दो पक्तियो की अभिव्यक्ति मे समर्पण की वह गहराई नही, जो मीराँ के पदो की विशेषता है।

---

१ देखे 'मीराँ, एक अध्ययन,' २ कुल पुरोहित।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

थे तो पलक उघाडो दीनानाथ, मे हाजिर नाजिर कद की खडी।
सो्झनियाँ दुसमण होय बैठ्या, सब ने लगूँ कड़ी।
तुम बिन साजन कोई नही है, डिगी नाव मेरी सपद अडी।
वाण विरह का लाग्या हिये मे, भूलूँ न एक घडी।
पत्थर की तो अहल्या तारी, बन के बीच पडी।
कहा बोझ मीराँ के कहिए, सौ पर एक घडी। ॥८२॥

कही कही इसी पद के साथ निम्नाकित दो पक्तियाँ और भी पायी जाती है।

'गुरु रैदास मिले मोंहि पूरे, धुर से कलम भिडी।
सतगुरु सैन दई जब आकै, जोत से जोत रली।

पदाभिव्यक्ति स्पष्ट नही है। पूर्वापर सबध और अर्थ सगति का भी अभाव है। साथ ही प्रथम पक्ति और शेष पद की अभिव्यक्तियो मे गहरा विरोध भी है। सतमत का प्रभाव विशेष रूपेण लक्षित हो उठता है।

२

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर मे जागी री।
तलफत तलफत कल न परत है, बिरह आणि उर लागी री।
निस दिन पथ निहारूँ पीव को, पलक न पल भरी लागी री।
पिव पिव मे रटूँ रातदिन, दूजी सुध बुध भागी री।
बिरह भवग[1] मेरो उस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटि गुँसाई, आई मिलौं मोंहि सागी[2] री।
मीराँ व्याकुल उकलाणी[3], पिया की उमंग अति लागी री।
॥८३॥

---

१ भुवग-साँप, २ स्वयम्, ३ व्याकुल।

३

पिया मोंहि दरसण दीजै हो।
बेर बेर मै टेर हूँ, अहे किरपा कीजै हो।
जेठ महीने जल बिना, पछी दुख दई हो।
मोर असाढो कुरल हे, घन चात्रग सोई हो।
सावण मे झड लागीयो, सखी तीजा खेले हो।
भादरवे नहिया बहै, दूरि जिन मेलो हो।
देव काती मे पूज है, मेरे तुम होई हो।
मगसर ठड बहोती पडै, मोहि बेगि सम्हालो हो।
पोस माही पाला घणा, अब ही तुम न्हालो हो।
माह मही बसत पचमी, फागाँ सब गावे हो।
चेत चित मे ऊपजी, दरसण तुम दीजै हो।
वैसाख वणराइ फूलवे, कोइल कुरलीजै हो।
काग उडावता दिन गयाँ, बुझूँ पिडत जोशी हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, दरसण कद होशी हो। ॥८४॥†

मीराँ के नाम पर प्रचलित पदो मे 'बारह मासे' की शैली पर यही एक पद है। इस पद की विशेष आलोचना देखे, 'मीराँ, एक अध्ययन' मे।

४

नीदडली नही आवै सारी रात, किस बिध[1] होई परभात।
चमक उठी सुपने सुध भूली, चन्द्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिय जाय हमारो, कबरे मिले दीनानाथ।
भई हूँ दिवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हारी बात।
मीराँ कहै बीती सोइ जानै, मरण जीवन उन हाथ। ॥८५॥

---

१ किस तरह।

५

सइयाँ, तुम बिन नीद न आवै हो ।
पलक पलक मोहि जुग सो बीते, छिनि छिनि विरह जगावे हो ।
प्रीतम बिनि तिम जाइ न सजनी, दीपग भवन न भावै हो ।
फूलैर सेझा सूल होइ लागी, जागनि रैणि बिहावे हो ।
काँसे कहूँ कूण माने मेरी, कह्याँ न को पतियावै हो ।
प्रीतम पनग डस्यो कर मेरो, लहरि लहरि जिव जावै हो ।
दादुर मोर पपइया बोले, कोइल सबद सुणावे हो ।
उमगि घटा घन ऊलरि आई, बिजू चमक डरावे हो ।
है कोई जग में राम सनेही, जै उरि साल[१] मिटावे हो ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, नैणा देख्यां भावे हो । ॥८६॥

पद की नवी पक्ति मे प्रयुक्त 'राम सनेही' प्रयोग विशेष विचारणीय है। और भी दो एक पदो मे ऐसा प्रयोग मिलता है। पद की तीसरी पक्ति 'तिम' शब्द का प्रयोग अर्थहीन सिद्ध होना है। "फूलनसेझ . . . भावै हो" पक्तियाँ स्वतत्र पद के रूप मे भी प्रचलित हैं।

६

थे म्हारे घर आवो जी प्रीतम प्यारा।
चुन चुन कलियाँ मे सेज बनाऊँ, भोजन करूँ[१] मे सारा।
तुम सगुणा मैं अवगुणधारी, तुम छो बगमणहारा[२]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर, तुम बिनि नैण दुखियारा। ॥८७॥

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है।

पाठान्तर १,

घर आवो जी प्रीतम प्यारा।
तन मन धन सब भेंट करूंगीं, भजन करूंगी तुम्हारा।

---

१ तय्यार करूँ, २ पुरस्कार देने वाले, क्षमा करने वाले।

तुम गुणवत साहिब कहिये, मो मे ओगण सारा।
मै निगुणी गुण जाण्यो नाही, तुम छो बगसणहारा।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे तुम, बिन नैण दुखियारा।†

इस पाठ पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

पाठान्तर २,

म्हारे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खार।
तन मन धन सब भेट करूँ, औ भजन करूँ मै थारा।
तुम गुणवन्त बडे सुखसागर, मै हूँ जी औगुणहारा।
मै निगुणी गुण एकौ नही, तुझ मै जी गुणसारा।
मीराँ कहै प्रभु कबहि मिलोगे, बिन दरसण दुखियारा।†

पहले पाठान्तर से इस पाठ का गहरा साम्य है।

पाठान्तर ३,

म्हाँरे डेरे[1] आज्यो जी महराज।
चुणि चुणि कलियाँ सेज बिछाई, नख सिख पहर्यो साज।
जनम जनम की दासी तेरी, तुम मेरे सिरताज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण दीज्यो आज।†

इस पाठ की अन्तिम पक्ति मे और शेष सभी पाठो की अन्तिम पक्ति मे स्पष्ट अन्तर है। इस अन्तर के बावजूद भी भावाभिव्यक्ति वही है। यह पाठ प्रथम पाठ से ही अधिक साम्य रखता है

७

आई मिलो हमकूँ प्रीतम प्यारे, हमकूँ छाँडि भये कयूँ न्यारे।
बहुत दिनन की बाट निहारू, तेरे ऊपरि तन मन वारूँ

---

१ निवास स्थान।

तुम दरसण की भी मन माहि, आई मिलो करि कृपा गुँसाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आई दरस द्यो सुख के सागर।
॥८८॥

८

कभी म्हारे गली आव रे, जिया की तपन बुझाव रे, म्हारे मोहन प्यारे।
तेरे सांवले बदन पर, कोई कोट काम वारे।
तेरी खूबी के दरस पै, नैन तरसते हमारे।
घायल फिरूं तडपती, पीड जानै नही कोई।
जिस लागी पीड़ प्रेम की, जिन लाई जानं सोई।
जैसे जल के सोखे मीन क्या जीवे बिचारे।
कृपा कीजै, दरस दीजै, मीराँ नन्द के दुलारे॥ ८९ ॥

उपर्युक्त पद की भाषा विचारणीय है। राजस्थानी, व्रज, उर्दू और खडी बोली चारो का ही इसमें सम्मिश्रण हुआ है, जैसा कि शायद ही किसी अन्य पद में हुआ हो। साथ ही, 'मीराँ नन्द के दुलारे' जैसा प्रयोग भी इस पद की विशेषता है।

'वृहद्राग रत्नाकर' मे एक ऐसा ही पद 'मीर माधो' के नाम पर भी मिलता है।

'कभी गली हमारी आव रे, मोरे जिया की तपन बुझाव रे,
नन्दजू के मोहन प्यारे लाला।
तेरे सांवरे बदन पै कई कोटि काम वारै,
तेरियां जुलफा दिलदिया कुलफा जी, दोऊ नैन है सतारे।
तेरे खूबी के दरस पै लाल, नयन तरसते हमारे।
पिया पिया करै पपीहरा रे, निशि दिन सो याद तेरी।
मेरे सांवले सलोने मोहन, आसा दर्शन केरी।
घायल फिरूँ दरसण की, पीर जानै नही कोई।
मोंहि लागी चोट प्रेम की, जिन लाई जानै सोई।

जैसे जल के सोखे हुए मीन क्या जीवे बिचारे।
कृपा कीजो दरसण दीजो, मीर माधो नन्द दुलारे।
(पद ४६९, पृष्ठ १२०)

मीराँ के पद सभी गेय परम्परा से प्राप्त है। अत परिस्थिति दखते उपर्युक्त पद को 'मीर माधो' के पद का ही गेय रुपान्तर मानना अयुक्तियुक्त न होगा।

९

घर आवो जी साजन मिठबोला[१] ।
तेरे खातर सब कुछ छोडा, काजर तेल तमोला।
जो नहि आवै रैण बिहावै, छिन मासा छिन तोला।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कर धर रही कपोला ॥९०॥

इस पद से गहरा साम्य रखता हुआ एक पद स० ३३ राजस्थानी मे भी पाया जाता है।

१०

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्या सामा।
तुम मिलिया मै बहुत सुख पाऊ, सरै[२] मनोरथ कामा।
तुम बिच हम बिच अतर नाही, जैसे सूरज घामा।
मीराँ मन के और न मानै, चाहे सुन्दर स्यामा ॥ ९१ ॥

११

उड जा रे कागा बनका, मेरा स्याम गया बोहो दिन कारी।
तेरे उडास्यूं राम मिलेगा, धोखा भागै मन का रे।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हरि है गाढ़े दिलका रे।

---

१ मधुर भाषी २ पूर्ण हो।

आप तो जाय विदेसा छाये, हम वासी मधुवन का रे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कँवल हरिजन का रे ॥९२॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

१२

गोविन्द, कबहूँ मिलै पिया मोरा।
चरण कँवल कूँ हँसि हँसि देखूँ, राखूँ नैणां नेरा[1]।
निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत न धीरज, मिलि तू नित सबेरा[2]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ताप तपन बहुतेरा॥ ९३ ॥

पदाभिव्यक्ति से 'गोविन्द' और 'पिया' की दो विभिन्न हस्तियाँ स्पष्ट हो उठती है। यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण और विचारणीय प्रश्न है।

१३

भीजै म्हाँरो दावण चीर, सावणियो लूम रहियो के।
आप तो जाय विदेसाँछाये, जिवणो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सदेशा भेजूँ, कब घर आवै म्हाँरो पीव।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, दरसन द्यो नै बलवीर ॥९४॥

१४

म्हाँरे घर आओ, स्याम, गोठडी[3] कराइये।
आनन्द उछाव करुँ, तन मन भेट धरुँ।
मै तो हूँ तुम्हारी दासी, ताँकूँ तो चितारियो।
गिगन[4] गरुजि आयो, बदरा बरसे भायो।
सारंग सबद सुनि ब्रिहन पुकारिये।

---

१ पास, नजदीक, २ शीघ्र, ३ गोष्ठी, ४ गगन, आकाश।

घर आवो स्याम मोरे, मैं तो लागूँ पाय तोरे।
मीराँ को सरण लीजिये, बलि बलि हारिये। ॥९५॥

१५

साँइया, सुण जो अरजै हमारो।
मया[1] करो महल्या पग धारो, मैं खानाजाद तुम्हारी।
तुम बिन प्राण दुखी दुख मोचन, सुधि बुधि सबै बिसारी।
तलफ तलफ उठि उठि मग जोऊ, भई व्याकुलता भारी।
सेज सिंघ ज्यूँ लागी प्राण कूँ, निस भुजग भई भारी।
दीपग मनहूँ दुहूँ दिसि लागी, बिरहिन जरत बिचारी।
जब के गये अजहूँ नही आये, विलम्बे कहा मुरारी।
मीराँ के प्रभु दरसन दीजो, तुम साहेब हम नारी॥९६॥

१६

हरि म्हारी सुणजो अरज म्हाराज।
मै अबला बल नाहि गुसाई, राखो अबके लाज।
रावरी होइ के कणी रे जाऊ, है हरि हिवडारो साज।
हम को वपु हरि देत सधार्यो, साद्यो देवन के काज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, तुम मेरे सिरताज। ॥९७॥

पद की तृतीय पक्ति अर्थहीन है। इस पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबध भी नही बैठता।

१७

कैसी रितु आई मेरी हियो लरजे, है मा।
निस अधियारी कारी, बिजरी चमकै, सेज चढता[2] जिया डरपै,
हे मा।

---

१ दया, २ चढते हुये।

नीन्ही बूँदन मेहा बरसै, ऊपर से सुरपति गरजै, हे मा।
सूनी सेज स्याम बिन लागत,कूक उठी पिया पिया करि के,हे मा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मोय[1] विधाता क्यूं सरजी[2], हे मा।
॥९८॥

१८

एसी ऐसी चादनी मे पिया घर नाई।
चार पहर दिन सोचत बीत्या, तडपत रैन बिहाई।
मै सूती पिया अपने महल मे, खालूडा[3] मे आई सरदाई[4]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरख निरख गुण गाई ॥९९॥†

पद मे पूर्वापर सबंध का सर्वथा अभाव है। पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थहीन है। अभिव्यक्ति मे भी कोई गम्भीरता नही। ऐस पदो को प्रक्षिप्त मान लेना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

१९

मोसी दुखियाँ कूँ, लोग सुखिया कहत हैं।
ऐसो री अड़ीलो कथ, दियो है विधाता मोकूँ।
सेजहूँ न आवै प्यारो, न्यारौ ही रहत हैं।
तारा तो अगारा भया, सेज भई भाषा सी।
पिया को पिलगूँ मानो, आगि जूँ रहत है।
जारे बारे षाष मै तो, भीतर बेहाल भई।
बिरह की करवत, मेरे हिया में बहत है।
द्यौस[5] तो यूँ ही गयौ, रैनिहू बिहानी है।
मीराँ तो बेहाल भई, दरस कूँ चहात है। ॥१००॥†

---

१ मुझको, २ सृजन किया, बनाया, ३ कमरा, ४ ठड, ५ दिन,

ऐसे पदो को प्रक्षिप्त ही मान लेना युक्ति सगत प्रतीत होता है, क्योकि इसकी अभिव्यक्ति मे वह भाव भाषा का गाम्भीर्य नही, जो मीराँके पदो की विशेषता है। इसमे क्रिया-पद विशेष विचारणीय है।

२०

रसभरिया म्हाराज मोकूँ, आप सुनाई बाँसुरी।
सुनत बाँसुरी भइ बावरी, निकसन लग्या साँस री।
रकतर रती भर ना रह्योरी, नही मासा भर माँस री।
तन तिनकासो है गयो री, रही निगोरी साँस री।
मै जमुना जल भरन जात ही, सास नन्द की भास री।
मीराँ कूँ प्रभु गिरिधर मिल गयो,पूजो मनकी आस री।।१०१।।†

अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता सर्वथा सदिग्ध है।

२१

प्यारी हट माँड्यो[1] माँझल[2] रात।
कब की ठाढी अरज करत हूँ, होई जासी परभात।
तलफत तलफत बोहो दिन बीते, कबहूँ न बूझी बात।
जब के गए म्हारी सुध नाहि लीनी, तुम बिन फीको म्हारो गात।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कर मीड़त पछितात।।१०२।।†

उपर्युक्त पद के विषय मे श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी लिखते है, "पूर्वापर असबद्ध सा ज्ञात होता है। यदि "प्यारी" के स्थान पर "प्यारा" होता तो असबद्ध नही था।"

मेरे विचार मे पद की पूर्वापर असबद्धता हर हालत मे बनी रहती है, क्योकि प्रथम दो पक्तियो से मिलन और शेष पद से वियोग ही लक्षित होता है। ऐसे पदो को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान न मिलना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

---

१ किया, २ बीच।

२२

लाग रही ओसेर[1] कान्हा, तेरी लाग रही ओसेर।
दरसण दीजे, कृपा कीजे, कहाँ लगाई बेर ।
दिन मे नही चैन, रैन नही निद्रा, बिरह बिथा लई घेर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सुण जो म्हारी टेर। ॥१०३॥

२३

माधो बिन बसती उजार मेरे भावे[2]।
एक समै मोतियन के धोके, हसा चुगत जुवार ।
सरवर छॉड़ तलैया बैठे, पख लपट रही गार।
सरवर सूक तरवर कुम्हलाये, हसा चले उड़ार ।
मीराँ के प्रभु मिलोगे, लाम्बी भुजा पसार ॥१०४॥†
पदाभिव्यक्ति अर्थहीन और असगत है।

२४

दासी म्हारा मारुड़ा मारु[3] जी से कहना ।
मोय नीद न आवै नैना।
जे मेरा गोविन्द दूर बसत है, मोय सदेशो देना।
जे मेरा गोविन्द गली देखे, सनक[4] सनक सुन लेना।
जे मेरा गोविन्द बैन[5] बजावे, प्रेम मगन होय कहना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चित देना ॥१०५॥†

श्री सूर्यनारायण चतुर्वेदी जी इस पद के विषय मे लिखते है, "मारुडा" के स्थान मे स्यात् "भुजरा" होगा। लिपि दोष से अथवा अन्य किसी दोष से अपभ्रंश हुआ ज्ञात होता है।"

---

१ हुसेर, याद, २ लगती है, ३ पति, ४ धैर्य सहित, ५ वेणु।

श्री चतुर्वेदी जी का कहना बहुत यथार्थ प्रतीत होता है, क्योकि "मारु" और "मारुडा" दोनो एक ही शब्द है। "मारुड़ा" कोई स्वतत्र शब्द न होकर "मारु" का ही रूपान्तर मात्र है। अपने बुजुर्गो या अन्य किसी भी विशेष सम्मानित व्यक्ति के प्रति 'मुजरौ" विनम्रता पूर्वक नमस्कार के अर्थ मे आज भी प्रयुक्त होता है।

२५

तुम ह्यॉ ही रहो राम रसियॉ, थांरी सॉवरी सूरत मे मन बसिया।
क्याने तो राम जी घोडा सिणगारो, क्या ने पाषर कसिया।
चुण चुण कलियॉ सेज सॅवारु, ओर गादी तकिया।
बोहोत दिना की पंथ निहारूँ, तुम आया रग रञ्चिया।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, चरण कमल मन बसिया। ॥१०६॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है।

२६

नेहा समद बिच नाव लगी है, बाल न लगत बही जात अकेली।
लाज को लगर छूटि गयो है, बही जात बिन दाम की चेरी।
मलहन कर से छाड दई है, आस बडी गोपाल ज्यो तेरी।
अब के नाम लगावो नातर, लोग हॅसेगे बजा के हतेरी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, मेरी सुध लीज्यो प्रभु आन सबेरी ॥१०७॥†

पदाभिव्यक्ति असगत है। प्रथम पक्ति मे 'बाल' के स्थान पर सम्भवत. 'पाल' शब्द हो।

२७

माई म्हाने मोहन मित्र मिलाय, मोहन मित्र मिलाय।
रसियो है उर अतर बसियो, या बिनु कछु न सुहाय।
पातलियो[1] सॉवरियो लोभी, राखूँ कठ लगाय।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, तन की तपत बुझाये। ॥१०८॥

१ सुगठित शरीरवाला।

२८

मं खडी निहारू बाट, चितवन चोट कलेजे बह गई, सुन्दर स्याम सूँ घाट।
मथुरा मे कुबज्या कर राखी, महाजन की सी हाट।
केसर चदन लेपन कीन्हो, मोहनी तिलक ललाट।
हमारा पिलँग जडाऊ छोड्या, बणिया[1] रेशमी पीली पाट।
क्याँ पर राजी भयो साँवरो, चेरी के नही खाट।
अजहूँ न आयो कँवर नन्द को, क्याँरी लागी चाट।
छाड गयो मरुधार साँवरो, बिन अकल को जाट[2]।
आप बिना गोपी सब ब्रज की, व्याकुल भई निराट।
मीराँ के प्रभु गोपी दरसन दीज्यो, करज्यो आनन्द ठाट।।।१०९।।†

२९

उधो, म्हाँरे मन की मन मे रही।
एक समै मोहन घर आये, मं दधि मथत रही।
या दुनियाँ को झूठो धधो, मै हरि को बिसर गई।
वा कपटी की का कहूँ, उधो बचन प्रतीत नही।
नेन हमारे ऐसे झूरै, उलटी गंग बही।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच मे जमुना बही।
आप मोहन जी पार उतर गया, हम सै कछु ना कही।
ब्रज बनिता को संग छाडि कै, कुबज्याँ सग लई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर अविनासी, चरणा लिपट रही।।।११०।।

अभिव्यक्ति असगत और अर्थहीन है।

३०

तुम आवो हो कृपा निधान बेग ही।
मेरे मदिर आये प्रभु निकसे, कदी[3] महलहूँ न आये मै दीदार देख री।

---

१ बना हुआ, २ राजस्थान की स्थानीय जाति विशेष, जो परिश्रम और सत्यता के लिये प्रसिद्ध होते हुए भी सर्वथा बुद्धिहीन मानी जाती है। ३ कभी।

मेरे मदिर आये प्रभु निकसि क्यूँ गये, दीन के दयाली कठोर क्यूँ भये।
दीपक मेरे हाथ लियाँ बाट जोवती, राम हूँ न आये सारी रैण रोवती।
पिया के दरस बिन फिरु डोलती, मीराँ तो तुम्हारी दासी राम बोलती।
॥१११॥†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा असगत है। कही कही द्वितीय पंक्ति मे 'कदी' शब्द के बदले 'देख ही' और अन्तिम पक्ति मे "डोलती' शब्द के बदले 'झूरती' का प्रयोग भी मिलता है।

३१

होली पिया बिन मोहि न भावै, घर आँगण न सुहावै।
दीपक जोय[1] कहा करु सजनी, पिय परदेस रहावै।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुसक सुसक जिय जावै।
नीद नही आवै।
कब की ठाढी मै मग जोऊँ, निस दिन बिरह सतावै।
कहा कहू कुछ कहत न आवै, हिवडा अति अकुलावै।
पिया कब दरस दिखावै।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरन्त सन्देशो ल्यावै।
वा बिरियाँ[2] कद[3] होसी, मोकूँ हस करि निकट बुलावै।
मीराँ मिल होली गावै। ॥११२॥

प्रथम पति मे प्रयुक्त 'पिया' शब्द के बदले "हरी' शब्द का भी प्रयोग मिलता है।

३२

किण संग खेलूँ होली, पिया तजि गए हे अकेली।
माणिक मोती हम सब छोडे, गले मे पहनी सेली।

---

१ जलाकर, २ समय, ३ कब,

मुझे दूर क्यूँ मेली[१]।
अब तुम प्रीत और सूँ जोडी, हम से क्यूँ करी पहेली।
बहु दिन बीते अजहूँ न आए, लग रही तालामेली[२]।
किण बिलाय[३] हेली।
स्याम बिन जिवडो मुरझावै, जैसे जल बिन बेली।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीजो, जनम जनम की चेली।
दरस बिन खडी दुहेली[४]। ॥११३॥

पदाभिव्यक्ति से नाथ पथ का प्रभाव स्पष्ट होता है। "सेली' नाथ पथी जोगियो के ही मुख्य चिन्हो मे से एक है। अन्तिम पक्ति से व्यक्त होती परित्यक्ता (दुहेली) की भावना अन्य राजस्थानी के पदो मे भी मिलती है। यह विचारणीय है।

३३

इक अरज सुनो मोरी, मै किन सग खेलूँ होरी।
तुम तो जाँय विदेसा छाये, हम से रहै चित चोरी।
तन आभूषण छोड़्यो सब ही, तज दियो पाट पटोरी[५]।
मिलन की लग रही डोरी।
आप मिल्या बिन कल न परत है, त्याग दियो तिलक तमोली।
मीराँ के प्रभु मिलज्यो माधव, सुणज्यो अरज मोरी।
दरस बिन बिरहणी दोरी[६]। ॥११४॥

उपर्युक्त दोनो पद में भाव-साम्य स्पष्ट है, यद्यपि पूर्व पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव कुछ विशेष है।

३४

होली पिया बिन, मोहि लागे खारी, सुनो री सखी मोरी प्यारी।
सूनो गाँव देस सब सूनी, सूनी सेज अटारी।

१ करदी, २ बेचैनी, ३ भुलाए, ४ परित्यक्ता, ५ साज श्रृगार, ६ दुखी।

सूनी बिरहन पिव बिन डोलै, तज दई पिव प्यारी।
भई हूँ या दुख कारी।
देस विदेस सदेस न पहुँचे, होइ अदेशा भारी।
गिणता घिस गई, रेख आँगलियाँ की सारी।
अजहूँ न आये मुरारी।
बाजत झाँझ मृदग मुरलिया, बाज रही हकतारी।
आयो बसत कत घर नाही, तन मे जर भया भारी।
स्याम मन कहा बिचारी।
अब तो मेहर[1] करो मुझ ऊपर, चित है सुनो हमारी।
मीराँ के प्रभु मिलि गयो माधो, जनम जनम की कुआरी।
लगी दरसण की तारी। ॥११५॥†

इस पद मे विरोधाभास है। होली के बाद ही बसत का साथ ही साथ वर्णन है। पद की बारहवी पक्ति मे मिलन की अभिव्यक्ति है जो कि शेष पदाभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पडती है।

होली वर्णन के उपर्युक्त चारो पद मीराँ के शेष सभी पदो से सर्वथा भिन्न पडते है। इन की शैली भी सर्वथा भिन्न है। इनकी भाषा प्रमुखत ब्रजभाषा होते हुए भी राजस्थानी से प्रभावित है। इनमे प्रयुक्त जो कुछ राजस्थानी शब्द आये है, वह ठेठ राजस्थानी के है। शुद्ध ब्रजभाषा और ठेठ राजस्थानी का यह सम्मिश्रण विचारणीय है।

पद स० ३३ और ३४ मे टेक मे 'माधो' का प्रयोग एक और विचारणीय प्रश्न है। मीराँ के पदो की परम्परा मे यह सर्वथा नूतन है। बहुत सम्भव है कि ये पद किसी अन्य कवि के हो। 'मीर माधो' नामक कवि के पदो से मीराँ के पदो का सम्मिश्रण हुआ भी है। देखे पद स० ८।

---

१ कृपा।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

मै तो चरण लगी गोपाल।
जब लागी तब कोऊ न जाने, अब जानी ससार।
किरपा कीजै, दरसण दीजै, सुध लीजै तत्काल।
मीरॉ कहै प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहार ।।११६।।

पद की द्वितीय पक्ति से व्यक्त होती भावना विशेष विचारणीय है।

२

आलीरी मोरे नैनन बान पडी।
चित चढी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अडी।
कब की ठाढी पथ निहारूँ, अपने भवन खडी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ, जीवन भूल जडी।
मीरॉ गिरिधर हाथ बिकानी, लोग कहै बिगडी ।। ११७ ।।

इस पाठ मे पहली पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है।
"नैणा मोरे बाण पडी, माई, मोहि दरस दिखाई"।

३

माई, मेरे नैनन बान पडी री।
जा दिन नैना श्यामहिं देख्यो, बिसरत नाहि घरी री।
चित बस गई साँवरी सूरत, उर ते नाहिं टरी री।
मीरॉ हरि के हाथ बिकानी, सरबस है निबरी री ।। ११८ ।।

४

नैन परि गई ऐसी बानि।
नेक निहारत पिया जू के मुख तन धुरि गई कुलकानि।
राणाजी विषरो प्यालो भेज्यो, मैं सिर लीनी मानि।
मीराँ के गिरिधर मिले हो, पुरबली[१] पहिचानि ॥११९॥

५

नैणा री हो पड गई बाण।
बार बार निरखूँ मुख सोभा, छूट गई कुलकाण[२]।
कोई भला कहो, कोई बुरा कहो, मैं सिर लीनी ताण[३]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पुरबली पिछाण[४] ॥१२०॥

एक ही भाव के द्योतक उपर्युक्त चारो पद विशेष विचारणीय है। सभी पदो की प्रथम पक्ति मे भाव सर्वथा एक है और भाषा भी लगभग एक ही है। शेष पद मे विभिन्न भावनाओ और घटनाओ का वर्णन है तथापि "लोक लाज" और "कुल कानि" के उल्लघन की अभिव्यक्ति सभी पदो मे प्राप्त है। पहले दो पद (स० ३ और ४) की भाषा शुद्ध राजस्थानी है। इनकी अभिव्यक्ति भावना-द्योतक है। तीसरे पद (स० ५) की अन्तिम पक्तियो पर राजस्थानी का प्रभाव है। इन पक्तियो मे राणा द्वारा विष भेजे जाने की भी अभिव्यक्ति है। इसको देखते बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि विष दिए जाने की कथा का राजस्थान मे ही अधिक प्रचार रहा हो। पद स० ५ की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव कुछ विशेष स्पष्ट है। यह पद पद स० ४ का रूपान्तर-सा प्रतीत होता है। वस्तुत ये चारो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर-से प्रतीत होते है।

६

जब कै तुम बिछुडे प्रभु जी कबहूँ न पायो चैन।
ब्रिह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, कवन आवै अैन।

---

१ पूर्व जन्म की, २ कुल की मर्यादा, ३ चढा लिया, ४ परिचय।

एक टगटगी पिया पथ निहारूँ, भई छै मासी रैन।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दुख मेलण सुख देश ॥१२१॥

अन्तिम पंक्ति मे 'मेलण' शब्द के स्थान पर 'मेटण' शब्द की अर्थ सगति ठीक बैठती है।

७

मै जाण्यो नही प्रभु को मिलन कैसे होय री।
आए मोरे सजना, फिरी गए अंगना, मैं अभागण रही सोय री।
फारुँगी चीर करुँ गलकथा, रहूँगी बैरागण होय री।
चुडिया फोरुँ माग बिखेरु, कजरा मैं डारुँ धोय री।
निसि बासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत पल मोय री।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछुडी मत कोई री।
॥१२२॥

इस पद मे ब्रजभाषा और खडी बोली का अजीब सम्मिश्रण हुआ है। पद की तीसरी और चौथी पक्तियो पर खडी बोली का प्रभाव विशेष स्पष्ट है। यह भी एक विचारणीय पहलू है कि इन दोनो ही पक्तियो की अभिव्यक्ति नाथ परप्परा के प्रभाव की द्योतक है। अन्तिम पक्ति से व्यक्त होती भावना 'मिलि बिछुड़न मत कीज्यो' प्राय इन्ही शब्दो मे अन्य पदो मे भी मिल जाती है।

'बृहद्राग रत्नाकर' में 'लच्छीराम' नामक किसी सत का निम्नांकित एक पद मिलता है। इन दोनो पदो में भाव और भाषा का गहरा साम्य है। बहुत सम्भव है कि निम्नाकित पद ही कुछ घट बढ और हेर फेर के साथ मीराँ के नाम पर चल पड़ा हो।

नीद तोहि बेचूँगी आली, जो कोई गाहक होय।
आए मोहन फिरि गए अंगना, मै बैरन रही सोय।
कहा करुँ कछु वश न मेरो, आयो धन दियो खोय।
लछीराम प्रभु अबके मिले तो, राखूँगी नैन समोय।
—पृष्ठ ७९, पद २९२।

८

ानी हो।
हारते, सब रैण बिहानी हो।
ख दई, मन एक न मानी हो।
बिन देखे कल ना परे, जिय ऐसी ठानी हो।
अग छीन व्याकुल भई, मुख पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीर न जानी हो।
ज्यो चातक घन को रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, सुध सुध बिसरानी हो ॥१२३॥

पदाभिव्यक्ति से पश्चाताप की भावना ही प्रकट होती है। ऐसी अभिव्यक्ति राजस्थानी के कुछ पदो में भी पायी जाती है।

९

पलक न लागै मेरी स्याम बिन।
हरि बिन मथुरा ऐसी लागे, शशि बिन रैन अधेरी।
पात पात वृन्दाबन ढूँढ्यो, कुज कुज ब्रज केरी।
ऊँचे खडे मथुरा नगरी, तले बहै जमुना गहरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणन की चेरी ॥१२४॥

पद की तीसरी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबन्ध नही बैठता ।

१०

नीद नही आवे जी सारी रात।
करवट लेकर सेज टटोलूँ, पिया नही मेरे साथ।
सगरी रैन मोहे तरफत बीती, सोच सोच जिया जात।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आज भयो परभात ॥१२५॥

११

मे विरहणी बैठी जागूँ, जगत सब सोवै री आली।
विरहणी बैठी रग महल मे, मोतियन की लड पोवै।
इक विरहणी हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिन गिन रैण बिहानी, सुख की घडी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल के बिछुड न जावै।
॥१२६॥

१२

दरस बिन दूखण लागै नैण।
अब के तुम बिछुरे प्रभुजी, कबहूँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।
बिरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत अैन।
कल न परत पल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण। ॥१२७॥

पद की तीसरी और पाचवी पक्तियों का निम्नाकित पाठान्तर पाया जाता है।

तीसरी पक्ति—"सबद सुणत मेरी छतिया कम्पे, मीठे लागै तुम बेन"

या

"सबद सुणत मेरी छतिया कम्पै, मीठे लागै बैन"।

और

पाँचवी पक्ति—"एकटकी पथ निहारुँ, भई छमासी रैन।"

१३

जोहने गोपाल फिरुँ, ऐसी आवत मन मे
अवलोकत बारिज बदन, बिबस भई तन में।
मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत बसन धारुँ।
पछी गोप भेष मुकुट, गो धन सग चारुँ।

हम भई गुल काम लता, वृन्दाबन रैना।
पसु पछी मरकर मुनी, श्रवण सुणत बैना।
गुरुजन कठिन कानि, कासो री कहिये।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिलि, ऐसे ही रहिये। ॥१२८॥†

पद की छठी और अन्तिम पक्तियो का अर्थ स्पष्ट नही होता। अन्तिम पक्ति की अभिव्यक्ति से मिलन की ही भावना लक्षित होती है जबकि शेष पद से वियोग भावना ही स्पष्ट हो उठती है।

आराध्य के अनुकूल वैष्णव परम्परा प्रभावित वेश भूषा को स्वीकार कर लेने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है।

१४

हो गए श्याम दूइज के चन्दा।
मधुबन जाई भये मधुबनिया, हम पर डारो प्रेम का फदा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, अब तो नेह परो मदा। ॥१२९॥

इस पद से व्यक्त होती भावना 'अब तो नेह परो मदा' अन्य वियोग द्योतक और नाथ परम्परा प्रभावित पदो मे भी मिलती है। नाथ परम्परा प्रभावित पदो मे यह भावना बहुत ही स्पष्ट है।

१५

कान्हा तेरी रे जोवत रह गई बाट।
जोवत जोवत इक पग ठारी, कालिन्दी के घाट।
कपटी प्रीत करी मनमोहन, या कपटी की बात।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, दे गयो ब्रज चाट। ॥१३०॥

१६

अखिया कृष्ण मिलन की प्यासी।
आप तो जाय द्वारिका छाये, लोक करत मेरी हाँसी।

आम की डार कोयलिया बोलै, बोलत सब्द उदासी।
मेरे तो मन ऐसी आवे, करवत लेहो कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल, चरण कँवल की उदासी ॥१३१॥†

पद की प्रथम पक्ति सूरदास के पद से हू बहू मिलती है। अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त 'उदासी' प्रयोग विचारणीय है।

१७

मन हमारा बाध्यो भाई, कँवल नैन अपने गुन।
तीषण तीर बेध शरीर, दूरि गयो भाई, लाग्यो तब।
जाण्यो नाही, अब न सह्यो जाई री भाई।
तत मत औषद कर तक परि न जाई, है कोऊ।
उपकार करै, कठिन दर्द री भाई।
निकटि हो तुम दूरि नाहि, बेगि मिलो आई, मीराँ।
गिरधर स्वामी दयाल, तनकी तपति बुझाई रे भाई।
कमल नैन अपने गुन बाध्यो भाई ॥१३२॥†

श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी से मिला यह पद "ग्रंथ साहिब, भाई बन्दे की बीड़" से उद्धृत है।

पद की दूसरी, चौथी और छठी पक्तियो का अन्तिम हिस्सा क्रमश. तीसरी पाँचवी और सातवीं के प्रारम्भ मे लगा कर पढ़ने से अर्थ संगति ठीक से बैठ जाती है, अन्यथा नही।

१८

बिरहनी बावरी सी भई।
ऊँची चढ चढ अपने भवन मे टेरत हाय दई।
ले अँचरा मुख अँसुवन पोछत उघरे गात सही।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बिछुरत कछु ना कही ॥१३३॥

'बिछुरत कछु ना कही' जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशषता है।

१९

हरि तुम काय कूँ प्रीति लगाई।
प्रीति लगाई परम दुख दीयो, कैसी लाज न आई।
गोकुल छाँडि मथुरा के जयुँवा मे कोण बडाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम कूँ नन्द दुहाई।।१३४।।

२०

पिया इतनी बिनती सुनो मोरी, कोई कहियो रे जाय।
और न सूँ रस बतियाँ करत हो, हम से रहै चित चोरी।
तुम बिन मेरे और न कोई, मै सरनागत तोरी।
आवन कह गए अजहूँ न आये, दिवस रहै अब थोरी।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, अरज करूँ करजोरी।।१३५।।

'दिवस रहै अब थोरी' जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है। "आवन कह गए अजहूँ न आए" पदाभिव्यक्ति कई अन्य पदो मे भी मिलती है। ऐसे कुछ पदो मे अवधि सूचक 'पेडर पलटिया काला केस" जैसी अभिव्यक्ति भी मिलती है, परन्तु उपर्युक्त भावना किसी भी अन्य पद मे प्राप्त नही।

२१

देखो साईया, हरि मन काठ कियो।
आवन कहि गयो, अजहू न आयो, करि करि बचन गयो।
खान पान सुध बुध सब बिसरी, कैसि करि मै जियों।
बचन तुम्हारे तुम्ही बिसरे, मन मेरो हर लियो।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, तुम बिन फाटत हियो।।१३६।।

२२

पिया कूँ बता दे मेरे, तेरा गुण मानूँगी।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैन रहे दोय छाय।

बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण दिन जाय।
मीराँ के प्रभु वेग मिलोगे, तरस तरस जिय जाय ।।१३७।।†

२३

पिया जी थे तो कटारी मारी।
जिन को पिव परदेस बसत है, सो क्यूँ सोवे न्यासी।
. . .... नही भावत, आकूँ सदा देहारी।
जेसे भवगत जत काँचरी, सो गत भई है हमारी।
बिन दरसण कल न परत है, तुम हम दिये बिसारी।
मीराँ के प्रभु तुम्हरे मिलन कूँ, चरण कमल पर वारी ।।१३८।।†

पदाभिव्यक्ति में संगति का अभाव है।

२४

सोवत ही पलको मे मै तो,पलक लागी पल में पिऊ आये।
मै जु उठी प्रभु आदर देण कूँ,जाग परी पिव ढूँढ न पाये।
और सखी पिव सूत गमाये,मै जु सखी पिव जागी गमाये।
आज की बात कहा कहूँ सजनी,सुपना मे हरि लेत बुलाये।
वस्तु एक जब प्रेम की पकरी,अजि भये सखि मन से भाये।
वो म्हारों सुने अरु गुनि है, बाजे अधिक बजाये।
मीराँ कहै सत्त कर मानो, भक्ति मुक्ति फल पाये ।।१३९।।†

स्वप्नानुभूति का ऐसा वर्णन इस पद की विशेषता है। पद की छठी पंक्ति का अर्थ अस्पष्ट है।

२५

स्याम को सदेशो आयो, पतियाँ लिखाय माय।
पतियाँ अनूप आई, छतियाँ लगाय लीनी।
अचल की दे दे ओट, ऊधो पै बंधाई है।

बाल की जटा बनाऊँ, अग तो भभूत लाऊँ।
फाड़ूँ चीर करुँ गलकंथा, जोगिन बन जावूँगी।
इन्द्र के नगारे बाजै, बदल की फौज आई।
तोपखाना पैसखाना उतरा आया बाग मे।
मथुरा उजार कीन्ही गोकुल बसाय लीन्ही।
कुब्जा सो बाध्यो हेत, मीराँ गाय सुनाई है।।१४०।।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का सर्वथा अभाव है तथा प्राय क्रिया पद सभी आधुनिक हिन्दी मे है।

२६

मेरे प्रीतम रामकूँ लिख भेजूँ री पाती।
स्याम सदेशो कबहूँ न दीन्हो, जानि बूझि गुझबाती।
डगर बुहारुँ पथ निहारुँ, रोय रोय अखियाँ राती।
तुम देख्याँ बिन कल न परत है, हियो फाटत मेरी छाती।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, पूरब जनम का साथी।।१४१।।

२७

मतवारो बादर आए रे, हरि को सदेशो कछु नही लाए रे।
दादुर मोर पपइया बोले, कोयल सबद सुनाए रे।
कारी अधियारी बिजरी चमकै, बिरहिन अति डरपाये रे।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड लाए रे।
कारी नाग बिरह अति जारे, मीराँ मन हरि भाए रे।।१४२।।

२८

बादल देखि झरी हो श्याम, बादल देखि झरी।
काली पीली घटा उमगी, बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी ही पाणी, हुई सब मोम हरी।
जाकाँ पिया परदेस बसत है, मीजूँ बाहर खरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कीज्यो प्रीत खरी।।१४३।।

प्रथम पंक्ति मे "झरी" प्रयोग के बदले "डरी' प्रयोग भी मिलता है।

२९

सावण दे रह्यो जोरा रे, घर आओ जो स्याम मोरा रे।
उमड घुमड चहु दिसि से आया, गरजत है घनघोरा रे।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही सोरा रे।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, ज्यो वारु सो हो थोरा रे ॥१४४॥

३०

बरसे बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।
सावन मे उमड्यो मेरो मनवां, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड घुमड चहु दिसि ते आयो, दामिनी दमक झर लावन की।
नन्हीं नन्ही बूँदन मेहा बरसे, सीतल पवन सोहावन की।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, आनन्द मगल गावन की ॥१४५॥

पदाभिव्यक्ति मे विरोधाभास है। पहले की पक्तियों से विरोध और अन्तिम पक्तियो से आनन्द ही लक्षित होता है।

३१

सुनी हो मै हरि आवन की आवाज।
म्हैल चढि चढ़ि जोऊं सजनी, कब आवै महाराज।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल मधुरै साज।
उमग्यो इन्द्र चहु दिसि बरसे, दामिणी छोड़ी लाज।
धरती रुप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण के काज।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, बेग मिलो महाराज ॥१४६॥

३२

कोई कहियो रे प्रभु आवन की।
आवन की मन भावन की, कोई।
आप नही आवै, लिख नहीं भेजै बाण पड़ी ललचावन की।
एक दोइ नैना कह्यो नही मानै, नदिया बहै जस सावन की।
कहा करुं कछु बस नही मेरो, पांख नही उड जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कबर मिलोगे, चेरी भई हू तेरे दावन की।।१४७।।†

उपर्युक्त तीनों पदों मे कुछ ऐसा भाव साम्य है कि तीनों ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर प्रतीत होते है। "भनक सुनी हरि आवन की" भावना की ही पुनरुक्ति हुई है। "सुनिहौ मै हरि आवन की आवाज" (पद स० ३१) और "कोई कहियो प्रभु आवन की" (पद स० ३२) मे प्रथम दो पदो मे वर्षा और श्रावण का वर्णन है। तीसरे पद की अभिव्यक्ति के अनुसार मीराँ की आँखो पर ही श्रावण छाया हुआ है। अन्तिम पद (स० ३२) चन्द्र सखी के निम्नाकित पद के कुछ विशेष निकट पडता है।

'चन्द्रसखी' के नाम पर भी एक ऐसा ही निम्नाकित पद पाया जाता है। निश्चित रूपेण यह कहना कि पद मौलिक रूपेण किसका है, अति दुरुह है। फिर भी, मीराँ के पदो के साथ हुए भाव और भाषा के अन्तर पर विचार करते हुए यह अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि पद मौलिक रूपेण 'चन्द्रसखी' का ही हो।

कोई कहियो रे मोहन आवन की।
आप तो जाय द्वारिका छाये, हम को जोग पठावन की।
आप न आवे, पतियाँ न भेजै, बात करै ललचावन की।
ए दोऊ नैण कहियो न मानै, घटा उमड़ रही सावन की।
दिल चाहत उड जाय मिलूँ, पर पाख नही उड़ जावन की।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, पर कमल लपटावन की।

पद स० ३२ से इस पद का बहुत अधिक साम्य है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

क्यारे[1] आवसे घेर कान रे, जोसिडा जोस[2] जुवो[3] ने .
दहीयो अमारी वाला दुर्बल थई केरे, थई गई थाकेली[4] पान रे .
वृन्दा ते वनमां वाले रास रच्यो छे, सहस्त्र गोपी मा एक कानरे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भावे भरिया भगवान र।
॥१४८॥†

पदाभिव्यक्ति में पूर्वापर संबध का निर्वाह् नही हुआ है।

२

कागद कोण लई जाय रे, मथुरामां लखीए, प्रीत थोडी थोडी थाय[5] रे।
प्रीत तमीने मलवा ने तलखे, ने जोशोमति अन्न न खाय रे।
वृन्दाबन की कुज गलियन मे, रोता रजनी जाय रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल चित चोर रे ॥१४९॥†

अन्तिम पंक्ति का शेष पद से समन्वय नही होता।

३

कही जइ[6] करूं रे पोकार, कारी मुनी धावे लागे थे,
मे कही जई करूं पोकार रे।
पिऊ जी ह्मारो पारधि भयो थे, मै तो भइ हरिणी शिकार रे।
दूर से थी आइ गोली लग गई,शीरू थे,नीकर गयी पारम पार रे।
प्रेम नी कटारी पुने[7] खेच कर मारी था, थई गई हाल बेहाल रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधरना गुण, हो गई पारम पार रे ॥१५०॥†

---

१ कब, २ पंचाग, ३ देखी, ४ सूखा हुआ, ५ होती है, ६ जाकर, ७ मुझको ।

४

शामले मल्या त बिसारी, ओधव ने वाले शामले मेल्या ते बिसारी।
प्रीत करी ने पालव[1] पकडो वाला, प्रेम नी कटारी मुने मारी।
गोकुल थी मथुरा मै गयो छो वा'ला, कुब्जा सोलागी छै तमली[2]।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल बलिहारी ॥१५१॥†

५

ब्रजमा कयम रेवाशे[3] ओधव ना वा'ला, ब्रज मा कयम रेवाशे।
आठ दाहडानी[4] अवध करी ने गया छो, वा'ला खटमास थय छेहरिने।
वृन्दाबन की कुजगलिगाँ वाला, बैठा छे मुख मोरली धरी ने।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, वा'ला अमोरह्या छे आसडा भरी ने।
॥१५२॥†

पदाभिव्यक्ति में विरोधाभास स्पष्ट है।

६

आव जो म्हॉरे नेडे[5], ओधव न वा'ला, आव जो म्हारे नैडे।
म्हॉरे आगणिये आबो मेर्यो, वा'ला कानुडो आवीने सार्यो वैडे।
अमो जल जमुना भरवा गया ता, वाला कानुडो पड्यो छे म्हारी कैड़े।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, वा'ला हरि मलवा मन हेरे ॥१५३॥†

पद की तीसरी पक्ति शेष पद से सर्वथा भिन्न पडती है। पद में पूर्वापर सम्बन्धका भी सर्वथा अभाव है।

७

कांनी भावे देखन जाऊं, श्यामलो वेरागी भयो रे।
कोरी मटकी मां नही जमाऊं, गुबालेन हो कर जावूँरे।

---

१ आँचल, २ नेह, ३ रहा जायगा, ४ दिनकी, ५ नजदीक, पास।

गोरे गोरे अंग पर भभूत लगावूँ, जोगण होकर जाऊ रे।
मीरॉ बाई के प्रभु गिरिधर नागर, श्याम सुदर पार पावूँ रे ॥ १५४॥†
इस तरह की अभिव्यक्ति का यह एक ही पद प्राप्त है।

८

गोविन्दा ने देश ओध मुने लेई, जारे गोविन्दा ने देश।
मने रे मोहन जी ए मेली,[1] रे बिसारी, करडूँ मोरी करम की रेख।
हार तजुगी, शणगार तजुगी, तजुगी काजल की रेख।
चीर ने फाडी वा'ला कफनी पेरुगी, लेऊगी जोगन का वेश।
गोकुल तजुगी मे मथुरा तजुगी, तजुगी मे ब्रज केरी देश।
मीरॉबाई के प्रभु गिरधरना गुण, चरण कमल चित्त सग रहेश।
॥१५५॥†

पदाभिव्यक्ति पर नाथ पथ का और भाषा पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

९

आवो ने सलुणा म्हारा मीठडा मोहन, आँख लडी माँ तमने राखूँ रे।
हरि जेरे जोइये ते तमने आणी,आणी आपुँ[2] मीठाई मेवा तमने खावा रे।
ऊची ऊंची मेडी साहेबा अजब झरुखा, झरुखे चढ़ी चढी फारबे रे।
चुन चुन कलिया वा'ली सेज बिछावुँ,भमर पलग पर सुख नाखुँ वारी रे।
मीरॉ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, तारा चरण कमल मां चित राखूँ रे।
॥१५६॥†

१०

मारा प्राण पातलिया वाहेला आवो रे, तमरे विनाहूँ तो जनम जोगण छूँ।
नाभी कमल की सुरता रे चाली, जई ने तखत पर रास रसीला रे।

---

१ रखी, २ दूँ।

१३

व्रजमा केम रेवाशे, ओधवना वा'ला, ब्रज मा केम रेवाशे ।
जेरे दाडा जीवन गया छो वा'ला, दु खडा काने कहेवाशे ।
बलवात थई ने वादी शूँ मूको, वा'ला, बरद तमारु जाशे ।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, वा'ला, गोपिका अरज काशे ।
॥१६०॥†

पद स० ५ तथा उपर्युक्त पद की पचम पक्तियो में साम्य है, परन्तु शेष पद सर्वथा भिन्न पडता है ।

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

पंजाबी

१

सावरे दी भालन भाये, सानू प्रेम दी कटारिया ।
सखी पूछे दोऊ चारे, व्याकुल क्यों मैया नारे ।
रग के रगील्ले मोंसे दृग भर मारिया ।
व्याकुल बेहाल भैयो, सुध बुध भूल गैया ।
अजहूँ न आये श्याम, कुंज बिहारिया ।
यमुना की घाटी बाटी, असो तेरी चाल पछाती ।
बसियां बजावी कान्हा, मैया मत वारिया ।
मीराँ बाई प्रेम पाया, गिरधर लाल ध्याया ।
तू तो मेरो प्रभु जी प्यारा, दासी हो तिहारियां ॥१६१॥ †

पद की आठवी पक्ति से अन्योक्ति ही स्पष्ट होती है । भाषा क आधार पर भी पद की प्रामाणिकता संदिग्ध ही है ।

खड़ी बोली

१

आली सावरे की दृष्टि मानो प्रेम कटारी है।
लागत बेहाल भई, तन की सुधि बुधि गई।
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।
सखियाँ मिलि दुइ चारी, बावरी सो भई न्यारी।
हो तो वाको नीके जानो, कुंज की बिहारी है।
चन्द्र को चकोर चाहे, दीपक पतग दाहै।
जल बिन मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है।
बिनती करो है श्याम, लागो मैं तुम्हारे पाम।
मीराँ प्रभु ऐसे जानो दासी तुम्हारी है ।।१६२।। †

भाव और भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है।

२

जल्दी खबर लेना मेहरम मेरी।
जल बिन। मीन मरे एक छन मे, एनै अमृत पाऊ तो झेरी झेरी।
बहुत दिनो का बिछोह घड़ा है, अब तो राखो नेडी नेडी।
चकोर को ध्यान लगो चन्दवा सो, नटवा को ध्यान लगी डोरी डोरी।
सन्त को ध्यान लगे राम प्यारे, भूख को ध्यान मेरी मेरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम पर सूरत मेरी ठहरी ठहरी ।।१६३।।†

संघर्षाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

अब नहि बिसरुं म्हारे हिरदै लिख्यो हरिनाम।
म्हारे सतगुरु दियो बताय अब नहि बिसरू रे।
मीराँ बैठी महल मे, उठत बैठत राम।
सेवा करस्यां साध की म्हारे और न दूजो काम।
राणा जी बतलाया[1] कह देणो जवाब।
पण लागो हरिनाम सूँ म्हारे दिन दिन दूनो लाभ।
सीप भर्‌यो पाणी पिवे रे, टाक[2] भर्‌यो अन्न खाय।
बतलाया बोली नही रे राणो जी गया रिसाय[3]।
विषरा प्याला राणा जी भेज्या, दीजो मीराँ हाथ।
कर चरणामृत पी गई म्हारा सबल धणी[4] के साथ।
विष का प्याला पी गई भजन करे उस ठौर।
थारी मारी ना मरूं म्हांरा राखनहार और।
राणाजी मोपर कोप्यो रे, मांरू एकज[5] सेल।[6]
मार्‌या पिराछित लागसी दीजो म्हाने पीहर भेल।
राणा मोपर कोप्यो रे रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुन्ठ मे, यो तो समझ्यो नही सिसोद।
छापा तिलक बनाइया तजिया सब सिंगार।
म्हें तो सरणे राम के भल निन्दो संसार।

---

१ बात करने का प्रयास किया. २ छटाँक भर, बहुत थोडा, ३ क्रुद्ध, ४ स्वामी, पति अर्थ मे रूढ़िवाचक हो गया है, ५ एक ही, ६ कटारी।

माला म्हारे दोवडी[1], सील बरत सिगार।
अब के किरपा कीजियो, हूं तो फिर बाँधू तलवार ॥१६४॥

कही कही इस पद के आगे निम्नाकित कुछ पक्तिया और भी मिलती है —

रथा बैल जुताय के ऊटा कसिया भार।
कैसे तोडूँ राम सूँ, म्हारो भो भो[2] रो भरतार।
राणो साड्यो मोकल्यो जाज्यो एके दौड।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड चली राठौर।
साड़िया पाछो फेरिया रे परत[3] न देस्या पॉव।
कर सूरापण नीसरी म्हांरे कुछ राणे कुण राव।
ससारी निन्दा करै दुखियो सब ससार।
कुल सारो ही लाजसी मीराँ जो भया ख्वार।
राती माती प्रेम की विष भगत को मोड।
राम अमल माती रहै धन मीरा राठौड।

२

म्हारे हिरदे लिख्यो जी हरिनाम, अब नहि बिसरू।
मै तो हिरदे लिखियो जी गोपाल, अब नहि बिसरू।
हाथी घोडा बहो घणा माया केर न पार।
राज तजूँ चितौड को गामडी है असी हजार।
साध हमारी आतमा मे साधन की देह।
रोम रोम मे राम रह्या ज्यो बादर मे मेह।
राती माती हरिनाम की बॉध भक्त को मोर।
राम अमल साखी फिरै धन मीरा राठोर।
एक आडी गुरु गोविन्द खडा, एक आडी सब ससार।

१ दुलडी, २ जन्मजन्मान्तर, ३ लौटकर।

कैसे तोडूँ राम सों म्हारो भो भो रो भरतार।
संसारी निन्दा करे, रूठो सब परवार[1]।
कुल सारोइ लजाइयौ, मीरा बाई बहे अकरार[2]।
भक्त हीन पापी घणा राणा के दरवार।
के तो विषरा प्याला प्याय द्यो, के डाली कठहार।
राणो जी विषण प्याला मोकल्यां[3], दीज्यो मीरा रे हाथ।
मे तो चरणामृत कर पी गइ अब थे जाणो म्हारा नाथ।
मीरा विष का प्याला पी गई सोती खूँटी तान[4]।
म्हारो दरद दिवाणो सावरो, म्हाने दौडि जगावेलो आन ॥
॥१६५॥

इस पद के साथ निम्नाकित पक्तिया और भी पाई जाती है।
राम नाम मेरे मन बसियो, रसियो राम रिझाऊ ए माय।
म मद भागिन करम अभागिन कीरत कैसे गाऊ ए माय।
बिरह पिजड की बाड सखी री, उठकर जी हुलसाऊ ए माय।

उपर्युक्त तीन पक्तिया सत मत से प्रभावित एक अन्य पद का प्रथमांश है। अत इनको तो इस पद से निश्चित रूपेण हटाया जा सकता है।

२

म्हारे हिरदे लिखयो हरिनाव, अब मेना बिसरू।
मीराँ गढ सूँ उतरी जी छापा तिलक बणाय।
पगा बजावता घूँघरू जो हाथ बजावतां ताल।
माला कंठी दो लडो सील बरत सिणगार।
जो कोई हिरदै बस जी, जो कोइ आवणहार।

---

१ परिवार, २ बेकरार, सम्पूर्ण सीमाओ को तोडकर, ३ भेजा, ४ खूंटी तानकर सोना, सर्वथा निश्चिन्त होकर सोना।

राणो मन मे कोपियो जी मारो याके सेल[1]
म्हारो तो पिराछित लागै जी, पीहर दो याको मेल।
रथडा बैल जुपाइया[2] जी, ऊटा कसियो भार।
डावो[3] छोडो मेडतो जी पेला[4] पोषर[5] जाय।
राणा साडया मोकल्या जी, पाछा ल्यावो मोड।
कुल की माडण[6] हस्तरी[7] जी, मुरड चली[8] राठौड।
मीराँ वचन उचेरिया[9] जी गिरधर म्हारो मोड[10]।
थे पाछा जावो साडिया जी काने[11] मोड़ो जोड[12] ॥१६६॥ †

इस पद की अन्तिम कुछ पक्तियाँ विशेष विचारणीय है।

उपर्युक्त तीनो ही पदो मे स्वानुभूति और अन्योक्ति का विचित्र सम्मिश्रण हुआ है। बहुधा पुनरुक्ति भी हुई है। एक पद से व्यक्त होती किसी घटना का दूसरे पद मे कोई स्पष्ट उल्लेख नही तथापि ऐसी कुछ पक्तिया सभी पदो मे मिल जाती है, जिनसे कि उस घटना विशेष का आभास मिल जाता है।

भाव और भाषा के साम्य के आधार पर तीनो ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर प्रतीत होते है।

४

मै तो सुमर्‌या छै मदन गोपाल, राणा जी म्हारो काई करसी।
मीराँ बैठ्या महल मे जी, छापा तिलक लगाय।
आया राणा जी महल मे जी, कोप कर्‌यो छै मन भाय[13]।
मीराँ महला से उतर्‌या जी, ऊटा भार कसाय।

---

१ कटार, २ जुतवाये, ३ बाँए, ४ सर्व प्रथम, ५ तालाब, ६ बनानेवाली, ७ स्त्री, ८ नाराज होकर चली, ९ उच्चारण किया, १० मोड शब्द के तीन अर्थ होते है — लौटाना, सन्यासी का अवहेलनात्मक पर्यायवाची, तोडना, ११ किसलिए, १२ जोडी या साथ, विशेषत दम्पति के अर्थ मे ही 'जोडी' शब्द व्यवहृत होता है। १३ मन मे।

डावो[1] छोड़्यो मेड़तो कोई सूधा[1] द्वारका जाय।
राणा जी सांड्यो भेजिया जी, पाछा लावो घेर।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली छे मुड राठोर।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै भाय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेड़तो जी, कोई चोथी गढ चितौड़।
राणा जी विष का प्याला भेजिया जी द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गयाँ जी, आप जानो दीनानाथ।
पेया[2] नाग छोड़िया जी, छाडो मीरा के महल।
हिवड़े[3] हार हिडोलिया,[4] कोइ तुम जाणो रघुनाथ ।।१६७।।

"दूदा जी रो मेडतो" अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। राणा द्वारा साप भेजे जाने का कथानक यहाँ दूसरे ही रूप मे दिया गया है। आराध्य के प्रति "मदन गोपाल" सम्बोधन भी इस पद की विशेषता है। इस पद का भी पहले तीनों पदो से गहरा साम्य है।

पाठान्तर १

मैं तो सुमर्‌या छै मदन गोपाल, राणो जी म्हांरो काई करसी।
मीराँ बैठी महल मे जी छापा तिलक लगाय।
आया राणा जी महल म जी,कोप करियो छै मन माय।
मीराँ महैलाँ से उतर्‌या जी ऊटा कसिया भार।
डावो छोड्यो मेड़तो कोई सूधा द्वारका जाय।
राणा जी साड्यो भेजियो जी पाछा ल्यावो दौड़।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली मुड राठौड।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै माय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेडतो जी लाजै गढ चितोड।
विष का प्याला भेजिया जी, द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गयां जी, आप जाणो दीनानाथ।

---

१ सीधे, २ पिटारी, ३ हृदय पर, ४ झुला लिया।

पेया नाग छोडियो जी, छोडो मीरॉ महैल ।
हिवडे हार हिडोलिया जी, थे जाणो रघुनाथ ।
दोनो पाठान्तरो मे कुछ शब्दो का ही अन्तर है ।

इन पदो मे एक विचारणीय अभिव्यक्ति यह है कि मीरॉ चित्तौड़ का त्याग करती है मेडता जाने के उद्देश्य से ही तथापि चली जाती है तीथ-यात्रा हेतु। "मुरड चली राठोड" जैसी राणा की धारणा से भी आभासित होता है कि मीरॉ नाराज होकर गृह-त्याग कर अपने पीहर "राठोड़" जा रही है।

"डॉवो तो मैल्यो मेडतो पेलॉ पोखर जाय" या "सूधा द्वारका जाय।" जैसी अभिव्यक्तियो का विश्लेषण अद्यावधि प्राप्त वृतान्त क आधार पर करना सम्भव नही। (देखे, "मीरॉ, एक अध्ययन")।

५

गढ से तो मीराँ बाई उतरी, करवा[१] लीना जी साथ।
डॉवो तो छोड़्यो मीरॉ मेडतो, पुस्कर न्हावा जाय।
मेरो मन लाग्यो हर के नाम, रहस्या साधा के साथ।
राणा जी ओठी[२] भेज्यॉ, दीजो मीरॉ बाई रे हाथ।
घर की मानन[३] अस्तरी, मुरड[४] चली राठोड।
लाजै पीहर सासरो, लाजै तेरो सो परवार,
लाजै मीरॉ जी थारा मायड बाप, चोथो वश राठोड।
मीरॉ बाई कागद[५] भेज्यॉ, दीजो राणा जी रे हाथ।
राणा जी समझ्यो नही, ले लाती बैकुन्ठा।
सिसोदियो समझ्यो नही, ले जाती बैकुन्ठा।
बागॉ मे बोली कोयलियॉ, बन मे दादुर मोर।

१ मिट्टी का बना हुआ एक छोटा सा पात्र जो (पानी से भर कर) पूजा करने, सती होने या ऐसे किसी शुभ अवसर पर व्यवहृत होता है। २ पत्र, ३ बनाने वाली, ४ नाराज होकर, ५ पत्र ।

डावो छोड़्यो मेडतो कोई सूधा[1] द्वारका जाय।
राणा जी साड्यो भेजिया जी, पाछा लावो घेर।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली छे मुड राठोर।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै भाय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेडतो जी, कोई चोथी गढ चितौड।
राणा जी विष का प्याला भेजिया जी द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गयाँ जी, आप जानो दीनानाथ।
पेया[2] नाग छोडिया जी, छाडो मीरा के महल।
हिवडे[3] हार हिडोलिया,[4] कोइ तुम जाणो रघुनाथ॥१६७॥

"दूदा जी रो मेडतो" अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। राणा द्वारा साप भेजे जाने का कथानक यहाँ दूसरे ही रूप मे दिया गया है। आराध्य के प्रति "मदन गोपाल" सम्बोधन भी इस पद की विशेषता है। इस पद का भी पहले तीनो पदो से गहरा साम्य है।

पाठान्तर १

मै तो सुमर्‌या छै मदन गोपाल, राणो जी म्हारो काइं करसी।
मीराँ बैठी महल मे जी छापा तिलक लगाय।
आया राणा जी महल मे जी,कोप करियो छै मन माय।
मीराँ महैलाँ से उतर्‌या जी ऊटा कसिया भार।
डावो छोड्यो मेड़तो कोई सूधा द्वारका जाय।
राणा जी साड्यो भेजियो जी पाछा ल्यावो दौड।
घर की नार इस्तरी चाली, चाली मुड राठौड।
लाजै पीहर सासरो जी, लाजै माय र बाप।
लाजै दूदा जी रो मेडतो जी लाजै गढ चितौड।
विष का प्याला भेजिया जी, द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गया जी, आप जाणो दीनानाथ।

---

१ सीधे, २ पिटारी, ३ हृदय पर, ४ झुला लिया।

पेया नाग छोड़ियो जी, छोडो मीराँ महैल ।
हिवडे हार हिडोलिया जी, थे जाणो रघुनाथ ।
दोनो पाठान्तरो मे कुछ शब्दो का ही अन्तर है ।

इन पदो मे एक विचारणीय अभिव्यक्ति यह है कि मीराँ चित्तौड का त्याग करती है मेडता जाने के उद्देश्य से ही तथापि चली जाती है तीथ-यात्रा हेतु । "मुरड चली राठोड" जैसी राणा की धारणा से भी आभासित होता है कि मीराँ नाराज होकर गृह-त्याग कर अपने पीहर "राठोड" जा रही है ।

"डाँवो तो मैल्यो मेड़तो पेलाँ पोखर जाय" या "सूधा द्वारका जाय ।" जैसी अभिव्यक्तियो का विश्लेषण अद्यावधि प्राप्त वृतान्त क आधार पर करना सम्भव नही । (देखे, "मीराँ, एक अध्ययन") ।

५

गढ से तो मीराँ बाई उतरी, करवा[1] लीना जी साथ ।
डाँवो तो छोड्यो मीराँ मेडतो, पुस्कर न्हावा जाय ।
मेरो मन लाग्यो हर के नाम, रहस्या साधा के साथ ।
राणा जी ओठी[2] भेज्याँ, दीजो मीराँ बाई रे हाथ ।
घर की मानन[3] अस्तरी, मुरड[4] चली राठोड़ ।
लाजै पीहर सासरो, लाजै तेरो सो परवार ,
लाजै मीराँ जी थारां मायड बाप, चोथो वश राठोड ।
मीराँ बाई कागद[5] भेज्याँ, दीजो राणा जी रे हाथ ।
राणा जी समझ्यो नही, ले लाती बैकुन्ठा ।
सिसोदियो समझ्यो नही, ले जाती बैकुन्ठां ।
बागाँ मे बोली कोयलियाँ, बन मे दादुर मोर ।

---

१ मिट्टी का बना हुआ एक छोटा सा पात्र जो (पानी से भर कर) पूजा करने, सती होने या ऐसे किसी शुभ अवसर पर व्यवहृत होता है । २ पत्र, ३ बनाने वाली, ४ नाराज होकर, ५ पत्र ।

मीराँरा ने गिरधर मलिया, नागर नन्द किसोर ।।१६८।।†
अन्तिम दोनो पक्तियो का शेष पद से समन्वय नही होता ।

६

राणी जी महलां से ऊतरी, ऊटा कसियो भार ।
डाँवो तो राणी छोडयो मेडतो, पूठ[१] दयी चित्तौड ।
म्हारा रे भाई ओठियाँ[२], मीराँ ने लाओ ए समझाय ।
घर को मानन राणी रूस गयाँ राठोड ।
म्हारा रे भाई साड़िया[३] रे बीर, जाजै सौ सौ कोस ।
म्हारा रे भाई साडिया, रे तेरो ऊट पाछो[४] ले जाय ।
इण राणा जी रे राज मा, जल पिवा रो दोस ।
म्हारी एक न मानी बात, राणा रे, ले जाती बैकुठ माँहि ।
बागाँ मे बोली कोयल जी, बन मे दादुर मोर ।
मीराँ ने गिरधर मिलिया, नागर नन्द किसोर ।।१६९।।†

भाव और भाषा के आधार पर इस पद को पूर्व पद (स० ५) का गेय रूपान्तर कहा जा सकता है ।

७

काई थारो लागै छै गोपाल ।
गढ से तो मीराँ बाई उतर्‍याँ जी, हाथ मगद[५] को थाल ।
औरा[६] के तन अन धन लछमी, आप फिरो कगाल ।
ऊचा राणा जी रा गोखडा[७] जी, नीची मीराँ बाई री साल[८] ।
रमतां तो पायो मीरां काँकरो, कोई सेवा सालिगराम ।
जहर पियालो राणा जी भेज्या, जी, द्यो मीराँ ने जाय ।

---

१ पीठ, २ पत्रवाहक, ३ ऊँट चलाने वाला, ४ लौटा कर । ५ मैदे से बना हुआ एक तरह का लड्डू विशेष जो पूजा के काम आता है, या लडकी के विवाह मे बनसारे मे दिया जाता है । ६ दूसरो के लिये, ७ अटारी, ८ कमरा ।

कर चरणामृत मीराँ पी गई, कोई आप जाणो रघुनाथ।
साँप पेटारा राणा जी भेज्या, द्यो मीरा ने जाय।
कर खग वालो मीराँ बाई पहरियो, कोइ हो गयो नोसर हार[1]।
काढ कटारो राणाजी बैठिया, ल्यो मीरा ने मार।
इन माराँ इन दोष लगे, कोई छत्री धरम धर जाय।
साँडया[2] साडिया पलाण[3] जो, म्है चालाँ सो सो कोस।
राणा जी का देस मे, कोई जल पिवा रो दोस।
मीराँ गिरधर रो रग राची, रँच न रक कलेस।
अन्तिम पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी पाया जाता है —
"मुख से बजावै मीराँ बाँसरी, कोई नाच रह्याँ-मधुरेस।"॥१७०॥

राजस्थान के ऊँटो की तीव्र चाल किसी समय विशेष प्रसिद्ध थी। मीराँ ने ऊँट जोत लाने के लिये कहा और ऊँट ले आया गया। इतने मे ऊँट चलाने वालो ने मुडकर जो देखा तो "मीराँ बाई रो देस" ही दीखने लगा। ऊँट की तीव्र गति का चमत्कार पूर्ण वर्णन है।

८

ए मीराँ थांरो काई लागै गोपाल।
राणो जी बूझै बात, काई थारो लागै गोपाल।
सरप पिटारो राणो जी भेज्या, द्यो मीराँ के हाथ।
ए मीराँ थारो भायलो गोपाल।
मीराँ बैठी महल मे जी, छापा तिलक लगाय।
बतलाया बोली नही रे, राणो जी रह्यो बल खाय।
काड कटारो खड़्यो हुयो जी, अब बताय तेरो गोपाल।

---

१ नोसर हार—एक तरह का बहुमूल्य हार जो अपनी बहुमूल्यता के कारण सिर्फ राजघरानो के ही उपयुक्त समझा जाता है, २ ऊँट, ३ ऊँट पर जोते जाने वाली काठी "पलाण" कहलाती है। इसका क्रिया रूप है "पलाण ज्यो" जिसका अर्थ है, जोत लो।

मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, जोत मे जोत मिलाय ॥१७१॥†

"ऐ मीरॉ थारो भायलो गोपाल" पक्ति विशेष ध्यान देने योग्य है। प्रथम पक्ति के आधार पर यह पद, पद स० ४ का पाठान्तर ही ही प्रतीत होता है परन्तु शेष पदाभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पडती है।

९

राणा जी महल पधारिया जी, कर केस दिया साज ।
राणी जी पाछा फिर गया जी, राणो जी जान्या म्हासूँ लाज ।
राणो जी बूझे काई ओ लागै गोपाल ।
राणी जी मुजरा करो सनमुख उबास्या ।
म्हे छॉ राणी चितोड़ का, और बरब्सॉगॉ थॉने राज ।
मीरॉ ने बुझो काई ओ लागे गोपाल ।
साध सत हिरदे बसे, हथलेवो को लाग्यो पाप ।
राणा जी बूझे काई ओ लागै गोपाल ।
द्योढया मे बझो काई ओ लागै गोपाल ।
राणा जी खडग सवॉरिया ले खाडो तरवार ।
किसडी मीरॉ ने राणो जी मारसी, हो गई एक हजार ।
मीरॉ ने बूझो काई ओ लागै गोपाल ।
राणा जी बतलावै काई ओ लागै गोपाल ॥ १७२ ॥

पदाभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है। राणा जी के "महल" मे पधारने पर 'राणी जी' के लौट जाने के कारण राणा को भ्रम होता है। नववधू की लज्जा का यह भ्रम शीघ्र ही शका मे परिणत हो जाता है और राणा यह जानने को उत्सुक हो उठते है कि "गोपाल" और "राणी जी" के बीच क्या सबध है। मीरॉ का उत्तर भी स्पष्ट है "साध सत हिरदै बसै, हथलेवो को लाग्यो पाप"। अस्तु, राणा मीरॉ को मार डालने का एक बार फिर निष्फल प्रयास करते है।

इस पद मे और पद सं० ५ मे गहरा साम्य है। दोनो ही पदो से व्यक्त भावनाएँ और घटनाएँ एक सी है। अस्तु, बहुत सम्भव है कि दोनो ही पद स्वतन्त्र पद न होकर एक ही पद के रूपान्तर मात्र हो।

१०

म्हाने बोल्याँ मति मारो जी राणा यो लैइ थारो देस।
मीराँ महलाँ से ऊतरी कोई सात सहेल्या माय।
खेलत पायो काँकरो कोइ सेवा सालगराम।
साध जी आया पावणा[1] कोई मीराँ के दरबार।
जाजम[2] दीनो बैसणो[3] कोई ढाल्यो[4] दीनो ढाल[5]।
जैर पियालो राणा जी भेज्यो झो मीराँ ने प्याय।
कर चरणामृत पी गई मीराँ, थे जाणो दीनानाथ।
साँप पिटारो राणा जी भेज्यो, दीज्यो मीराँ ने जाय।
कर खगवालो[6] पहिरियो कोई हो गयो नोसर हार।
राणा जी कागद भेजियो कोई द्यो मीराँ ने जाय।
साधाँ की सगत छोड़ द्यो मीराँ बैठो राण्या रे भाय।
काढ कटारो राणा जी भेज्यो, दूजी भेजी तरवार।
एक मीराँ की दोय करा, दो की हो गई च्यार।
राणो मीराँ से यो कहे जी, किस्यो[7] थाँरो भगवान।
राज पाट सब छोडस्याँ कोई म्हे भी भजा भगवान।
कच्चो रग उड जाय जै छी, पक्को रंग नही जाय।
मीराँ कै रग गोपाल को जी, अब छुटना को नाय।
म्हाँने ताना मत मारो हो, राणा यो लेइ थारो देस।
॥१७३॥†

प्राप्त इतिहास के अनुसार मेडता और उसके आसपास की भूमि "मीराँ बाई रो देस" कहलाता है। अत उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति और पदो से सर्वथा भिन्न पडती है। अन्य पदाभिव्यक्तियो के आधार पर यही स्पष्ट होता है कि मेडता जाने के हेतु ही मीराँ चित्तौड त्याग करती है। परन्तु मेडता न जाकर सीधे द्वारका चली जाती है। ज्यो

---

१ अतिथि, २ दरी, ३ आसन, ४ मूँज के बनाये हुए छोटे पलग, मचिया, ५ बिछा दिया, ६ सर्प, ७ कौन सी।

ही राणा को यह मालूम होता है त्यो ही वे सदेशवाहक को भेजकर मीराँ को लौटाने का निष्फल प्रयास करते है। उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से मीराँ का मेडता जाना ही सिद्ध होता है। इस तरह का विरोधाभास उपस्थित करने वाला यही एक पद प्राप्त है। मीराँ द्वारा किया गया गृह-त्याग मेडते से ही हुआ ऐसा वर्णन अन्य कुछ पदो मे भी मिलता है। प्राप्त इतिहास मे यही एक ऐसा पहलू है जिस पर सभी विद्वान् एक स्वर से सहमत है। साथ ही, यही एक ऐसा पहलू है जहाँ के प्राप्त वृत्तान्त और प्राप्त पदो की अभिव्यक्ति मे समन्वय होता है। अस्तु पूर्वापर सबध पर दृष्टि रखते हुए यही पदाभिव्यक्ति विशेष प्रामाणिक प्रतीत होती है।

११

गरुड चढ हरि आए मीराँ के पास।
आनन्द तूर बजाय के, पूरी मन की आस।
राणा मोपर कोपियो, म्हाँरी तक तक सेज।
लाज लागै छे म्हाँको, दीजो पीहर भेज।
मीराँ महल से ऊतरी, राणे पकरियो हाथ।
हथलेवा रो नात रो, परत न मानूँ बात।
मीराँ रथ सिणमार के, ऊँटा कसिया थात।
डावो मेल्याँ मेडतो, पेलाँ पोखर जात।
कुल की तारण अस्तरी, मुरड़ चली राठौड़।
राणा मो पर कोपिया, रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुन्ठ मे, समझ्यो नही सिसोद।
मीराँ मुक्त दुहेलडी राम की, जैसे खाँडे की धार।
कोई सन्त जन बिरला, ऊतरे भव के पार।
मीराँ ने प्रभु गिरिधर मिलियो, नागर नन्दकिसोर।
तन मन धन सब अरपिया चरण कमल की ओर ॥१७४॥†

पद मे पूर्वापर संगति का अभाव है। प्रथम दो पक्तियो की भाषा खड़ी बोली से प्रभावित है। राजमहलो मे अप्रिय स्थिति के कारण

ही मीराँ चित्तौड त्याग कर अपने पीहर, मेडते जाने का आग्रह करती है। तत्पश्चात सहसा ही मीराँ द्वारा मेडता त्याग का भी वर्णन है। मीराँ की मानसिक स्थिति के चित्रण से पद का अन्त हो जाता है। एक इसी पद मे नही अपितु गृह-त्याग की स्थिति का चित्रण करनेवाले प्राय सभी पदो मे ऐसा ही वर्णन मिलता है। "डावो तो मेल्यो मेडतो" जैसी अभिव्यक्ति सभी पदो मे मिलती है। किस और पद से इस 'डांवो' दिशा का ज्ञान हो यह जानना सरल नही प्रतीत होता। "सूधा द्वारका जाय" "पुष्कर न्हावा जाय" "पेला पोखर जात" "पूठ दयी चित्तोड" या "राणा जी पडया जूनागढ रे मारग ओ" जैसी अभिव्यक्तियाँ मीराँ द्वारा की गयी यात्रा के मार्ग को इगित करती हैं। प्राप्त सामग्री के आधार पर मीराँ द्वारा की गई वृन्दावन की यात्रा प्रामाणिक नही सिद्ध होती। इतना ही नही, यह भी लक्षित होता है कि मीराँ चित्तौड त्याग कर मेडता जाती है और फिर एक दिन मेडता भी त्याग कर द्वारिका की ओर पैर बढाती है।

मीराँ का प्रामाणिक वृत्तान्त जानने के लिए इन विशेष पहलूओं पर खोज होना विशेष आवश्यक है।

१२

ओ ल्यो राणा जी देस थॉरो, बन मे कुटिया बनस्यां।
राणा जी म्हेतो गोविन्द का गुण गास्यां।
राणा जी म्हे तो साधा कं सग रह्स्यां।
राणा जी रूसे म्हारो कुछए न बिगडै, हर रूस्या मरजास्या।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो, कर चरणामृत भी जास्या।
सिसोदिया म्हे तो साधा के संग रहस्या।
ओल्यो राणा जी म्हे तो गोविन्द का गुण गास्यां।
सिसोदिया म्हे तो साधां ये संग रहस्यां ॥१७५॥

यह पद भी प्रथम पक्ति के आधार पर "राणाजी बोल्यॉ मति मारो" (पद सं० ३) का ही रूपान्तर प्रतीत होता है, परन्तु शेष पद मे कोई साम्य नही है। मीराँ के साधु-संग का गहरा विरोध और तज्जन्य

सघर्ष दोनों ही पदो से लक्षित होता है, तथापि दोनो ही पदो से विभिन्न घटनाओ का आभास मिलता है।

उपर्युक्त पद मे 'चुनरी' लौटा देने की अभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है क्योकि उससे मीराँ का सधवा होना ही सिद्ध होता है।

१३

सुत्यो राणा जी निस भर नीद ओ,
कोई सुत्याँ ने सुपोणराणा जी ने आयो।
साथियो रे भाई करो ए विचार ओ,
साथिडा हो काई म्हॉरी मेडतणी भगवॉ पहर लियाँ।
सुपणो राणा जी आल जजाल ओ,
राणा जी पड्योरे जूनागढ रो मारग रे।
राणा जी कोई दीप उगायो[1] मीराँ बाई के देस।
बूझ्या राणा जी गायाँ रो ग्वाल ओ
कोई देस बताओ मीरॉबाई रो,।
ओई राणा जी मेडतणी रो देस,
कोई साल[2] थोडा सख्व भोगना[3] ओ।
बूझ्यो राणा जी मालीडारो पूत,
कोई बाग बताओ मीरॉ बाई रो,
ओई राणा जी मीरॉ बाई रो बाग।
कोई आम्बू तो पाक्याँ नीबूँ रस भर्या,
सामी मिल गई साधुडा री जमात।
बीच मे तो मीरॉ बाई घूमती ओ राम।
मीरॉ बाई थॉरो बिडद बतलायाँ,
मेडतणी बिडद[4] बतलायॉ म्हे थांने पूजस्यां।

---

१ दीप उगायो—दीप प्रज्ज्वलित किया, भावार्थ—दिन भर चलने के पश्चात् सायकाल पहुँचे, २ बजर भूमि, ३ भोगने योग्य।

मोडो[1] लख्यो असल गवाँर ओ राणा,
पहेली तो लखतो बैकुँठा ले जाती ओ राणा।
॥१७६॥ †

१४

सुत्या राणा जी नीस भरी नीद, सुत्यो राणा ने सुपणो भी आयो।
थाँरी मीराँ मेडतणी भगवाँ लियो, मीराँ मेडतणी ए भगवाँ लियो।
सुपणो तो है आल जजाल, मीराँ तो मेडतणी बैठी बाप के।
उठो रे साथीडा कसलो घोडा जी, दिनडो उगास्याँ मीराँ जी के देस मे।
चाल्यो राणा जी ढलती सी रात, दिनडो उगायो मीराँ जी के देसमे।
खूँट्याँ टागो ए घुडला जी, तम्बूडा तना दो चम्पा बाग मे।
आयो आयो साधुडारो साथ, माय[2] तो मीराँ आवे घूमती ओ राम।
छोडो ए मीराँ साधुडा रो साथ, लाजै पीहर और थाँरो सासरो।
नही छोडाँ साधुडा रो साथ, भल लाजो पीहर और सासरो।
ओढ़ो ए मीराँ दिक्खनी रा चीर*, भगवा तो बसतर ए छोड़ द्यो।
बालूँ ए जालूँ थांरा दिक्खनी रा चीर, प्यारे लागे धोला बसतर।
चुडलो तो पहरो ए हाँथी दाँत को, पहरो ए नोसर हार।
चुडलो तो मोलूँ[3] गढ के काँगरे, तोडूँ ए नोसर हार।
आयी आयी राणा जी ने रीस,[4] काढ कटारो मीराँ जी पर वायो[5]।
आयी आयी राणी जी ने रीस, एक मीराँ की सहस होय गयी ॥१७७॥†

पदाभिव्यक्ति की महत्ता स्पष्ट ही है। मेडते से ही मीराँ ससार त्याग करती हैं। इस भावना की पुष्टि उपर्युक्त दोनो ही पाठो से होती है। प्रथम पाठ मे राणा द्वारा मीराँ को "मेड़तणी" सम्बोधित किया गया है, यह इस पद की विशेषता है।

---

१ बहुत देर मे, २ बीच मे, ३ फोडूँ, ४ क्रोध, ५ फेका।

* दिक्खनीराचीर—दक्षिण मे बना हुआ वस्त्र जो अपनी बहुमूल्यता और सौन्दर्य के कारण राजस्थान मे विशेष प्रसिद्ध था अस्तु यह मुहावरा विशेष बढिया और वहुमूल्य वस्तु के लिये रूढ़िवाचक हो गया है।

पद की शैली पूर्णतया वर्णनात्मक है। राजस्थानी लोकगीत की शैली इन पदो से मिलती जुलती है। पहले पाठ मे राणा द्वारा 'मीराँ बाई के देस' और राजस्थान का पता पूछा जाना भी विशेष रुपेण विचारणीय है।

"ओढो ए मीराँ दिक्खनी रा चीर · · · प्यारा लागे धोला बसतर" पक्तियाँ भी विचारणीय है। कुछ पदो मे "धोला" वस्त्र का और अन्य पदो मे "भगवा" वस्त्र का ही वर्णन मिलता है। नाथ परम्परा प्रभावित अधिकाश पदो मे भगवा वस्त्र की चरचा है, तो सत मत प्रभावित अधिकाश पदो मे "धोला" सफेद वस्त्र की ही चरचा है। मतभेद और संघर्ष द्योतक कुछ पदो मे कही "धोला" वस्त्र का और कही 'भगवा' वस्त्र का दोनो का ही वर्णन समान रूप से है। एक ही पद मे दोनो का वर्णन इस पद विशेष मे ही है। 'भगवा' और 'धोला' शब्दो के बीच कौन प्रामाणिक और कौन प्रक्षिप्त है, यह कहना अद्यावधि सम्भव नही।

१५

राणा जी क्याने राखो म्हासूँ बैर।
थे तो राणा जी म्हॉने इसड़ा[1] लागो, ज्यूँ ब्रच्छन के केर।
महल अटारी हम सब त्याग्यो, त्याग्यो थारो बसनो सहर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या, भगवी चादर पहर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, इमरत कर दियो जहर ॥१७८॥

पाठान्तर १,

राणा जी थे क्याने राखो मोसूँ बेर।
राणा जी म्हॉने असा लगत हो, ज्यों विरछन मे केर।
मास घर मेवाड मेडतो त्याग दियो थॉरो सहेर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हठ कर पी गई जहेर।

उपर्युक्त पाठकी तीसरी पंक्तिमे निम्नाकित पाठान्तर मिलता है :—
"थारे रूस्याँ राणा कुछ नही बिगडे, अब हरि कीनी महेर।

---

१ ऐसे।

पाठान्तर २,

राणा म्हासूँ क्यो ने जी राखो बैर।
मारू घर मेवाड मेडत्याँ, सारा छोडया सहैर।
आप राणा जी म्हाँने इसका लागो, जैसा जगल मे कैर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, राम भरोसे पियो जहैर।

दूसरा पाठ प्रथम पाठ का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। प्रथम पाठ की ठेठ राजस्थानी भाषा द्वितीय पाठ मे ब्रजभाषा की ओर झुकती प्रतीत होती है। जैसे 'म्हाँसू', 'मोसूँ', 'इसडा लागो', 'असा लगत हो।'

द्वितीय पाठ की "मारू घर मेवाड मेडतो" अभिव्यक्ति प्रथम पाठ से सर्वथा भिन्न पडती है। पूर्वापर सबध देखते भी "मारू" शब्द का प्रयोग अशुद्ध ही ठहरता है। शुद्ध रूपेण 'म्हाँरो' होना चाहिए। म्हाँरो का अर्थ है "मेरा"।

इन सभी पाठो से समान रूपेण व्यक्त होनेवाली एक अभिव्यक्ति "म्हाने इसडा लागो ज्यो बिरछन मे केर[1]।" विशेष विचारणीय है।

---

१ केर एक कटीला पेड जो राजस्थान के जगलो मे बहुतायत से पाया जाता है। इसमे गोल गोल, छोटे हरे फल लगते है जो बहुत खारे होते है। इन फलो मे छोटे छोटे बीज भी होते है। इनको नमक के पानी मे एक लम्बे अरसे तक के लिए भिगो दिया जाता है, जिससे इसका खारापन निकल जाता है तब इसको कूट कर बीज अलग कर दिया जाता है और इसकी तरकारी या अचार बनाया जाता है। इस पेड के काटे बहुत तीखे होते है। इसकी टहनियाँ काटकर खेत आदि के किनारे दो तीन तीन फिट ऊची दीवार के रूप मे खडी कर दी जाती है, जिससे जानवर आदि खेत खराब न कर सके। सुरक्षा के ख्याल से मकान के चारो तरफ भी प्रात लोग इसको लगा देते है। इन झाडो को केर की झाडी कहते है। झाडी शब्द ही इसके लिये रूढ्यार्थ हो गया है। इन झाडियो पर भूत-प्रेत का निवास माना जाता है। अत सूर्यास्त के समय से कोई इनके पास से गुजरता भी नही है। "इसडा लागो ज्यो ब्रच्छन मे "कैर" जैसी अभिव्यक्ति से राणा के प्रति मीराँ की कटु और हीनतम भावनाए स्पष्ट हो उठती है।

इस पद का एक और भी पहलू विशेष विचारणीय है। पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट है कि मीराँ ने गृह-त्याग कर दिया है किन्तु अब भी राणा को मीराँ के प्रति उपालभ है। अब भी राणा का मन मीराँ के प्रति कठोर भावनाओ से पूर्ण है। मीराँ कराह उठती है कि जहर पीने पर और घर छोड देने पर भी राणा का व्यवहार उनके प्रति कठोर है। गृह-त्याग के बाद भी मीराँ के समक्ष राणा के बैर का प्रश्न ही क्योकर उठ सका, प्राप्त वृतान्त यहाँ सर्वथा मौन है। अस्तु, स्पष्ट ही है कि पद को प्रामाणिक मान लेने पर पदाभिव्यक्ति से व्यक्त होती घटनाओ पर खोज होना नितान्त आवश्यक हो जाता है।

१६

सिसोद्या राणा, प्यालो म्हाँने क्यूँ रे पठायो।
भली बुरी तो मै नहि कीन्ही राणा क्यूँ है रिसायो।
थाने म्होने देह दिवी है ज्याँ रो हरि गुण गायो।
कनक कटोरे लै विष घाल्यो दयाराम भडो लायो।
अठी उठी[1] तो मै देख्यो कर चरणामृत पायो।
आज कल की मै नाही राणा जद यह ब्राह्माण्ड छायो।
मेडतिया घर जन्म लियो है मीराँ नाम कहायो।
प्रहलाद की प्रतिज्ञा राखी खभ फाड बेगो धायो।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, जन को बिडद बढायो॥१७९॥†

पदाभिव्यक्ति मे संगति का अभाव है। "आज काल की मै नही" जैसी अभिव्यक्ति के तुरन्त बाद ही "मेडतिया घर जन्म लियो है" जैसी अभिव्यक्ति अमान्य ही हो उठती है। पद का प्रारम्भ होता है राणा के प्रति सम्बोधन से और अन्त होता है कृष्ण की लीलाओ के वर्णन से, यहाँ भी पूर्वापर सबध की असबद्धता स्पष्ट हो उठती है।

पदाभिव्यक्ति से व्यक्त होती बाते विशेष विचारणीय है। पदाभिव्यक्ति के अनुसार राणा की आज्ञा से मीराँ तक विष का प्याला ले जाने वाला व्यक्ति का नाम दयाराम पांडे था। परन्तु मुँशी

---

१ यहाँ वहाँ—चारो तरफ।

देवीप्रसाद तथा अधिकाश आधुनिक विद्वानो के मतानुसार अपने मुँह लगे "मुसाहिब जो बीजावर्गी जात का महाजन था" की सलाह से ही (इसीके द्वारा) राणा ने मीराँ तक विष पहुँचाया था। कहा जाता है कि मरते मरते मीराँ ने श्राप दिया था जिसके कारण आज तक इनके कुटुम्ब मे धन और सन्तान दोनो की एक साथ वृद्धि नही होती। यदि इस विषपान द्वारा मीराँ की मृत्यु मान ली जाती है तो तथाकथित मीराँ के पदो की रचियित्री यह कौन देवी है? इस घटना पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से खोज करने पर बहुत सम्भव है कि मीराँ के जीवन पर गहरा प्रकाश पड सके।

पद की सातवी पक्ति "मेडतिया कहायो" दूसरी विचारणीय पदाभिव्यक्ति है। स्पष्ट ही इस पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबध नही मिलता। भाषा की दृष्टि से भी यह पक्ति विचारणीय है। सम्पूर्ण पद की भाषा ठेठ राजस्थानी है, परन्तु इस पक्ति पर ब्रजभाषा की छाप है।

पद की अतिम पक्ति मे प्रयुक्त "जन" शब्द विचारणीय है। पूर्वापर सबध को देखते हुए यह शब्द "भक्त" के अर्थ मे भी प्रयुक्त हुआ प्रतीत होता है। सत-मत से प्रभावित तथाकथित मीराँ के कुछ पदो मे 'जन' शब्द का प्रयोग मिलता है। अन्तिम तीनो पक्तियो की भाषा शेष पद से भिन्न पडती है। सम्पूर्ण पद की भाषा पुरानी राजस्थानी है जब कि इन तीन पक्तियो की भाषा आधुनिक राजस्थानी ही कही जा सकती है। क्या यह संभव नही है कि यह तीन पक्तिया ही पीछे से जुडा ली गयी हो। यो भी, पदको प्रामाणिक मान लेने पर अद्यावधि मान्य वृत्तान्त को बहुत कुछ बदल देना होगा।

१७

इण सरवरिया री पाल मीराँ बाई सांपडे[१]।
सापड किया असनान सूरज सामी[२] जप करे।
होय बिरगी[३] नार डगराँ[४] बीच क्यूँ खडी?
काई थांरो पीहर दूर घराँ सासू लडी?

---

१ तैर रही है, २ सम्मुख, ३ उत्साहहीन, उदास, ४ रास्ते।

चल्यो जा रे असल गुवार[१] तन्नें[२] मेरी के पडी ।
गुरु म्हारा दीनदयाल हीरा रा पारखी ।
दियो म्होने ज्ञान बताय, सगत कर साध री ।
खोई कुल की लाज, मुकुन्द थारे कारणे ।
बेग ही लीज्यो सम्हाल मीराँ पडी बारणे[३] ॥१८०॥†

यह पद कुछ हेरफेर से निम्नाकित रूप मे भी मिलता है

"गाई थाँरो पीहर सासू लड़ी ।" पक्ति के बाद निम्नाकित पक्ति है —

"नहि म्हारो पीहर दूर घरा सासू लडी" जो पूर्वापर सगति को दखते अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है ।

"दियो म्हाने साध री" पक्ति के बाद निम्नाकित चार पक्तियाँ है .

इण सरवरिया रा हस, सुरग थाँरी पाखड़ी ।
राम मिलण कब होय फड़ुके म्हाँरी आँखड़ी ।
राम गये बनवास को सब रग ले गये ।
ले गये म्हाँरी काया को **सिंगार**, तुलसी की माला दे गये ।"

पूर्वापर सबध देखते उपर्युक्त पक्तियाँ उपयुक्त नही प्रतीत होती । इस पदके अन्य पाठान्तरो मे भी इसकी प्रथम दो पक्तियाँ हू-बहू आयी है । अन्तिम दोनो पंक्तियो की अभिव्यक्ति विचारणीय है ।

पाठान्तर १,

ऊभी मीराँ सरवरिया री पाल, मन मे आमण दूमणी[४] ।
भर भर धोबा धोये नैन साधां रे संग जोवती[५] ।

---

१ मूर्ख, २ तुमको, ३ शरण, ४ आमणदूमणी आशकाजनित व्याकुलता, व्याकुलतायुक्त, ५ प्रतीक्षा करती ।

तू छे ए भले घर री नार[1] गेले बीच क्यूँ खडी।
के थारो पियो परदेस के थाँरी सासू लड़ी।
चल्यो जा रे असल गवार तन्ने मीराँ की के पड़ी।
चल्यो जा रे असल गवार तन्ने मेरी के पडी।
म्हारे हर गया बनवास ने सदेशा ओ हर ने ज्यूँ खडी।
पोवे मोतीडारो हार हीरा री राखडी[2]।
राधा रुक्मण को नोसर हार किसन जी की राखडी।
उड जा उड जा सरवरियाँ हस जो सुरग थारी पाखडी।
कद आसी गोपिया वालो कान्ह फरुखे बाई आखडी।
सतगुरु मिलिया चतुर सुजान हीरा रा कहिए पारखी।

पाठान्तर २,

ऊभी मीरा, सरवरिया री पाल,
ऊदासी मीराँ क्यूँ खडी, थे छो भले घर की नार।
के थारो पियो दूर, काई थाने सासु लडी।
ना म्हारो पियो दूर, ना सासु लडी।
जा न जा असल गँवार, मीराँ की तन्ने के पड़ी।
आज म्हाँरा हर गया बनवास ने, सदेशा ल्यूँ खड़ी।
गया है तो मीराँ जान भी द्यो, थारो काई ओ ले गया गोपाल।
ले गया ले गया म्हारा हर जी सोलह सिणगार।
ढक गया प्रभुजी सजन किंवाड़।
ताला ढँक कूँची[3] ले गया।
कद म्हाँरा प्रभुजी आवे बनवास सदेशा ल्यूँ खड़ी।
उड़ जा उड जा सरवरिया रा हस सोने मे गढा द्यूँ तेरी चाँच
रूपे मे गढा दूँ तेरी पाखड़ी।

---

१ स्त्री। नारी राजस्थानी मे शब्द की मात्राओ पर ध्यान नही दिया जाता। प्राय अकार और इकार लय की सुविधानुसार परिवर्त्तित हो जात हैं।
२ राखी, शुभ समझा जाने वाला एक प्रकार का जेवर, ३ ताली।

मीराँ पोवै मोतीडारो हार, भल गूँथे राखड़ी।
फड़ूके म्हाँरी आखँडी।
आज म्हाँरा प्रभु जी आया बनवास, फरूखै म्हारी आखँडी।
यूँ कहै मीराँ बाई।

इस पाठान्तर की एक पक्ति "ना म्हाँरो पियो दूर ना सासु लडी" विशेष विचारणीय है, क्योकि इससे मीराँ का सधवा होना सिद्ध होता है।

पाठान्तर ३,

(तू तो) साँवड़ली गोरी नार, मारग बिच क्यो खडी।
(मीराँ) काँई थाँरी दूषै छै आँख कै घराँ सास लडी।
(मीरा) काँइ थाँरो पिया परदेस सदेसै यो पडी।
(तू तो) चल्यो जा रे असल गँवार, तुझे तो मेरी क्या रे पडी।
(तू तो) उड़ रे हरिया बनका सूवटा[1] तू तो उड रे द्वारिका मे जाय
साँवरिया ने कहियो ओलमा[2]।
मीराँ क्याँ पर लिखोला[3] सलाम[4], क्याँ पर तो करडा[5] ओलमा।
सूआ चूँचा पै लिखूँली सलाम परैवा[6] पै करडा ओलमा।
मीराँ ग्यारसने करो जी निहार[7] बारस ने खोलो पारनो[8]।
मीराँ तेरस ने चालै दीनानाथ, चौदस ने हरि आ मिले।
राणा थे छो म्हाँरा झूठा भरतार, साचा छै श्री हरि साँवरा।

यह पाठान्तर अन्य पदो से कुछ अलग पडता है। इसकी कुछ पक्तियाँ खडी बोली से प्रभावित है और शैली राजस्थानी लोक गीतो से। "सलाम" लिखने की जैसी अभिव्यक्ति राजस्थान के अन्य लोकगीतो मे भी मिलती है। मुगलो के विरुद्ध अपने कठिन विरोध के होते हुए भी

---

१ तोता, २ शिकायत, ३ लिखोगी, ४ नमस्कार, ५ कठिन, ६ पख, ७ निराहार, ८ व्रत।

राजपूतो की भाषा पर, वेशभूषा पर, रहन सहन पर मुगल दरबार का प्रभाव पडा था। कुछ ऐसे लोकगीतो मे जिनकी अभिव्यक्ति के आधार पर परवर्त्ती काल का कहा जा सकता है, "सलाम" लिखने की अभिव्यक्ति मिलती है। इस पाठान्तर की भाषा और शैली के आधार पर इसको भी गेय रूपान्तर मात्र ही समझना सगत होगा।

पद की अन्तिम पक्ति से व्यक्त होती भावना भी विचारणीय है। मीराँ के पदों की अभिव्यक्तियो व परम्परागत मान्यताओ दोनो के ही आधार पर मीराँ का विधवा होना प्रमाणित नही होता।

१८

सिसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो काई कर लेसी।
म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या हो माई।
राणो जी रुठ्यो वारो देस रखासी।
हरि रूठ्या कुम्हलास्यां हो माई।
लोक लाज की काण न मानूं।
निरमै निसाण घूरास्या हो माई।
राम नाम का झाझ[1] चलास्यां भव सागर तिरजास्या हो माई।
मीराँ सरण सावल गिरधर की, चरण कवल लपटास्या हो माई।
॥१८१॥

कही पद की चतुर्थ पक्ति मे प्रयुक्त "कुम्हलास्या" के बदले "कठे जास्या" "किये जास्या" या "कोठे जास्या" का प्रयोग भी मिलता है। "किथे" राजस्थानी भाषा का शब्द नही है और 'झेठे' अर्थहीन प्रतीत होता है। "कंठे जास्या" पाठ असगत भी नही ठहरता तथापि यह कहना कि "कुम्हलास्यां" या "कठे जास्या" दोनो मे से कौन पाठ प्रामाणिक है, सम्भव नही।

---

१ जहाज।

१९

राणो जी मेवाडो, म्हारो काई करसी।
म्हे तो गोविन्दरा गुण गास्या हो माय।
राणा जी रूससी गाव रखासी।
हरि रूस्या कुम्लास्या हो माय।
म्हारो तो पण चरणामत रो,
नित उठि मदिर जास्या हे माय।
मदिरया मे माधुरी मूरति निरख निरख गुण गास्या हे माय।
राणो जी भेज्या विषरा प्याला, कर चरणामृत पीस्या हे माय।
राणो जी भेज्या साप पिटारा, तुलसी की माला कर पैरा हे माय।
हाथा से करताल बजावा घूघरिया धमकास्या[1] हे माय।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणा चित ध्यास्या[2] हे माय।
॥१८२॥

२०

राणा जी मेवाडो म्हारो काई करसी।
मै रूसियो राम रिझाया ये माय।
राणो जी रूठ्या गाव रखासी,
हरि रूस्या कुम्हलास्या ये माय।
तन करताल, मना कर मोहचिग,[3]
घूघरिया धमकास्या ये माय।
राणो जी भेज्या विष को प्यालो,
कर चरणामृत पीस्या ये माय।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर,
हरि चरणा चित लास्या ये माय ॥१८३॥

---

१ बजाऊँगी, २ ध्यान करूँगी, ३ डफली।

२१

रसियो राम रिझास्या हे माय
राणो जी मेवाडो म्हारो काई करसी।
राणो रूससी गाव रखासी,
हरि रूस्या कुम्हलास्या हे माय।
गोपी चन्दन गगारी माटी,
घसि घसि अग लगास्या हे माय।
श्री तिलक तुलसी की माल,
नित उठि मदिर जास्या हे माय।
बाँध घूघरा निरत करा म्हे,
कर सूँ ताल बजास्या हे माय।
राणो भेज्यो विषरो प्यालो,
चरणामृत करि पीस्या हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर
हरि चरणा चित लास्या हे माय ॥१८४॥

पद सं० २० की द्वितीय पक्ति के पूर्वार्द्ध मे निम्नाकित पाठ भेद मिलता है, 'हरि रूठ्या मर जास्या'। इस पाठ मे भी सर्प भेजे जाने की कथा का वर्णन नही मिलता। साथ ही, वैष्णव प्रभाव का विशेष स्पष्ट हो उठना इस पाठ की विशेषता है।

२२

मेरे राणा जी मै गोविन्द गुण गाना।
राजा रूठे नगरी राखै, हरि रूठ्या कहां जाना।
राणा भेज्यो जहर पियाला अमृत कहि पी जाना।
डबिया मे काला नाग भेजिया, सालगराम कर जाना।
मीराँ बाई प्रेम दिवानी सांवलिया वर पाना ॥१८५॥

पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव विचारणीय है। सर्प भेजे जाने की कथा का भी वर्णन इस पाठ मे हुआ है। परन्तु यहाँ "नाग" का "सालिगराम" हो जाना ही सिद्ध होता है, जब कि पद स० १९ के अनुसार वही "नाग", "तुलसी की माला' मे परिवर्तित हो जाता है। "नाग" भज जाने की कथा ही प्रक्षिप्त सिद्ध होती है।

२३

राणा जी मै तो गोविन्द का गुण गास्या।
चरणामृत को नेम हमारे, नित उठि दरसन जास्या।
हरि मदिर मे निरत करास्या, घूघरिया धमकास्या।
शनम नाम का जहाज चलास्या, भवसागर तर जास्या।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निरख परख गुण गास्या ॥१८६॥

२४

राणो म्हारो कहाई कर लेसी राज, म्हे तो छोडी कुल की लाज।
पगा तो बाध्या घूघरा जी, हाथा बनावा ताल।
भो सागर म्हां रो माहिरो[1] जी, हरि चरणा सूँ प्यार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जास्या द्वारिकानाथ ॥१८७॥†

उपर्युक्त पद की अन्तिम दो पक्तियो मे निम्नाकित पाठान्तर मिलता है —

'भो सागर तुमरो जी ससुराल हरि चरणां पीहर छै जी।
मीराँ कहै जास्यां द्वारिका जी बैकुठरा बास।"

उपर्युक्त पद की अन्तिम दोनो पंक्तियो के दोनो पाठ विशेष विचारणीय है। अन्य पदो से दोनो की तुलना करने पर उनकी प्रक्षिप्तता ही इगित होती है।

---

१ पीहर।

२५

म्हारो मनडो राजी राजा जी।
काइ करैसा म्हारो दुरजन पुरजन।
काई करैला झूंठा पाजी जी।
काई करैला म्हांरो राजा राणी।
काई करैला मुल्ला काजी जी।
राम प्रीतम सुँ हिलमिल खेलूं।
परत न छोड़ू बाजी जी।
मीरॉ के प्रभु प्रात पुरबली।
तुम मत जाणो आजी[1] जी ॥ १८८ ॥

सम्पूर्ण पद विशेष विचारणीय है। "मुल्ला काजी" आदि वर्णन स पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है। पद मे प्रथम पक्ति को छोडकर हर जगह "करैला" क्रिया का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है, करेगे। केवल प्रथम पक्ति मे यह 'करैला' 'करैसा' मे परिवर्तित हो गया है। सम्पूर्ण पद की सगति देखते हुए "करैला" होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

२६

गिरधर म्हारा साचा पति छै, मै गिरधर री दासी हे माय
राणो जी म्हासू रूस रह्यो छै, कडा वचन निकासै हे माय।
राणो कहै सोरा कन माना म्हे, साध दुवारै नित आसी है माय।
मीरॉ के प्रभु सेज चढै जब, ठाढी करै खवासी हे माय ॥१८९॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

२७

गिरधर म्हारे मन भाया मोरीं माय, राणो जी म्हांरे दाय न आवै।
राणा जी म्हासे रूस रह्या छै, कूडा बचनें सुनाया।

---

१ सम्भवत इसका भावार्थ "ईस समय" हो सकता है।

गुरू कृपा से सत पधार्‌या, सता स्याम मिलाया ।
मीराँ की प्रभु आस पुजोई[1], गिरिधर सगा आया ॥१९०॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। अन्तिम पक्ति से आनन्द ही लक्षित होता है।

२८

राणो जी हट माड्यो[2] म्हासू,गिरधर प्रीतम प्यारा जी।
वो तो मद माया रो आधो, थे मत हो ज्यो न्यारा जी।
साची प्रीत लगी है तुम सूं झक मारो ससारा जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर थाने,भक्त पियारा जी।
॥१९१॥†

२९

राणा जी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारो हो,
राणा जी म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारे।
व्यापक होय रह्यो घट घट में, है सब ही से न्यारे।
सबको सरजण हारो, अन्तर घट की सबही जाणे।
आप तो भेज्या विषरो प्याला दे मीराँ ने मारो।
कर चरणामृत पी गई जी, गिरधर संकट टारो।
जनम जनम रो पति परमेश्वर राणी जी कोन विचारो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, साचो बसंरी वारो ॥१९२॥†

३०

निन्दा म्हारी भलाई करो नै सोने काट न लागै
जोग लियो जग जातौ देख्यौ हरि भजवा के काजै।

---

१ परिपूर्ण की, २ बनाया, यहाँ होगा जिद्द की ।

जो कोई करणी मे चूक पडै तो सतगुरु म्हारा लाजै।
धन रे लोक थांरी करणी कीडी रो कुजर बरगायो।
अण दीठी अण सामलेरे, वद वद बाद उठायौ।
कुल कूँ छाडि कडूबो छाड्यो छॉडी ममता भाई।
और दुनिया को दावो छोड्यो मन मरवै ज्यूँ कहियौ।
यो जस मीरॉबाई गावै ज्यूॅ कहीयौ ज्यौ सहीयौ ॥१९३॥†

३१

तुलसा की माला हिवड लागी जी "मेवाड राणा" राम ताण गुण गास्या।
लिख पत्तर राणूँ मीरॉ नै भेज्या सग साध पिस्तास्यो जी।
लिख रे पत्तर मीरा राणा जी नै भेज्या साधूडा सग सुख पास्यां जी।
बिसरा पियाला राणा जी भेज्या पिवतां पिवता म्हानै आवै हासी जी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर हरि चरणां मे चितल्यास्या जी ॥१९४॥†

पदाभिव्यक्ति का प्रथम अर्द्धांश अन्य पुरुष मे है, जब कि द्वितीय अर्द्धांश प्रथम पुरुष मे है। अत पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है। मीरॉ और राणा द्वारा एक दूसरे को पत्र भेजे जाने की अभिव्यक्ति और भी पदो में मिलती है।

३२

मेड़तिया रा कागद आया, बाई मीरॉ ने जा खीज्यो[1] जी।
भोहत[2] भात से लिख्या ओलमा, कुल कै दाग[3] मति दीज्यो जी।
साधा को सग परो निवारो, वेद साख[4] सुण लीज्यो जी।
मीरॉ प्रभु को संग छाड़्यो, पति आज्ञा मे रीज्यो जी ॥१९५॥†

---

१ नाराज होना, २ बहुत, ३ कलक, ४ साक्षी।

पद विशेष महत्वपूर्ण है। यह एक ही पद ऐसा है जिसमे "मेडतिया रा कागद" (मेडतिया के यहाँ से आया हुआ पत्र) का वर्णन है। इस पद के आधार पर मीराँ का सधवा होना ही प्रामाणित हो जाता है। पद का किसी अन्य व्यक्ति द्वारा कहा जाना भी अभिव्यक्ति से ही सुस्पष्ट हो उठता है। अत ऐसे पदो की प्रामाणिकता की विशेष विवेचना आवश्यक है।

३३

हो जी हा सिसोद्या राजा मनडो वैरागी धन[१] रो क्या करू।
जहर का प्याला राणा जी भेज्या कोई द्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत मीराँ पी गई कोई आप जाणो रघुनाथ।
साप पिटारा राणा जी ने भेज्या कोई द्योने मीराँ ने जाय।
कर खग वालो पहिरयो कोई आप जानो दीनानाथ।
राणा जी दासी भेज्या कोई जावो ने मीराँ पास।
मर गया होय तो जला दीज्यो नातर नदी मे बहाय।
हो जी हो सिसोद्या राजा मनडो, वैरागी धन रो क्या करू।

॥१९६॥

राणा जी द्वारा मीराँ के पास दासी भेजे जाने की सर्वथा नवीन कथा ही इस पद की विशेषता है। कथानक की प्रामाणिकता सर्वथा सदिग्ध होते हुए भी राणा और मीराँ के पारस्परिक सबध के प्रति चली आती परम्परागत भावना सुस्पष्ट हो जाती है। पद की शैली वर्णनात्मक ह। अस्तु, यह पद तत्कालीन भावनाओ का प्रतिबिम्ब ही कहा जा सकता है।

३४

राणौ म्हांने ऐसी कही महाराज।
भक्तन[२] होय मीराँ जगत लजायो,कीन्हों सारो साज।

---

१ स्त्री। २ विशेष उत्सव के अवसरो पर नाचने गाने वाली एक निम्नजाति विशेष की स्त्री जो 'भगतन' के अर्थ मे रूढ़ि वाचक हो गया है।

जावो ने मीराँ म्हाने मुख न दिखावो, म्हाने आवै थारी लाज।
लाजै मीराँ पीहर सासरो, और लाजै म्हारो साज[1]।
गोपी चन्दन तुलसी की माला, भीख मागत्यारो[2] साज।
धन मीराँ धनि मेड़तो, धनि राठोडारो राज।
मीराँ के प्रभु अविनासी, चलि आयो व्रजराज ॥१९७॥†

३५

राणा जी हो जाति रो कारण म्हारे को नही
लागो म्हांरो हरि भगतां सूँ हेत।
बिदुर कुला घरि जनमिया ज्या कै पावणा हुवा गोपाल
वदि छुडाई बसुदेव की कंस कियो खो काल।
पाचू पाडू छटी द्रोपदी ज्या की न्यारी न्यारी जात,
सहस अठ्यासी मुनि आविया जाकी पण राखी रघुनाथ।
वन में होती स्योरी भीलणी ज्यांहका ओरग्य[3] ठाकुर बोर।
ऊच नीच हरि ना गिणै ऐसी म्हारा हरि भगतां की कोर।
येक बेल दोय तूँबड़ा ज्याहूँ की छै न्यारी न्यारी जात,
एक तूँबो जतर[4] चढ़ै, दूजो हरि भगता कै हाथ।
सख समदा[5] नीपजै ज्याहू की न्यारी न्यारी जात,
एक सख सेवा[6] चढै दूजौ भो पडता के हाथ।
एक माटी दोय कलस है ज्याहूँ की न्यारी न्यारी जात,
एक कलस सेवा चढै दूजो कलाला रै हाथ।
कलक कटोरे विष घोलियो दियो मीराँ के हाथ,
हरि चरणोदक करि पी लियो हरि जी भयो सुनाथ।
सब मिलि मत उपाइयौ मीराँ नै विष द्यौहा कहियौ,
| सुण्यो मानै नाहि नीच लग्यो हठ योह।

---

१ वभव, ठाठ, २ माँगने वालो का, ३ खाया, ४ वाद्य-यत्र
५ समुद्र, ६ पूजा।

नगर बसै बामण बाणिया भीतर शुद्र पवार,
मुहुँ मोडे मुलबया हसे समझे नही गवार।
गढ चितौडा न रहा नही रहणा को जोग,
बसस्या सूडी द्वारिका जहाँ हरि भगता का भोग।
परख लेत परचो भयो मन उपज्यो विस्वास,
सिर पर सिरजन हार रहै पूगी म्हा मन की आस।
कुम्भ श्याम के देवरे मिली है राणौ राणूँ,
मीराँ ने गिरधर मिलिया कोई पूरबली पहिचाण।
॥१९८॥†

पदाभिव्यक्ति के प्रथम और द्वितीय अर्द्धांशो मे कोई सगति नही बैठती प्रतीत होती। मीराँ द्वारा किए गए गृहत्याग का कारण भी अति स्पष्ट हो उठता है। कुम्भश्याम के मदिर के साथ मीराँ के जीवन की किसी घटना का सम्पर्क भी उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति से स्पष्ट हो उठता है। ऐसी अभिव्यक्ति इस पद की नवीनता है। इस पद की शैली भी वर्णनात्मक ही है।

३६

प्रभु जी अरज बन्दी री सुण हो।
मो निगुणी ए सुगुण साहब अवगुण धारी ए गुण हो।
राणा जी विष को प्यालो भेज्यो मो चरणामृत को पण हो।
म्हारी पत परमेश्वर राखत, मारण वालो कुण हो।
प्रभु जी उचले[1] मदिर (सीतारामजी) बिराजे दरसण रोयण हो
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मै जाणु प्रभु जी कुण हो।
॥१९९॥

पदाभिव्यक्ति में संगति नही है।

---

१ ऊँचे।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

म्हारे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारे काई करसी।
मीरॉ सूँ राणा ने कही थे, सुण मीरॉ मोरी बात।
साधो की सगत छोड हो रे, सखिया सब सकुचात।
मीरॉ ने सुन यो कही रे, सुण राणाजी बात।
साध तो भाई बाप हमारे, सखियाँ क्यूँ घबरात।
जहर का प्याला भेजिया रे, दीजो मीरॉ हाथ।
अमृत कर के पी गई रे, भली करें दीनानाथ।
मीरॉ प्याला पी लिया रे, बोली दोऊ कर जोड।
तै तो मारण की करी रे, मेरी राखणहारो और।
आधे जोहड कीच है रे, आधे जोहड हौज।
आधे मीरॉ एकली रे, आधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डाल करे सील लिए हथियार।
जीती मीरॉ एकली रे, हारी राणा की धार।
काचागेरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिनमे मीरॉ ऐसी दमके रे, लख तारो मे परकास।
टाडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली हे पुष्कर न्हाण ॥२००॥†

अधिकाश सघर्ष द्योतक पदो की तरह यह पद भी वर्णन और कथनोपकथन दोनो ही शैलियो मे है। "काचगिरी का चोतरा" का वर्णन इस पद के महत्व को विशेष रुपसे बढा देता है। "पुष्कर न्हाण" की अभिव्यक्ति प्राय. अन्य पदो मे भी मिलती है।

२

राणा जी थे जहर दियो म्हें जाणी।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारह बाणी।

लोक लाज कुल काण[1] जगत की, दइ बदाय जस पाणी।
अपने घर का परदा कर ले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लाग्यो मेरे हिय रे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारो, चरण कवल लपटाणी।
मीरां के प्रभु राखि लई है, दासी अपनी जाणी॥२०१॥

पाठान्तर १,

राणा जी जहर दियो हम जानी।
जानबूझ चरणामृत सुन के पियो, नही बौराणी।
जिन हरी मेरी नाव निवेरियो, छान्यो दूध अरु पानी।
कचन असत कसौटी जैसे, तन रह्यो बारह बानी।
राणा कोट करु न्योछावर, मै हरि हाथ बिकानी।
मीरां प्रभु गिरिधर नागर, के चरण कवल लिपटानी।

पाठान्तर २,

राणा जी जहर दियो हम जानी।
अपने कुल को परदा कर ले, मै अबला बौराणी।
राणा जी परधान पठायो, सुन जो जी थे राणी।
जो साधन को सग निबरो, करा तुमे पटराणी।
हथलेवी राणा सग जुड़ियो, गिरधर घर पटराणी।
क्रोड भूप साधन पर वारुं, जिन की सरण रहाणी।
मीरां को पति एक रमैया, चरण कवल लपटानी।

पाठान्तर ३,

जहर दियो म्हे जाणी।
राणा जी थे तो अपने कुल को परदो कर ले मै अबला बौराणी।

---

१ मर्यादा।

साधा रो सग परो निवररो, थाने करा पटराणी।
कोट भूप वारा सतन पर, जिनके हाथ बिकाणी।
हथलेवा मै थास्यूँ जोडयो, गिरधररी पटराणी।
पीहर म्हारो देस मेडतो, छाडी कुल की काणी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कवल लिपटानी।

उपर्युक्त दोनो पाठान्तर एक दूसरे के गेय रुपान्तर मात्र प्रतीत होते है।

सभी पाठो से व्यक्त होती भावना "अपने घर का परदा कर ले, मै अबला बौराणी" भाव और भाषा दोनो ही दृष्टिकोण से विशेष विचारणीय है। दूसरी विचारणीय अभिव्यक्ति है "हथलेवी राणा सग जुड़ियो, मै गिरधर पटराणी" जो सभी पाठो मे मिलती है। यह पद और उसके सभी पाठान्तर भाव और भाषा दोनो ही दृष्टिकोण से विशेष रूप से विचारणीय है।

३

म्हारा नटनागर गोपाल लाल बिन, कारज कौन सुधारे।
घूम रह्यो दुरयोधन राजा, जैसे गज मतवारो।
सिह होय केर हस्ती[1] मारे, बड़ो भरोसो थारो।
मीराँ ने राणा जी बरजै, मतना जनम बिडारे[2]।
थे सगत साध की सीख्या, मत आयो महल हमारे।
म्हे सगत साध की सीख्या, थांरे कछुय[3] न सारे[4]।
तन मे रीस भई राणा के, उठ खडग ले मारे।
प्याला मे विष घोल राणा जी, मन मे कपट बिचारे।
अमृत कर के मीराँ पी गई, जहर सावरो झारे।
जब जब पीड परी भक्तन पर, आप ही कृष्ण पधारे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि भक्ताने न्यारे ॥२०२॥†

१ हाथी, २ व्यर्थ खोना, ३ जरा भी, ४ सहारे।

"मीराँ नें ˙ ˙ ˙ न सारे" जैसी तीन पक्तियाँ कथोपकथन शैली मे लिखी गयी है । शेष सम्पूर्ण पद वर्णनात्मक शैली मे है । अन्तिम पक्ति अर्थ हीन है ।

४

राणो म्हांरो काई करिहै, मीराँ छोड दई कुल लाज ।
विष को प्यालो राणाजी ने भेज्यो, मीराँ मारन काज ।
हँस के मीरा पाय गई है, प्रभु परसाद पर राग ।
डब्बो खोल मीराँ जब देख्यो, है गये सालिगराम ।
जै जै धुनि सब सत सभा भई, कृपा करि घनश्याम ।
सजि सिगार पग बाँध घूँघरू, दोऊ पर देती ताल ।
ठाकुर आगे नृत्य करत ही, गावत श्री गोपाल ।
साध हमारे हम साधन के, साध हमारे जीवन ।
साधुन मीराँ मिलि जा रही है, जिमि माखन मे घीव ॥२०३॥†

प्रथम पक्ति के अतिरिक्त जो कथनोपकथन की शैली मे है, सम्पूर्ण पद वर्णनात्मक शैली मे है ।

५

मेरो मन हरिसूँ जोर्‌यो, हरि सूँ जोर्‌यो सकल सूँ तोर्‌यो ।
मेरी प्रीति निरन्तर हरि सूँ, ज्यूँ खेलत बाजीगर गोर्‌यो ।
जब मै चली साध के दरसण कूँ, तब राणा मारण को दोर्‌यो ।
जहर देन की घात विचारी, निरमल जल मे ले विष घोर्‌यो ।
जब चरणोदक सुण्यो सखणा[1], राम भरोसे मुखमे ढोर्‌यो ।
नाचन लागी तब घूँघट कैसो, लोक लाज तिणका ज्यूँ तोर्‌यो ।
नेक बदी हूँ सिर पर धारी, मन हस्ती अकुस दे मार्‌यो ।
प्रकट निसान बजाय चली मै, राणा राव सकल जग जोर्‌यो ।
॥२०४॥†

---

१ कानो से ।

सम्पूर्ण पद में मीराँ का नाम या ऐसी कोई अभिव्यक्ति, जिसव आधार पर पद मीराँ रचित होना स्पष्ट हो सके, नही है।

६

यो तो रग धत्ता लाग्यो ए माय।
पिया पियाला अमर रस का, चढ गई धूप घुमाय।
या तो अमल म्हारे कबहूँ न ऊतरे, कोटि करो उपाय।
सांप पिटारो राणा जी भेज्यो, द्यो मेडतणी गल डार।
हँस हँस मीराँ कठ लगायो, यो तो म्हारे नौसर हार।
विष को प्यालो राणा जी भेज्यो,द्यो मेड़तणी प्याय।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविन्दरा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रग सुहाय।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, काची रंग उड जाय।

॥२०५॥†

प्रथम पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है —
"यो तो रग म्हारे श्यामसुन्दर को जनम जनम नहि जाय।"

पाठान्तर १,

किण विध कहूँ, कहण नही आवै, रह्यो घुमाय घुमाय।
गुरु प्रताप साध री सगत, हरिजन मिलिया आय।
किरपा करो तो प्रभु जी ऐसी कीज्यो, दूजी नाही सुहाय।
राणा जी विषरा प्याला भेज्यो, म्हे सिर ल्यो चढाय।
चरणामृत को जब लीनो पीगी प्रेम अघाय।
पीवत ही अति चढी खुमारी, रह गई कहत सुमाय।
जिन मीराँ की पनवारी कीन्ही, पूरब जनम के भाय।

पाठान्तर २,

किंण विध कहूँ कहण नही आवै, चढ्यो घुमाय।
गुरु प्रताप साध री सगत, हरिजन मिलिया आय।

किरपा करि मोहि अपनाई, सब दुख दियो मिटाय।
राणा जी विषरा प्याला भेज्यो, म्हे सिर लियो चढाय।
चरणामृत को नामज लीनो पीगी प्रेम बहाय।
पीवत ही अति चढि खुमारी अब थिर रह्यो न जाय।
जिन मीराँ मनवारी कीन्ही, पूरब जनम के भाय।

पद के तीनो ही पाठो पर सत मत का प्रभाव दृष्टिगत होता है। यह प्रभाव पहले और दूसरे पाठान्तरो पर कुछ विशेष स्पष्ट हो जाता है। पहले और दूसरे पाठान्तरो मे 'जिन मीराँ' का प्रयोग भी विचारणीय है। राजस्थानी गेय परम्परा के अनुसार लय संगति के हेतु जिण शब्द का जिन हो जाना स्वाभाविक है।

७

गिरधर के मन भाई हो राणा जी।
लोकलाज कुल की मरजादा, मै तो छोडी है सकल बड़ाई।
पूरब जनम की मै तो गोपिका चूक पडी मुझ मांही।
जगत लहर व्यापी घट भीतर दीनी हरि छिटकाई।
जैमल के घर जनम लियो है राणा ने परणाई।
भोग रोग होय लागा मोरी सजनी गति प्रगट होय आई।
मात पिता सुत बाधव भाई, या सब झूठी सगाई।
परम सनेही प्रीतम प्यारो, जासूँ मै प्रीत लगाई।
जो थे पकडोरा हाथ हमारो तो खबरदार मनमाही।
देवगी सराप मै साचां मन सूँ, कल जल भसम होय जाई।
जनम जनम की दासी राम की थांरी नही लुगाई।
थारे मारे[1] फीरो सो[2] सगपण[3] गावै मीराँबाई ॥२०६॥ †

अभिव्यक्ति के आधार पर ही पद की प्रमाणिकता विशेष रुपेण संदिग्ध है। "जैमल घर जन्म लियो है" जैसी अभिव्यक्ति का कोई

---

१ म्हारे राजस्थानी के अनुसार शुद्ध है, २ फीरोसो (फिरोसो) हलका सा, ३ सम्बन्ध।

ऐतिहासिक आधार अद्यावधि प्राप्त नही। कुछ विद्वानो के मतानुसार मीराँ जैमलकी ही पुत्री ठहरती है, परन्तु इस पहलू के समर्थन मे पर्याप्त प्रमाण नही मिलते है। पद की छठी पक्ति मे अर्थ सगति का अभाव है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

माई री मे सावळिया जान्यो नाथ।
लेन परचो अकबर आयो, तानसेन ले साथ।
राग तान इतिहास श्रवन करि, नाय नाय सिर माथ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कीन्ह्यो मोहि सनाथ ।।२०७।।

तानसेन को साथ लेकर मीराँ के पास अकबर के आने की जन-श्रुति है। परन्तु सामग्री के आधार पर ऐतिहासिक दृष्टिकोण से ऐसा होना सम्भव नही। अस्तु, जब तक ऐसे पदो के समर्थन मे कोई विशेष प्रमाण न मिले इनको प्रक्षिप्त मान लेना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

२

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय।
साप पेटारा राणा भेज्या, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अचाय।
सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीरा सुलाय।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे विधन हटाय।
भजन भाव मे मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय ।।२०८।।†

"सूल सेज . . सुलाय" के बाद निम्नांकित एक और पक्ति भी कही कही मिल जाती है।

"साझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।"

"सूल सेज" भेजे जाने की कथा का वर्णन इस पद की विशेषता है।

सम्पूर्ण पद की शैली वर्णनात्मक है। अत· यह कहा जा सकता है कि किसी अन्य व्यक्ति ने मीराँ की प्रशसा मे यह पद लिखा है।

खड़ी बोली में प्राप्त पद

१

तेरा मेरा जिवडा यक कैसे होय राम।
हमने कहा सुरझावन राणा, तुम जाने मुरझाय राम।
हमने कहा निर्मोहित रहना, तुमतो जान मोहाय राम।
तेल जले तो जलती है बाती, दिवरा झलमल सोय राम।
जल गया तेल रे बुझ गई बाती, लच्चर लच्चर होय राम।
हमने कहा आंखिन का देखा, तुम कानों सुनि सोय राम।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, होनहार सो होय राम। ॥२०९॥†

पदाभिव्यक्ति मे संगति का अभाव है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

आदि वैरागण छुँ राणा जी मै आदि वैरागिण छुँ।
मीराँ बाध घूघरा रे, हाथ लिये करतार। \5
अमोरे गिरधर आगे नाची सुँरे, गुनगाई सुँ रे गोपाल।
विषना प्याला राना मोकलियो रे, दीज्यो मीराँ के हाथ।
कर चरणामृत पी गया रे, अमोरे बासी श्री रघुनाथ ॥२१०॥†

२

आज मोरे साधु जन नो सगेरे, राणा, मारा भाग्य भला रे।
साधु जननो सग जो करिये, पिया जो चढे ते चौगुणो रग रे।
साक्ट जन नो सग न करिये, पिया जी पाड़े भजन मे भग रे।

अड़सठ तिरथ सतो ने चरणे, पिया जी, कोटि काशी ने कोटि गंगरे।
निन्दा करसे तो नरक कुड मा जशे, पिया जी, थशे आधला अपगरे।
मीरॉ कहै गिरधर ना गुण गायो, पिया जी, सतोनी रझमा शीरसगे रे।
॥२११॥

३

मै तो छाडी छाडी कुल की लाज, रगीलो राणा काई करसे माणा राज।
पाव मे बाधूगी घुँघरा, हाथ मे लेऊंगी सितार।
हरि के चरणो आगे नाचती रे, काई रीझेगो करतार।
जहेर को प्यालो राणा जी भेज्यो, धरियो मीरॉबाई हाथ।
करि चरणामृत पी गई रे श्री ठाकुर को परसाद।
राणा जी ये रीस करी भेज्यो, झेरी नाग असार।
पकड गले बिच डालियो, कांई हो गयो चन्दन हार।
मीरॉ को गिरधारी मिलिया, जनम जनम भरतार।
मै तो दासी जनम जनम की, कृष्ण कत सरदार ॥२१२॥†

४

गोविन्दो प्राणो अमारो रे, मने जग लाग्यो खारो रे। गोविन्द।
मने मारो राम जी भावे रे, बीजो मारै नजरो न आवै रे। ,,
मीरॉ बाई मॉ महल मा रे, हरि संतन नो वास। ,,
कपटी थी हरि दूर बसे, मारा सतन केरी पास। ,,
राणा जी कागज मोकले रे, दो राणी मीरॉ ने हाथ। ,,
साधुनी सगत छोड़ि दो, तमो वसो नी अमारे साथ। ,,
मीराँ बाई कागज मोकले रे, दीजो राणा जी ने हाथ। ,,
राज पाट तमे छोड़ी राणा जी, वसो साधु ने साथ। ,,
विष नो प्यालो राणो मोकलिया रे, पीजो मीरॉ ने हाथ। ,,
अमृत जानी मीरा पी, जे ने सहाय श्री विश्वनाथ। ,,
साढ़वाला साढ़ शनगारजे रे, जावुँ सो सो रे कोश। ,,

राणा जी ना देशमा मारे जलरे पीवा नो दोशँ। ,,
डाबो मैल्यो मेवाड रे, मीराँ गई पश्चिम माय। ,,
सरब छोड़ी ने मीराँ नीसयो, जेयुं भायामा मनहु न काय। ,,
सासु अमारी सुषमणा रे, ससरो प्रेम सन्तोष। ,,
जेठ जगजीवन जगत मा, भारो नावलियो निर्दोष। ,,
चूँदड़ी ओढ़ूँ त्यारो रंग चुवे रे, रग बेरंगी होय। ,,
औढ़ूँ छुं कालो कामलो, दूजौ दाग न लागे कोय। ,,
मीराँ हरिणी लाडली रे, रेहती संत हजूर। ,,
साधु संघाते स्नेह घणो, पेला कपटी थी दिल दूर॥२१३॥†

उपर्युक्त पद राजस्थानी मे प्राप्त संघर्ष द्योतक विभिन्न पदो के विभिन्न अशो का सम्मिश्रण ही प्रतीत होता है। पद के उत्तरार्द्ध से सत मत का प्रभाव स्पष्ट है। इसी तरह की अभिव्यक्ति अन्य सत मत प्रभावद्योतक पदो मे भी मिलती है।

५

म्हांरे सिर पर सालिगराम, राणाजी म्हारे काई करसी।
मीराँ सूँ राणा ने कही रे, सुण मीराँ मोरी बात।
साधो की संगत छोड़ दे रे, सखियां सब सकुचात।
मीराँ ने सुन यो कही रे, सुन राणा जी बात।
साध तो माई बाप हमारे, सखियां क्यूँ घबरात।
जहर का प्याला भेजियारे, दीजो मीराँ हाथ।
अमृत कर के पी गई रे, भली करैं दीनानाथ।
मीराँ प्याला पी लियारे, बोली दोउ कर जोर।
तैं तो मारण की करी रे, मेरो राखणहारो और।
आधे जोहड़ कीच है रे, आंध जोहड हौज।
आंध मीराँ एकली रे, आंधे राणा की फौज।
काम क्रोध को डालकेर, सील लिए हथियार।

जोती मीरॉ एकली रे, हारी राणा की धार।
काचगिरी का चौतरा रे, बैठे साध पचास।
जिन मे मीरॉ ऐसी दमके, लख तारो मे परकास।
टाडा जब वे लादिया रे, बेगी दीन्हा जाण।
कुल की तारण अस्तरी रे, चली है पुष्कर न्हाण ॥२१४॥

पद की शैली और अभिव्यक्ति ही पद को प्रक्षिप्त सिद्ध करती है। पद का प्रारम्भ होता है दृढ विश्वास की अभिव्यक्ति से, परन्तु दूसरी ही पक्ति मे भावना बदल जाती है। चार पक्तियो में राणा और मीरॉ के बीच संवाद है। संवाद की अभिव्यक्ति विरोधमय है। शेष पदाश से मीरॉ का गहरा सघर्ष और दृढ भक्ति भावना की ही प्रशस्त अभिव्यक्ति होती है। अन्तिम दोनो पक्तियॉ घटनाद्योतक है जिनसे मालूम होता है कि "कुल की तारण अस्तरी" मीरॉ पुष्कर नहाने के लिए जा रही हैं।

—०—

मिलन और बधाई

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

म्हारा ओलगिया[1] घर आया जी।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मगल गाया जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणंद आया जी।
मगन भई मिलि प्रभु आपणा सूँ, मै कर दरध मिटाया जी।
चंद को देखि कमोदणि फूले, हरखि भया मेरी काया जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल[2] सिधाया जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया जी।
मीराँ बिरहणी सीतल होई, दुख द्वन्द दूरी नसाया जी ॥२१५॥

२

सहेलिया साजन घर आया हो।
बहोत दिना की जोवती[3], बिरहिन पिव पाया हो।
रतन करु नेछावरी, ले आरति साजू हो।
पिया का दिया सनेसड़ा[4], ताहि बहोत निवाजू हो।
पांच सखी इक्ट्ठी भई, मिलि मगल गावै हो।
पिय की रली[5] बधावणा आंणन्द अंगि न मावै[6] हो।

---

१ परदेश रहता प्रियतम, २ अभिसार के लिये नियुक्त कक्ष विशेष के लिये रुढ़िगत मुहावरा, ३ प्रतीक्षा करती, ४ सदेश, ५ मलगमय, ६ समाये।

हरि सागर सू नेहरो[१], नैणा बांध्यो सनेह हो।
मीराँ सखी के आंगणै, दूधां बूठा[२] मेह हो ॥२१६॥

पद पर सतमत का प्रभाव स्पष्ट है। "मीराँ सखी' का प्रयोग सर्वथा नूतन है। अत्युक्ति न होगी यदि कहा जाय कि यही एक पद ऐसा है जिसमे इस तरह का प्रयोग मिलता है। पद की चतुर्थ पक्ति की अभिव्यक्ति शेष पदाभिव्यक्ति के विरुद्ध पडती है क्योकि उपर्युक्त पक्ति से वियोग ही लक्षित होता है। छठी पक्ति मे "प्रिय की लीनी 'बधावणा' प्रयोग है। राजस्थानी की परम्परा पर दृष्टि रखते "प्रिय का रली बधावणां" पाठ ही शुद्ध ठहरता है।

३

रामजी पधारे धनि आज री घरी।
आज री घरी वो भाव री भरा।
गुरु रामानद अर माधवाचारन, नीमानन्द बिसर स्याम हरी।
आजि मेरो आगण सुहावणूँ, रसण लागे पी पेम हरी
अरसि परसि मिलि हरिगुण गास्या, धनि मेरी इर्षा इन भाव भरी
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, पकडि पावौ विधाता पेम हरी ॥२१७॥

अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। पाँचवी और अन्तिम पक्तियो के उत्तरार्द्ध अर्थहीन प्रतीत होते है। 'गुरु रामानन्द माधवा चारेन और नीमानन्द के आगण मे आने की अभिव्यक्ति प्राप्त सामग्री के आधार पर सगत सिद्ध नही होती।

४

राम सनेही सावरियो, म्हांरी नगरी में उतर्‌यो आइ।
प्राण जाय पणि[३] प्रीत न छाड़ूँ, रहौ चरण लपटाय।

---

१ प्रेम, २ बूठाँ-मेह—दूध की वर्षा से भर गया, उत्साह और आनन्द से परिपूर्ण हो गया, ३ तथापि।

सपत[1] दीप की दे परकरमा, हरि हरी मे रहौ समाय।
तीन लोक झोली मे डारै, धरही तो कियो निपान[2] ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रहौ चरण लपटाय ।।२१८।।

प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त 'राम सनेही' प्रयोग विचारणीय है। पद की तृतीय पक्ति से सतमत की भावना ही स्पष्ट हो उठती है जब कि शेष पद मे वैष्णव प्रभाव ही लक्षित होता है। यह भी विचारणीय प्रश्न है।

५

गिरधर आवणा है ऊदाँबाई लेजडली संवार ।
आवण री बिरिया[3] भई जी, अब महलां ढोल्यो[4] ढार।
अँतर[5] सुगंध मिलाय के जी, घी भर दिवला बार ।
जाई जुही केतकी जी, चपा कली सुधार ।
पलकां सू करां पावडाजी, अंचला सू मग झार ।
गिरधर म्हारो परम सनेही गिरधर उनकी नार ।। २१९ ।।

निम्नांकित दो पंक्तियाँ और भी मिलती है .

पुष्पन सो झोली भरी, रुचि रुचि सेज संवारि।
चारुं दिस फिरती फिरै, ऊदाँ चमेली लार[6] ।

अद्यावधि प्राप्त पदों से मीराँ के प्रति ऊदाँ का विरोध भाव ही लक्षित होता रहा है। यही एक पद भक्ति के क्षेत्र मे मीराँ और ऊदाँ की निकटता का द्योतक है।

६

म्हांरे आज रगीली रात, मनडरा म्हरम आइया।
या छिब निरखण सुगन[7] मनावण, अतर सुगध लगावण।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मन अंछया[8] बर पावण। ।।२२०।।

---

१ सप्त, २ नाप दिया, ३ समय, ४ अतिथि अभ्यागत के लिये बनाए गए छोटे पलग, ५ इत्र, ६ पीछे, ७ सगुण, ८ इच्छित।

७

रे सांवलिया म्हारे आज रगीली गणगोर छै जी।
काली पीली बादली मे बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर छै जी।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल कर रही शोर छै जी।
आप रंगीली, सेज रंगीली, और रगीली सारो साथ छे जी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चंरना मै म्हांरो जोर छै जी।
॥२२१॥†

गणगोर (शिवपार्वती) का उत्सव मनाने की अभिव्यक्ति के कारण पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है। विस्तृत विवेचना के लिये देखे, 'मीरा, एक अध्ययन' आलोचना खड।

८

म्हाके जी गिरधारी, थासूँ म्हे बोले।
थे तो म्हौरा जनम जनम रा सगी, थारे लारे लारे[१] सग मे डोले हो।
आदि तन मन धन मेरे, आनन्द करा कलोले[२]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आन मिल्यो अनमोले ॥२२२॥†

पदाभिव्यक्ति अर्थहीन है।

---

१ पीछे-पीछे, २ किल्लोल।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद।

१

तनक हरि चितवौ जी मेरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नही, दिल के बडे कठोर।
मेरो आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर।
तुम से हमकू कबर मिलोगे, हमसी लाख करोर।
उमी ठाढी अरज करत हू, अरज करत भयो मोर।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, देस्यूँ प्राण अकोर॥२२३॥†

आराध्य के निकट रहते हुए भी न बोलने की अभिव्यक्ति एक और पद मे भी मिलती है, यद्यपि इस पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

'बृहदाग रत्नाकार' मे निम्नांकित पद प्राप्त है जिसकी प्रथम दो पक्तियाँ उपर्युक्त पद की प्रथम दो पंक्तियो से हूबहू मिलती है। बहुत सम्भव है कि कृष्णप्रिया का ही यह पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है।

तनक हंस हेरो मेरी ओर।
हम चितवत तुम चितवत नाही, काहे भई हो कठोर।
निस दिन तुमरो ही नाम रटत हो, चातक ज्यो घनघोर।
कृष्णाप्रिया दर्शन के लोभी, जेसे चन्द्र चकोर।
(पद २५७, पृष्ठ ७१,)

२

आज सखी मेर आनन्द भयो है, घर मे मोहन लाधोरी।
बन जोईं वृन्दावन जोईं, जोईं बिरज सब बाधोरी।
सतवे मलिये अजब झरोखे, कही ते हरि जी लाधोरी।
म्हारा तो घर में मही घनेरी, हरी चोर चोर दधि खाधोरी।

अपने द्वार मै कब की ठाढी, बाह पकरि हरि साधोरी ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिलियो बिरह बाजन बाधोरी।
॥२२४॥†

असंगत अभिव्यक्ति के आधार पर पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है।

उपर्युक्त दोनो पदो की भाषा प्रधानत. ब्रजभाषा है यद्यपि कुछ ठेठ राजस्थानी शब्दों का प्रयोग भी है।

३

आण मिल्यो अनुरागी (गिरधर) आण मिल्यो अनुरागी।
सांसो[1] सोच अंग नहि, अब तो तिस्ना[2] दुबध्या[3] त्यागा।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, स्याम बरण[4] बड भागी।
जनम जनम के साहिब मेरो, वाही से लौ लागी।
अपण पिया सग हिलमिल खेलूँ, अधर सुधारस पागी।
मीराँ के गिरधर नागर, अब के भई सुभागी ॥२२५॥†

पदाभिव्यक्ति से सतमत और वैष्णव मत दोनो का ही प्रभाव इगित होता है।

---

१ सशय, २ तृष्णा, ३ दुबिधा, ४ वर्ण।

ब्रज भाषा में प्राप्त पद

१

बदला रे तू जल भरि ले आयो।
छोटी छोटी बूदन बरसन लागी, कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अबर बदरा छायो।
सज सवारी पिय घर आये, हिलमिल मगल गायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग भलो जिन पायो। ॥२२६॥

२

नन्द नन्दन बिलमाई, बदरा ने घेरी माई।
इत घन लरजे, उत घन गरजे चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़ घुमड चहुँ दिसी से आया, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोले, कोयल सबद सुनाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल चितलाई। ॥२२७॥

पाठान्तर १,

चित नन्दन बिलमाई, बदराने घेरी भाई।
इत घन लरजै, उत घन गरजै, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़ घुमड चहुँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई।
विरहनि तेरी प्राण डरत है, दाधी बेल सिचाई।
मीराँ के प्रभु दर्शन दीजै, प्राण रखौ सरणाई।

तृतीय पक्ति के उत्तरार्द्ध का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त है।

'माण रहत मोकू।'

एक ही पद के दो पाठान्तर दो विभिन्न भावो के द्योतक है, यह विचारणीय ह। पाठान्तर की तृतीय पंक्ति का अर्थ स्पष्ट नही होता।

३

मेहा बरसवो करे रे, आज तो रमियो मेरे घर रे।
नान्ही नान्ही बूद मेघ घन बरसे, सूखे सखर भरे रे।
बहुत दिना पै पीतम पायो, बिछुरन को मोहि डर रे।
मीराँ कहै अति नेह जुडायो, मै लियो पुरबालो बर रे। ॥२२८॥

पद की द्वितीय पक्ति में 'मेघ' और 'घन' दोनो पर्यायवाची शब्दो के प्रयोग से पुनरुक्ति हुई है।

४

देखी बरषा की सरसाई, मेरे पिया जी के मन आई।
नान्ही नान्ही बूंदन बरसन लाग्यो, दामिनी दमके झरलाई।
स्याम घटा उमडी चहुँ दिसी सो, बोलत मोर सुहाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर आणन्द मगल गाई। ॥२२९॥

५

रग भरी रग भरी, रग सूँ भरी री,
होली आई प्यारी रग सूँ भरी री।
उडत गुलाल लाल भये बाहर,
पिचकारिन की लगी झरी री।
चोवा चन्दन और अरगजा,
केसर गागर भरी धरी री।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर,
चेरी होय पायन मे परी री ॥२३०॥

६

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल।
मोहनि मूरत सावरि सूरत, नैणा बने विसाल।
अधर सुधारस मुरलि राजति, उर बैजन्ती माल।

छुद्र घटिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल ।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वच्छल गोपाल ॥२३१॥

पदाभिव्यक्ति से बालकृष्ण का वर्णन ही स्पष्ट होता है, जो मुग्धा नारी के लिय सगत नही प्रतीत होता। देखे 'मीरा', एक अध्ययन।'

'बृहदाग रत्नाकर' मे निम्नाकित पद प्राप्त है। दोनो पदो मे इस गहरे साम्य के कारण कहा जा सकता है कि 'दास गोपाल' का ही पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है :—

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल।
सावरी सूरत माधुरी मूरत, राजिव नयन विसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधरन बंसी कर मे लकुटी, कौस्तुभ मणि वनमाल।
बाजूबन्द आभूषण मुदर, नुपूर शब्द रसाल।
दास गोपाल मदन मोहन, पिय भक्तन के प्रतिपाल।
(पद ४८५, पृष्ठ १२३,)

'दास गोपाल' के पद की भाषा साहित्यिक है जबकि मीराँ के नाम पर प्रचलित पद की भाषा सरल है। सम्भव है कि गेय परम्परा ही इसका कारण हो।

उपर्युक्त दोनो पद से कुछ साम्य रखता हुआ एक और भी निम्नाकित पद 'बृहद्राग रत्नाकर' मे मिलता है।

"बसो मेरे नयनन मे दोऊ चद।
गौर बरण बृषभानु नदिनी, श्याम वरण नन्दनन्द।
गोकुल रहे लुभाय रूप मे, निरखत आनन्द कद।
जयश्री भट्ट युगल रूप बदो, क्यो छूटै दृढ फंद।
(पद ४८६, पृष्ठ १२४)

इस पद की प्रथम पक्ति और उपर्युक्त अन्य दोनो पदो की प्रथम पक्ति मे ही गहरा साम्य है। यद्यपि शेष पद सर्वथा भिन्न है।

७

जोसीड़ा ने लाख बधाई, अब घर आये स्याम।
आजि आनन्द उंमगि भयो हूै, जीव लहै सुखधाम।
पांच सखि मिली, पीव परसि के, आनन्द ठासू ठाम।
बिसर गई दु ख निरखि पिया कूँ, सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के सुख सागर स्वामी, भवन गवन कियो राम ॥२३२॥†

पाठान्तर १,

जोसीड़ा ने लाख बधाई, आज घर आये स्याम।
आजि आनन्द उमगि भयो अति, जीव लहै सुखधाम।
पच सखी मिलि परसि पिया कूँ, आनन्द आठूँ जाम।
विसर गई दुख निरखि पिया कूं सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के प्रभु सुख के सागर, भवन गवन कियो, राम।

यह पद 'राम सनेही' गुटके से उद्धृत है। बहुत सम्भव है कि 'राम सनेही' सम्प्रदाय का ही पद मीराँ के नाम पर चल पड़ा हो। 'राम सनेही' प्रयोगयुक्त एक पद (सं० ४) राजस्थानी मे भी मिलता है।

८

पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी म्हारे सतगुरु, किरपा करि अपनायो।
जनम जनम की पूजी पाई, जग मे सभी खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवै, दिन दिन बढ़त सवायो।
सत की नाव खेवटिया सतगुरु भवसागर तर आयो।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरख हरख जस पायो ॥२३३॥

सम्पूर्ण पद की भाषा विशद्ध ब्रज भाषा है। मात्र एक शब्द 'म्हारे' ठेठ राजस्थानी शब्द है। पाठान्तर मे इस शब्द का प्रयोग नही मिलता।

पाठान्तर १,

राम रतन धन पायो, मैया मै तो राम रतन धन पायो।
खरचै ना खूँटे, वाकू चोर न लूटै, दिन दिन होत सवायो।
नीर न डूबै वाकूँ अगिन न जालै, धरनी धर्‌यो न समायो।
नॉव को नॉव भजन की बतियाँ, भवसागर से तार्‌यो।
मीराँ बाई प्रभु गिरधर सरणै, चरण कमल चित लायो।

उपर्युक्त पद के दोनो पाठो से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

९

माई मै तो लियो रमैयो मोल।
कोई कहै छानी¹, कोई कहै चोरी, लियो है बजता ढोल।
कोई कहै कारो, कोई कहै गोरो, लियो है अखी खोल।
कोई कहै हल्का, कोई कहै मँहगा, लियो है तराजू तोल।
तनका गहना मै सब कुछ दीन्हा, दियो है बाजूबन्द खोल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, पूरब जनम का कोल ।।२३४।।

उपर्युक्त पाठ की भाषा राजस्थानी की ओर झुकी हुई है। पद की द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त 'चोरी' शब्द के बदले 'चोडे' का भी प्रयोग मिलता है जो अर्थ सगति के विचार से अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। 'चोडे' का अर्थ है सब की जानकारी मे। शेष पद से चतुर्थ पक्ति भिन्न पडती है, इतना ही नही यह पक्ति ज्यो की त्यों अन्य पदो मे भी मिल जाती है। इसी तरह, अन्तिम पक्ति का द्वितीयाश भी ज्यो का त्यो अन्य पदो मे प्राप्त है।

---

१ छिपा कर।

पाठान्तर १,

माई म्हे गोविन्द लीनी मोल।
कोई कहै सस्तो, कोई कहै महँगो, लीनी तराजू तोल।
कोई कहै घर मे, कोई कहै वन मे, राधा के सग किलोल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आवत प्रेम के मोल।

पाठान्तर २,

माई मै तो लीयो री गोविन्दो मोल।
कोई कहै सोहगो कोई कहै मेहगो लियोरी तराजू तोल।
कोई कहै छानै, कोई कहै छुरकै लीयोरी बाजता ढोल।
याकूँ तो सब लोग जाणत है, लियो अमोला मोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, पूरब जनम के कोल।

पाठान्तर ३,

मै तो गोविन्द लीन्हा मोल।
कोई कहै महंगा, कोई कहै सस्ता, लियो तराजू तोल।
ब्रज के लोग करै सब चर्चा, लिया बजा के ढोल।
सुर नर मुनि जाको पार न पावै, ढक लिया प्रेम पटोल।
जहर पियाला राणाजी भेज्याँ, पिया मै अमृत मोल।
मीराँ प्रभु के हाथ बिकानी, सर्वस दीना घोल।

'ब्रज कै बसिया करै सब चर्चा' और 'जहर पियाला ' अमृत मोल' जैसी अभिव्यक्तियाँ इस पाठ की विशेषताएँ है।

पाठान्तर ४,

माई मै तो लियो है सावरियो मोल।
कोई कहै सूँघो, कोई कहै मूँहगो (मै तो) लियो ह हीरा सूँ तोल।
कोई कहै हलका, कोई कहै भारी, (मै तो) लियोरी जाखडिया[1]तोल
कोई कहै घटतो, कोई बढतो (मै तो) लियो है बराबर तोल।
कोई कहै कालो, कोई कहै गोरो, (मै तो) देख्यो हे घूँवट पट खोल।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, म्हारे पूरब जनमरो कोल।

पाठान्तर ५,

माई मै तो लियो छै सांवरियो मोल।
कोई कहै हलको, कोई कहै भारी, (मै तो) लियो छै तराजू तोल।
कोई कहै सोगो, कोई कहै मैगो[2], (मै तो) लियो छै अमोलख मोल।
कोइ कहै छानै, कोई कहै चोडे (मै तो) लियो छै बाजता ढोल।
कोई कहै कालो, कोई कहै गोरो (मै तो) लियो छै अखिया खोल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, (म्हारे) पूरब जनम को कोल।

स्पष्ट है कि उपर्युक्त सभी पाठ एक ही पद के गेय रूपान्तर मात्र है। यद्यपि प्रत्येक पाठ की भाषा किसी एक बोली विशेष के प्रभाव की द्योतक है तथापि भाव सर्वथा एक ही है।

तत्कालीन समाज के साथ मीराँ के कठोर सघर्ष की भावना सभी पाठो से व्यक्त होती है। साथ ही सभी पाठो से निन्दा-स्तुति के प्रति उदासीन मीराँ का आत्मविश्वास और दृढ भक्ति-भाव "मै तो लियो तराजू तोल" जैसी अभिव्यक्ति से अति स्पष्ट हो उठता है।

शुद्ध ब्रजभाषा के साथ ही साथ राजस्थानी से कुछ प्रभावित ब्रजभाषा मे भी प्राप्त यह पद और इसके विभिन्न पाठ विशेष विचारणीय है।

---

१ तराजू, २ महँगा।

गुजेराती में प्राप्त पद

१

मने मलिया मित्र गोपाल, नही जाऊ सासराए।
ससार मारुँ हो सासुरो ने बैकुठ मारो वास रे।
लक्ष चौरासी मारो हो चुड़ोलो रे, हारे मै तो वरिया गोपाल लाल नाथ।
सासु हमारी शुशुमना रे, सुसरी प्रेम सतोष रे।
जेठ जुगे जुग जीव जो रे, हा रे पेलो नावलियो निरदोस।
आपूँ तो नवरग चूँदडी रे, नही ओढू कामल लगार रे।
ओढू प्रेम रस चूँदडी रे, हाँ रे मारा पाप निवारण करनार।
दियरे[१] ने दीनूँ है दीकडी[२] रे, दोनू राजकुमार रे।
एक ने सतयुग मोहि रहियो, राणा, दूजी रही ब्रह्मचार।
एक एक नो गुरु गोविन्द जी हो रे, दूजी की है ससार रे।
राज छाड़ौ चित्रकूट नेरे हाला, बाला गावला सोल हजार।
अपना पिया को जाई ने कह जो, घना दहाडो[३] धना वास रे।
बेऊ[४] कर जोडी हो निनवरे, हा रे गुण गावे मीराबाई दास ॥२३५॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय ह। यद्यपि अभिव्यक्ति अस्पष्ट और कही कही असगत भी है, तथापि सतमत का प्रभाव विशष रूपम इंगित हो जाता है।

अन्तिम पक्ति मे "मीराबाई दास' जैसा प्रयोग इस पद की विशेषता है। इस प्रयोग के आधार पर पद की प्रामाणिकता और भी सदिग्ध हो उठती है।

२

अरज करे छे मीरा राकडी , ऊभी ऊभी अरज करे छे।
मणिधर स्वामी म्हारे मादेर पधारी, सेवा करु दिन रातडी।

---

१ देवर, २ दीकडी अशुद्ध है, शुद्ध शब्द हैडीकरी, जिसका अर्थ है पुत्री, ३ दिन, ४ दोनो।

फुलना रे तोडा,[1] फुलना रे गजरा,[2] फुलना रे हार फल पाखडी।
फुलना रे गादी फुलना रे तकिया, फुलना री पाथरी पछेडी।
पय पकवान मिठाई ने मेवा, सेवेया ने सुन्दर दहीडी।
लवग सुपारी ने एलची, तजवाला कथा पुरारी पान बीडी।
सेज बिछाऊ ने पासा मगाऊ, रमवा आवो तो जाय रातड़ी ॥२३६॥†

मीराँ के नाम पर प्रचलित इस पद के किसी भी अंश से इसका मीराँ विरचित होना आभासित नही होता। ऐसो पदो को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान न देना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है। किसी किसी सग्रह मे निम्नाकित एक पक्ति और भी मिलती है जिसके आधार पर पद को मीराँ का कहा जा सकता है।

'मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, वा'ला राम ने जोता ठरे आखडी।

इस पक्ति से व्यक्त होती भावना का शेष पदाभिव्यक्ति से कोई सगति नही बैठती। फिर गुजराती मे प्राप्त मीराँ के पदो की अन्तिम पक्ति मे 'मीराँ के प्रभु गिरधर नागर' के बदले "मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण' का ही प्रयोग मिलता है। ऐसी स्थिति मे उपर्युक्त पक्ति के आधार पर भी पद की प्रामाणिकता सिद्ध नही होती।

३

अबोला सीद लोछी मारा राज, प्राण जीवन प्रभु मारा म्हांरा राज।
अमे तो तमारा तमे तो अमारा, टाली दोस दो छोरे।
अमे तो तमारी सेवा करीये, सुख लई ने दुख दो छोरे।
जेने पोतानी मासी भारी, तेनी सो विश्वास रे।
अमृत पाई ने उछेरिया वा'ला, बिखडा घोलि घोलि शीद पावो छोरे।

१ हाथो मे पहनने का जेवर विशेष, २ हार।

ऊडा कुवा मे उतरिया वाला, बरत बाढी शूँ जाओ छो रे।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित लाओ छो रे ॥२३७॥

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सगति का अभाव है। 'मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर' का प्रयोग भी अन्य गुजराती पदो की परम्परा के अनुकूल नही पडता।

आराध्य की अप्रसन्नता के प्रति उलाहने की अभिव्यक्ति अन्य पदो मे भी मिलती है।

समर्पण द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

मीराँ रग लाग्यो हो नाम हरी, और रंग अटकि परी।
गिरधर गास्यां सती न होस्या, मन मोह्यो घण नामी।
जेठ बहू नही राणा जी, थे सेवक हू स्वामी।
चोरी करा नही जीव सतावा, कांई करेगी म्हाको कोई।
गज सूँ उतरि गधे नही चढ़स्या, या तो बात न होई।
चूडो तिलक दोवडो अस माला, सील वरत सिणगार।
और वस्तु रति नही मोहै भावै कोई निन्दो,
म्हो तो गोविन्द जी रा गास्या।
जिण मारग वे संत गया छै, जीं[1] मारग म्हे जास्या।
राज करता नरक पडता, भोगी जो रै लीया।
जोग करता मुकति पहुता, जोगी जुग जुग जीया।
गिरधर धनी धनी[2] मेरे गिरधर, मात पिता सुत भाई।
थे थाके मै म्हाके राणा जी, यूँ कहै मीराँ बाई। ॥२३८॥

पद के अन्तिम चरण मे "गिरधर धनी, धनी मेरे गिरधर" के बदले "गिरधर म्हांरा मै गिरधर की" अभिव्यक्ति भी मिलती है, जो अधिक उपयुक्त प्रतीत होती है।

पाठान्तर १,

मीराँ रग लाग्यो नाव हरी, और रंग अटकि परी।
गिरधर भजस्या सती ये न होस्यां, मन मोह्यो गिरधारी।

---

१ वही, २ स्वामी।

जेंठ बहू को नाती नही छै, राणा थे सेवक म्हे स्वामी।
चूडो देवडो तिलक ज माला, सील बरत सो भारी।
चोरी करा नही जीव सतावा, काई करैलो म्हारो कोई।
गज चढ गीदड न चढा हो राणा, ये तो बाता सरी।
गिरधर धणी गोविन्द कडूँवो, साध सत म्हारा धरी।
थे थाके म्हे म्हाके हो राणा जी, यूँ कहै मीराँ खरी।

पाठान्तर २,

मीराँ लागो रग हरी, और रग सब अटक परी।
चूडो म्हारे तिलक अस माला, सील बरत सिण गारो।
और सिगार म्हारे दाय[1] न आवै, यो गुर ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, म्हे तो गुण गोविन्द का गास्या।
जिण मारग म्हारा साध पधारे, उन मारग म्हे जास्या।
चोरी न करस्या, जीव न सतास्या, काई करसी म्हारो कोई।
गज से उतर कर खर नही चढ़स्या, ये तो बात न होई।

कही कही निम्नाकित कुछ पक्तियाँ उपर्युक्त पद के साथ और भी मिलती है।

सती न होस्या गिरधर गास्यां, म्हारो मन मोह्यो घण नामी।
जेठ बहू को नातो राणो जी, हू सेवक थे स्वामी।
गिरधर कंत गिरधर धनी म्हारे, मात पिता वीर भाई।
थे थारे मै म्हारे राणा जी, यूँ कहै मीराँ बाई।

उपर्युक्त पद के तीनो ही पाठो मे मीराँ का सती होने से इन्कार करना सुस्पष्ट हो जाता है। राजपूती परम्परा के आधार पर यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। पद के ही आधार पर यह भी मालूम होता है कि मीराँ को सती होने का आदेश करने वाले स्वय राणा ही थे।

---

१ पसन्द।

इन राणा से मीराँ का क्या सम्बन्ध था, यह सर्वथा अनिश्चित है। बहुत सम्भव हो कि ये राणा जेठ ही रह हो। सम्भव है कि मीराँ अपने ही प्रति 'जेठ बहू' (प्रथम पाठ मे) की अभिव्यक्ति करती है अर्थात् सब मे बडी बहू।

"यूँ कहै मीराँ बाई" जैसी टेक भी विचारणीय है।

सतमत का प्रभाव इस पद से भी स्पष्ट हो उठता है। "जिण मारग म्हे जास्या" जैसी अभिव्यक्ति 'गुरु' और उनके प्रदर्शित मार्ग के प्रति मीराँ के विशेष अनुराग को ही सिद्ध करती है।

२

चाला वाही देस, चाला वाही देस।
कहो कुसम्भी सारी रगावा, कहो तो भगवा भेस।
कहो तो मोतियन मांग भरावा, कहो तो छिटकावा केस।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिडद नरेस। ॥२३९॥

यह पद विशेष महत्वपूर्ण है। "जिन जिन भेखा म्हारो साहिब रीझै, सोई सोई भेख धारणा" के लिये उतावली मीराँ स्वय ही यह निश्चित नही कर पा रही है कि आराध्य को कौन रूप स्वीकृत होगा। "कहो तो मोतियन भगवा भेस।" सम्भव है कि वैष्णव और नाथ पथ की विभिन्न परम्पराओ के कारण ही ऐसी अभिव्यक्ति हुई हो।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

म्हाने चाकर राखो जी गिरधारी लाला, चाकर राखोजी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठि दरसन पासू।
वृन्दावन की कुंज गलिन मे गोविन्द लीला गासूं।
चाकरी मे दरसन पाऊ, सुमिरन पाऊं खरची।
भाव भगत जागिरी पाऊ, तीनो बाता सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल वैजन्ती माला।
वृन्दावन मे धेनु चरावै, मोहन मुरली वाला।
ऊचे ऊचे महल बनाऊं, बिच बिच राखू बारी।
सावरिया के दरसन पाऊ, पहिर कुसुम्मी सारी।
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने सन्यासी।
हरी भजन को साधू आए, वृन्दावन के वासी।
मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा, हृदे रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दीन्हो, प्रेम नदी के तीरा ॥२४०॥

इस पद की टेक "मीराँ के प्रभु गहिर गम्भीरा" सर्वथा नूतन है।

२

मैं तो थारे दामन लागी जी गोपाल।
किरपा कीजो दरसन दीजो, सुध लीजो तत्काल।
गल बैजन्ती माल बिराजै, दर्शन भई है निहाल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भक्तन के रछपाल। ॥२४१॥

पद की तृतीय और चतुर्थ पंक्तियों के द्वितीयार्द्ध विरोधात्मक भावना के द्योतक है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

मेरे मन राम नाम बसी।
तेरे कारण स्याम सुन्दर, सकल जोगा हांसी।
कोइ कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहे कुलनासी।
कोई कहै मीराँ दीप आगरी, नाम पिया सूँ रासी।
खाड धार भक्ति की न्यारी, काटी है जम फासी ॥२४२॥

पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। कठिन सघर्ष के साथ ही साथ मीराँ को गहरा समर्थन भी प्राप्त हुआ। 'कुलनासी' और 'दीप आगरी' जैसे विशेषण साथ ही साथ मिले। वृन्दावन पहुँचने पर भी ये दोनों विरोधी धाराये अक्षुण्ण रही, यही ऐसे पदो से सुस्पष्ट होता है।

२

हमारे मन राधा स्याम बसी।
कोई कहै मीराँ भई बावरी, कोई कहै कुलनासी।
खोल के घूँघट प्यार के गाती, हरि ढिग नाचत गासी।
वृन्दावन की कुजगलिन मे, भाल तिलक उर लसी।
विष को प्याला राणा जी ने भेज्या, पीवत मीराँ हासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भक्ति मार्ग मे फंसी ॥२४३॥

दोनो पदों की अन्तर्भावना एक ही है, तथापि प्रथम पद का भाव-गाम्भीर्य दूसरे पद मे नही। दूसरे पद की भाषा पर खडी बोली का भी प्रभाव भी विचारणीय है। पूर्वापर संगति, विचार-गाम्भीर्य और भाषा की शुद्धता के दृष्टिकोण से भी प्रथम पद प्रामाणिकता के अधिक निकट पडता सिद्ध होता है।

३

माई मै तो गोविन्द सो अटकी।
चकित भए है दृग दोऊ मेरे, लखि शोभा नटकी।
शोभा अग अग प्रति भूषण, बनमाला तट की।
मोर मुकुट कटि किंकिन राजै, दुति दामिनी पटकी।
रमित भई हां सावरे के सग लोग कहै भटकी।
छुटि लाज कुल कानि लोग डर, रह्यो न घर हटकी।
मीराँ प्रभु के संग फिरैगी, कुजा कुजा लटकी।
बिनु गोपाल लाल के सजवनी, को जानै घटकी।।२४४।।†

उपर्युक्त पद को प्रामाणिक मान लेने पर अभिव्यक्ति विचारणीय हो जाती है। पद मे परम्परानुगत टेक नही है। केवल 'मीराँ' नाम मात्र का प्रयोग किसी अन्य पद मे नही मिलता। टेक के बाद और एक पक्ति अन्य कुछ पदो मे भी मिलती है, परन्तु ऐसे पदो की प्रामाणिकता सदिग्ध ही है।

४

पग घूँघरु बाध मीराँ नाची रे।
मै तो मेरे नारायण की, आपही हो गई दासी रे।
लोग कहै मीराँ भई बावरी, न्यात कहै कुलनासी रे।
विष का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीराँ दासी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सहज मिले अविनासी रे।।२४५।।

उपर्युक्त पद की भाषा पर खडी बोली की छाप विशेष स्पष्ट दिखती है। "सहज मिले अविनासी' जैसी अभिव्यक्ति विचारणीय है। सम्भवत इसको संतमत का ही प्रभाव कहा जा सकता है। सतमत से प्रभावित पदो "साँवरे रग राची" जैसे पद से इस पद का बहुत साम्य है। विभिन्न पदो के सम्मिश्रण से एक स्वतत्र पद का बन जाना असम्भव नही प्रतीत होता तथापि यह कहना असम्भव है कि कौन पद किस रूप मे प्रामाणिक है।

५

चितनन्दन आगे नाचूँगी।
नाच नाच पिय रसिक रिझाऊ, प्रेमी जन को जाचूँगी।
प्रेम प्रीति का बाध घूघरा, सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, या मै एक न राखूँगी।
पिया के पलगा जा पोढूँगी, मीरॉ हरि रग राचूँगी ॥२४६॥

पूर्व पद का पाठान्तर से प्रतीत होते इस पद पर सतमत का प्रभाव विशेष रूपेण स्पष्ट हो जाता है। भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव भी विचारणीय है। प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त 'चितनन्दन' के बदले 'रघुनन्दन' और द्वितीय पक्ति मे 'पिय' के बदले 'यदुनाथ जी' शब्द का भी व्यवहार मिलता है।

पाठान्तर १,

घूघरु बाध मीरॉ नाची रे, पग घूघरुं।
लोग कहै मीरॉ हो गई बावरी, सास कहै कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणा जी भेज्या पीवत मीरॉ हासी रे।
मै तो अपने नारायण की आपही हो गई दासी रे।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, बेग मिलो अविनासी रे।

६

मै गिरिधर के घर जाऊ।
गिरिधर म्हारो साचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊं।
रैन पडे तब हि उठि धाऊ, भोर भये उठि आऊ।
रैन दिना वाके सग खेलूँ, ज्यो त्यो ताहि लुभाऊ।
जो पहिरावै सोई पहिरू, जो दे सोई खाऊं।
मेरी उन की प्रीत पुरानी, उन बिन पल न रहाऊ।
जहा बैठावे तित ही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊ।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, बार बार बलि जाऊ ॥२४७॥

उपर्युक्त पद मे 'म्हारो' (मेरा) और 'थारो', (आपका या तुम्हारा) ये दो शब्द शुद्ध राजस्थानी के है, जब कि शेष पद की भाषा ब्रजभाषा है। परशुराम जी द्वारा सग्रहीत 'पदावली' मे 'उन की', 'पुरानी' आदि के बदले 'उण की' 'पुराणी' आदि का प्रयोग मिलता है, जिससे पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव और भी स्पष्ट हो उठता है।

७

हरि मेरे जीवन प्राण अधार।
और आसिरो नाहि न तुम बिनु, तीनूँ लोक मझार।
आप बिना मोहि न सुहावं, निरख्यौ सब ससार।
मीराँ कहे मै दासी बावरी, दीज्यो मति बिसार॥२४८॥

८

निपट बक्ट छबि अटकै मेरे नैना, निपट बक्ट छबि अटके।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत मयूखन अटके।
वारिज भवा अलका टेढी, मनो अति सुगध रस वटके।
टेढी कटि टेढी कर मुरली, टेढी पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरिधर नागर नटके॥२४९॥

९

सखी मेरो कानूड़ो कलेजे कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की झकझोर।
बिन्द्रावन की कुज गलिन मे, नाचत नन्दकिशोर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चितचोर। ॥२५०॥

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

हमरे रौरे लागिल कैसे छूटे।
जैसे हीरा हनत निहाई, तैसे हमरे रौरे बनि जाई।
जैसे सोना मिलत सोहागा, तैसे हम रौरे दिल लागा।
जैसे कमल नाल बिच पानी, तैसे हम रौरे मन मानी।
जैसे चन्दा मिलत चकोरा, तैसे हम रौरे दिल जोरा।
जैसे मीरॉ पति गिरधारी, तैसे मिलि रहू कुज बिहारी ॥२५१॥

पद की भाषा स्पष्ट रूपेण अवधी है।

२

जो तुम तोडो पिया, मै नही तोडे्।
तोरी प्रीत तोडी, कृष्ण कौन सग जोडे्।
तुम भये तरुवर, मै भई पखिया।
तुम भये सरवर, मै भई मछिया।
तुम भये गिरिवर, मै भई चारा।
तुम भये चदा, मै भई चकोरा।
तुम भये मोती प्रभुजी, हम भये धागा।
तुम भये सोना, हम भये सुहागा।
बाई मीरॉ के प्रभु, ब्रज के बासी।
तुम मेरे ठाकुर, मै तेरी दासी ॥२५२॥†

भाव, भाषा दोनो के ही आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। भाषा खडी बोली है और भाव मे वह गाम्भीर्य नही है जो तथाकथित मीरॉ के पदो मे प्राय प्राप्त है। उपर्युक्त पद की तुलना कीर्तन-मंडली के चालू पदो से की जा सकती है।

गुजंराती में प्राप्त पद

१

मुखडानी माया लागी रे मोहन प्यारा।
मुखड्ु मे जोयुँ[1] तारु[2] सर्वजग थायुँ[3] खारु।
सब मारु रहूदुँ न्यारु रेयु
ससारीड्ु सुख एवु झाझ बाना नीर जोवुँ[4],
तेरे तुच्छ करी करीए रे।
मीराँ बाई बलिहारी, आशा मने तकतारी,
हवे[5] हुँ तो बड भागी रे†॥२५३॥†

२

लेह लागी मने तारी, अल्याजी लेह लागी मने तारी।
काम काज मुक्युँ[6] ने धाम ज मुक्युँ, मनमा चाहु छुँ मुरारी।
खमे छै काबली हाथ मा छे बासरी, गोकुल मा गायो चारी।
सोल सहस्त्र गोपियो ने तमे वरिया, तोय तमे बाल ब्रह्मचारी।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी॥२५४॥†

पद की तीसरी पक्ति की अभिव्यक्ति शेष पद से सर्वथा भिन्न पड़ती है, "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर" का प्रयोग भी गुजराती पदो की परम्परा के अनुसार नही है।

३

नागर नन्दा रे बाल मुकुन्दा, छोडी छोने जनना धधा रे,
मारी नजरे रहे जो रे नागर नन्दा।

---

१ देखा, २ तुम्हारा, ३ हो गया, ४ जैसा, ५ अब, ६ छोड दिया।

काम ने काज मने कांई नव सूझे, भूलि गई छूँ मारा घर धंधा रे।
आड् अवलुँ मे तो कांई नव जोयुं, जोया जोया छे पुनम केरा चंद रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लागी छे मोहनी मने फदा रे।।।२५५।।†

४

राम रमकड़ू[1] जडियो रे रानाजी, मने राम रमकडो जड़ियो।
रुमझुम कर तो मारे मन्दिरे पधारियो, नही कोई याते घडियो रे।
मोटा मोटा मुनीजन मथी मथी थाक्या,कोई एक बिरला ने हाथे चुड़ियो रे।
सुनु सिखर ना रे घाटती, ऊपर अगम अगोचर नाम पडचुँ रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मारु नाम सामलियां सूँ जडियो रे।
।।२५६।।†

५

राम सीता पती थारी नेह लागी हो।
हो तम्ने भजी थी म्हांरी मीड़ भागी।
घरनो तो धन्ध रे मने नथी गमतो।
साधु सधा ते मारी प्रीत बाधी।
काम काज छोड़िया मै तो लोक लाज मेली।
प्रेम मगन मा हू राजी।
अज्ञान मी कोठड़ी मा ऊध घनी आवै।
प्रेम प्रकाश मा हू जागी।
दुरजन लोग मारे निन्दा करे छे।
वा'ला लागे छै मानो वैरागी।
नाची कूदी मै तो भक्ति न कीधीं।
लोक नी लाज मै बहू राखी।

---

१ खिलौना।

ध्रुव जी ने लागी, प्रल्हाद जी ने लागी।
द्रोपदी ने सभा मा भीड भागी।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर।
जन्मो जनम नी हू त्यागी। ॥२५७॥†

पदाभिव्यक्ति मे विरोधाभास और पूर्वापर सगति का अभाव है। कही कही अर्थ सगति भी नही बैठती। अन्तिम दो पक्तियो की गर्वोक्ति के आधार पर पद का मीराँ विरचित होने मे सदेह होता है।

६

सुन्दरि स्याम सरीर म्हार दिल, सुन्दरि स्याम सरीर।
कोई ने भाव भवानी ऊपर, कोई ने वाला पीर।
गगा रे कोई ने जमुना रे कोई ने, कोई ने अडसड तीर।
कोई नी रे हस्ती कोई नी रे घोडा, कोई नी रे म्हैल मन्दीर।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर नागर, हरी हलधर केरा बीर ॥२५८॥†

७

नही रे बिसरु हरि अन्तर मां थी नही रे।
जल जमुना ना पाणी रे जाता शिर पर मटकी धरी।
आवतां न जाता मारग बचे अमूलख वस्तु जडी।
आवता न जाता रे वृन्दा रे बन मा चरण तमारी पड़ी रे।
पीला पीताम्बर जरकस जामा, केसर आड करी।
मोर मुकुट ने काने रे कुडल, मुख पर मुरली धरी।
बाई मीराँ कहे प्रभु गिरिधर ना गुण, विट्ठल बर ने बरी ॥२५९॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध और अर्थ संगति का अभाव है। पद की अन्तिम पंक्ति विचारणीय है। गुजराती मे प्राप्त अधिकाश

"दासी" और "जन"

प्रयोग युक्त पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

तुमर कारण सब सुख छाड़्या, अब मोहिं क्यूँ तरसावौ हो।
बिरह बिथा लागी उर अन्तर, सो तुम आय बुझावौ हो।
अब छोडत नाहि बणै प्रभु जी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अग से अग लगावौ हो॥२६०॥

इस पाठ की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। पद की अभिव्यक्ति के आधार पर ही ऐसा प्रतीत होता है कि सम्भवत पद की कुछ पूर्व पक्तियाँ लुप्त हो गई है। "अब छोड़त नाहिं बणै प्रभु जी" अभिव्यक्ति विचारणीय है।

२

थांरी छूँ रमैया मोसूँ नेह निभावौ।
थारे कारण सब सुख छोड्या, हमकूँ क्यू तरसावौ।
बिरह बिथा लागी उर अन्दर, सो तुम आय बुझावौ।
अब छोड़्या नाहि बनै प्रभु जी, हँस कर तुरत बुलावौ।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग सूँ अग लगावौ॥२६१॥

उपर्युक्त दोनों पदों मे गहरा साम्य विचारणीय है। द्वितीय पद की भाषा राजस्थानी प्रधान है, जब कि पहले पद पर आधुनिक प्रभाव स्पष्ट है। यह पद पूर्व पद से अधिक पूर्ण भी प्रतीत होता है।

३

पपइया रे पिव की बाणी न बोल।
सुणि पावेली बिरहणी रे, थांरी राखेली पाख मरोड।
चोच कटाऊ पपइया, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मै पिव की रे, तू पिव कहैस[1] कूण।
थारा सबद सुहावणा रे, जो पिव मेल्या[2] आज।
चोच मढाऊ थांरी सोवनी[3] रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम को पतिया लिखूं, कऊवा तू ले जाइ।
प्रीतम जू सूँ यो कहै रे, थारी बिरहणी धान न खाइ।
मीराँ दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ[4]।
बेगि मिलो प्रभु अन्तरजामी, तुम बिन रह्योइ न जाइ ॥२६२॥

उपर्युक्त पद की कुछ पक्तिया "प्रीतम कूँ ....रह्योइ न जाय" स्वतन्त्र पद के रूप मे भी प्राप्त है।

४

साजन घर आवो जी मिठबोला।
कब की ठाढ़ी पथ निहारू, था ही आया होसी भला।
आवो निसक सक मत मानो, आयौ ही सुख रहला।
तन मन वार करू न्योछावर, दीजो स्याम मोहेला।
आतुर बहुत बिलम नही करना, आया ही रग रहेला।
तेरे कारण सब रग त्यागा, काजल तिलक तमोला।
तुम देख्या बिन कल न परत है, कर धर रही कपोला।
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घुन्डी खोला। ॥२६३॥

---

१ कहने वाला "कहै" शब्द मे 'स' लय बैठाने के लिये जोड दिया गया है। राजस्थानी गीत-परम्परा मे प्राय ऐसा होता है। २ मिले, ३ सुन्दर, ४ बेहाल।

पाठान्तर १;

सजन घर आवो जी मीठां बोला[1]।
बिन देखे मोहे कल न पडत है, कर धर रही कपोला।
आवो निसक सक नहि कीजे, हिलमिल के रग घोला।
तेरे कारण सब सब रग तजिया, काजल तिलक तमोला।
मीराँ दासी जनम जनम की, दिल की घुँडी खोला।

पाठान्तर २,

साजन घर आवो जी मीठां बोला।
कब की ठाढी पथ निहारू, कर धर रही कपोला।
तन मन बार हिलमिल के रग घोला।
आतुर बिरहनी बिलब नही करना, आयां ही रग रहेला।
मीराँ तो गिरधर बिन देख्यां, छिन मासा छिन तोला।

५

राणा जी म्हारी प्रीत पुरबली, मैं काई करू।
राम नाम बिन घड़ी न सुहावै, राम मिले म्हारा हियरा ठर्राय[2]।
भोजनिया नहि भावै, म्हाने नीदड़ली नही आय।
विष को प्यालो भेजियो जी, जावो मीराँ पास।
कर चरणामृत पी गई रे, म्हांरे राम जी को विस्वास।
विष का प्याला पी गई रे, भजन करै उस ठौर।
थारी मारी ना मरू, राखणहार और।
छापा तिलक बनाविया जी, मन में निश्चय धार।
राम जी काज संवारिया, म्हांने भावे गरदन मार।
पेट्या बासक भेजिया जी, यो छै मोतिडारो हार।

---

१ मधुर भाषी, २ ठढा होय

नाग गले पहरिया, म्हांरे महलां भयो उजार।
राठौड़ा री धीहडी जी, सिसोद्यां रे साथ।
ले जाती बैकुठ कूँ, म्हांरी नेक न मानी बात।
मीराँ दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।
जन मीराँ को राखज्यो, कोई बांह गहे की लाज। ॥२६४॥

उपर्युक्त पद की कुछ पंक्तिया "विष को प्यालो भेजियो जी म्हांरी नेक न मानी बात" और एक अन्य पद "मीराँ बैठी महल में उठत बैठत राम" की पक्तियां हूबहू है। इन पंक्तियो की अभिव्यक्ति भी प्रथम तीन पक्तियो की अभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पड़ती है। इस पद की कुछ पक्तियो मे निम्नांकित पाठान्तर भी मिलता है। "राम नाम बिन नही भावै, हिवडो झोला खाय" पद की पाचवी पक्ति मे "राम जी" के बदले "गोविन्द" शब्द का प्रयोग मिलता है। इसी तरह अन्तिम दो पक्तियो मे भी "राम" के बदले "श्याम" का प्रयोग मिलता है। "मीराँ दासी" और "जन मीराँ" का एक ही साथ प्रयोग इस पद की विशेषता है, जो विचारणीय है।

६

म्हांरा ओलगिया[1] घर आज्यो जी।
सुख दुख खोलि कहूं अतर की, बेगा[2] बदन[3] बताज्यो जी।
च्यार पहर च्यारू जुग बीत्या, नैणा नीद न आवै जी।
पूरण ब्रह्म अखंड अविनासी, तुम बिन बिरह सतावै जी।
नैणा नीर आम ज्यूँ झरण, ज्यूँ मेघ झरण लाया जी।
रतवती इत राम कत बिन, फिरत बदन बिलखाया जी।
साधू सजन मिलै सिर साटै, तन मन करूं बधाई जी।
जन मीराँ नै मिलौ कृपा करि, जनमि जनमि मितराई जी।
॥२६५॥

१ परदेशवासी प्रीयतम, २ शीघ्र, ३ मुख।

७

जोगिया म्हांने दरस दियां सुख होइ।
नातरि दुखी जग माहि जीवडो, निसि दिन झूरै[1] तोइ।
दरस दिवानी भई बावरी, डोली सब ही देस।
मीराँ दासी भई है पडर,[2] पलट्या काला केस। ॥२६६॥

८

तुम आवो जी प्रीतम मेरे, नित बिरहणी मारग हेरे।
दुख मेटण सुख दाइक[3] तुम हौ, किरपा करिल्यौ नेरे[4]।
बहुत दिना की जोऊ मारग, अब क्यूँ करो रे अबेरे[5]।
आतर[6] अधिक कहू किस आगै, आज्यौ मित[7] सबेरे।
मीराँ दासी चरनन की, हम तेरे तुम मेरे। ॥२६७॥

९

प्यारे दरसन दीज्यौ रे, आइ रे आइ।
तुम बिन रह्यौ न जाइ रे जाइ।
जल बिन कंवल, चन्द बिन रजनी।
ऐसे तुम देख्या बिन सजनी।
किरपा करि कै बेग पधारो।
बिरह करेजा खाइ रे खाइ।
दिवस न भूख नीद नही नैना।
मुख सूँ कहत न आवै बैना।

---

१ किसी की विरह स्मृति मे शनै. शनै क्षीण होते जाना, २-सफ़ेद, ३ देने वाले, ४ निकट, ५ देर, ६ आतुरता, ७ मित्र, राजस्थानी मे 'मीत' प्रणय जनित मित्रता को ही कहते हैं।

आकुल व्याकुल फिरूं रैन दिन।
मिलि करि ताप बुझाइ रे बुझाइ।
क्यूँ तरसावो अतरजामी।
आण मिलो किरपा करि स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की।
पड़ूँगी तुम्हारे पांइ रे पाइ ॥२६८॥†

इस पद की शैली "आइं रे आइ" आदि प्रयोग अन्य पदो से सर्वथा विभिन्न पड़ती है। पद की चतुर्थ पक्ति में "सजनी" शब्द का प्रयोग भी विचारणीय है। हिन्दू दर्शन के आधार पर कही भी आराध्य को "सजनी" के रूप मे नही देखा गया है। पद मे व्यक्त भावना भी प्राय. इन्ही शब्दो मे अन्य पदो मे मिल जाती है। मेरे विचार से ऐसे पदो को विभिन्न पदो के सम्मिश्रण से बना हुआ लोकगीत ही समझना अधिक उपर्युक्त प्रतीत होता है। डा० श्री कृष्ण लाल के मतानुसार यह पद सम्भवत रैदास का हो सकता है।

१०

माई म्हांरी हरी हू न बूझी[1] बात।
पिंड मा[2] सूँ[3] प्राण पापी, निकसी क्यूं नहि जात।
पाट न खोल्या मुखां न बोल्या, साझ भई परभात।
अबोलणां[4] जुग बीतण लागे, तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवन की आस।
रैण अधेरी, बीज चमकै, तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कठ सारू, मरूंगी विष खाइ।
मीराँ दासी राम राती, लालच ही ललचाइ। ॥२६९॥

१ पूछी, हरि ने मेरी परवाह नही की, २ मे, ३ से, ४ अनबोले, बिना बोले हुए।

पाठान्तर १,

माई म्हांरी हरि न बूझी बात।
पिडं मे से प्राण पापी, निकस क्यूँ नही जात।
रैण अधेरी, बिरह घेरी, तांरा गिणत निसी जात।
ले कटारी कठ चीरू, करूगी अपघात[1]।
पाट[2] न खोल्या, मुखा न बोल्या, साझि लग परभात।
अबोलना मे अवधि बीती, काहे की कुसलात।
सुपन मे हरि दरस दीन्हो, मै न जाण्यो हरि जात।
नैना म्हारा उघडि आया, रही मन पछतात।
आवण आवण होय रह्यो री, नही आवण की बात।
मीरॉ व्याकुल बिरहणी रे बाल ज्यो बिललात।

पद विशेष महत्वपूर्ण है। अभिव्यक्ति के आधार पर पद को दो अंशो मे बाटा जा सकता है। "माई ... कुसलात". अर्द्धांश से आराध्य की निकटता और अप्रसन्नता ही सिद्ध होती है। परन्तु "सावण आवण . तारा गिणत निरास" से वियोग की ही स्थिति स्पष्ट हो उठती है। प्रथम पाठ की अन्तिम दोनो पक्तियो को उपर्युक्त दोनो ही अभिव्यक्तियो के साथ घटाया जा सकता है। द्वितीय पद की आठवी पक्ति की भावना विशेष विचारणीय है। पश्चात्ताप की अभिव्यक्ति दो एक अन्य पदो मे भी मिलती है।

पद की प्रमुख भावना के अनुसार आराध्य की निकटता और अप्रसन्नता ही व्यक्त होती है। इस अप्रसन्नता से ऊबकर मीरॉ आत्महत्या का भी निश्चय कर लेती है, परन्तु आराध्य दर्शन के लोभ मे वह भी नही कर पाती । ऐसी अभिव्यक्ति किसी भी अन्य पद मे नही प्राप्त होती। अत उपर्युक्त पद विशेष रूप से विचारणीय है।

---

१ आत्महत्या, २ दरवाजा या पर्दा, ।

११

कुण[1] बांचे पाती , प्रभु बिन कुण बांचे पाती।
कागद लै ऊधौ जी आए, कहा रहै साथी।
आवत जावत पांव घिसा रे,(वा'ला) अखियां भई राती।
कागद लै राधा बांचण बैठी, भर आई छाती।
नैन नीरज अब बहै, (वा'ला) गंगा बहि जाती।
पानां ज्यूँ पीली पड़ी रे, (वा'ला) अन्न नही खाती।
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे, (वा'ला) ज्यू दीपक संग बाती।
साचां कुछ चकोर चंद, धोलै बहि जाती।
ब्रज नारी की बिनती रे, (वा'ला) राम मिले मिलजाती।
मनै भरोसा राम को रे, (वा'ला) डूबत तार्यै हाथी।
दास मीराँ लाल गिरधर, सांकड़ारो[2] साथी। ॥२७०॥†

इस पद मे जगह जगह 'हरि' शब्द का प्रयोग हुआ है। 'हरि' शब्द के बदले कही 'राम' और कही 'कृष्ण' प्रयोगयुक्त पाठान्तर भी मिलते है। 'रे','वा'ला','जी' आदि शब्दो का प्रयोग अधिकाश राजस्थानी लोक-गीतो मे होता है। लय की पूर्त्ति ही इनका एकमात्र उदेश्य है। पद के प्रारम्भ मे ऊधव के पत्र लेकर आने का वर्णन है, परन्तु शेष पद मे ऊधव की कोई चर्चा नही है। पद विचारणीय है।

१२

रावलौ बिडद मोहि रूड़ो[3] लागे, पीड़ित पराये प्राण।
सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उबार्यो, बूड न दियो छै जान[4]।
मीराँ दासी अरज करत है, नाही जी सहारो आन। ॥२७१॥

'बैरी सकल जहान'' जैसी अभिव्यक्ति विचारणीय है। तथाकथित मीराँ के पदों मे यही एक पद ऐसा है जिसमें 'हारे को हरिनाम' जैसी भावना व्यक्त होती है।

---

१ कौन, २ बुरे दिन, ३ अच्छा, ४ बारात।

१३

तुम जीमों गिरधर लाल जी।
मीराँ दासी अरज करै छे, सुनिए परम दयाल जी।
छप्पन भोग छतीसो विजन, पावो जन प्रतिपाल जी।
राज भोग आरोगो[1] गिरधर, सनमुख राखो थाल जी।
मीराँ दासी चरण उदासी, कीजै बेग निहाल जी। ॥२७२॥

पद के प्रारम्भ और अन्त मे मीराँ दासी का प्रयोग हुआ है। एक ही पद मे ऐसी पुनरुक्ति युक्त पद यह एक ही है। अन्तिम चरण मे "चरण उदासी" प्रयोग सम्भवत उदासी सम्प्रदाय के प्रभाव का द्योतक है।

१४

तुम जीमो गिरधर लाल जू।
मीराँ दासी अरज करै छै, मोकूँ करों निहाल जू।
या बिरियां[2] है बालभोग की, लीज्यो चित मे धार जू।
केसर अतर पुषप के हरवा, इण विध करो सिणगार जू।
छप्पन भोग छतीसो विंजन, लाई भर भर थाल जू।
पान गिलोरी सुगध मिलाकर, कीनी है सब त्यार जू।
मीराँ दासी परिक्रमा की, मौकूँ करौ निहाल जू। ॥२७३॥†

उपर्युक्त दोनो पदो का गहरा साम्य विचारणीय है। सम्भवत दोनों ही पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर हो।

१५

पिया तेरे नाम लुभाणी हो।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी हो।
सुगिरत कोइ न कियो, बहु करम कुमाणी हो।

---

१ भोजन करो, २ समय।

गणिका कीर पढांवता, बैकुठ बसाणी[1] हो।
अरध नाम कुजर लियो, बाकी अवध घटाणी हो।
गरुड़ छाडि हरि धाइया, पसु जूण[2] मिटाणी हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतीत[3] पिछाणी हो।
मीराँ दासी रावली, अपणी कर जाणी हो। ॥२७४॥

इस पद मे गुरु की चर्चा और पौराणिक गाथाओ का वर्णन मिलता है जिससे सत और वैष्णव, दोनो ही मतो का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

१६

कहो तो गुण गाऊ रे, भजै राम राम सुवा, कहो तो गुण गांऊ रे।
सार की सलियाँ[4] को सूवा, पीजरो बणाऊ रे।
पीजरा मे आव सूवा, हाथ सूँ हलाऊं रे।
घीव कर घबिर सूवा, मो लापसी[5] रधाऊ[6] रे।
आम ही को रस सूवा, घोल घोल पाऊ रे।
कचन कोटि महल मन्दिर, मालिया झुकाऊ रे।
मालिया मे आव सूवा, मोतिडा बधाऊ रे।
बैठक करो तो सूवा, चादणी बिछाऊं रे।
प्रेम ही प्रताप सूवा, झाझरी बजाऊं रे।
जाई जाबूं केतकी सूवा, फूलडा सुँघावूँ रे।
केसर भरियो बाटको सूवा, अक चरचाऊ रे।
मीराँ दासी सूवा राम की राती, चरणा ही चित लगाऊ रे।
॥२७५॥†

---

१ बसा दिया, २ योनि, ३ विश्वास, ४ सीक, ५ गेहूँ से बनाया गया मीठा दलिया, ६ बना पाऊँ।

१७

नहि जाऊ सासरे, माई, म्हाने मिलिया छै सिरजणहार।
सासू हरी सुमरना रे, सुसरो परम सतोष,
जेठ जुगा रो राजवी, रे, पिंव रह्यो निरदोष।
देवर के दोय डीकरी रे, दौन्यौ ही राजकुमारी,
एकै सब जग मोह्यो री, एक रही ब्रह्मचारी।
लाख चौरासी चुडलो रे वा'ला, पहिरियो पिया जी रे काज।
बॉह पकड़ी हरी लै चाल्या, मोहि दिना छै अविचल राज।
साधां मे म्हारो सासरो रे, पिया को बैकुठा बास।
फेरि न काल मे आवस्यां जी, यूँ गावै छै मीरा दास ॥२७६॥†

इस तरह का एक पद गुजराती मे भी मिलता है। 'डीकरी' (पुत्री) जैसे शब्द से भी इस पद की भाषा पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट हो जाता है।

१८

दीजो म्हांने द्वारिका को बास, रूड़ा रणछोड़ जी हो।
सुथान बासो नाम हरि को, माला लिये गुणकार।
सकल तीरथ गोमती रे वा'ला, सावरियां सिरदार।
पपैया ने मेघ पियारो, माछरी मध[1] नीर।
म्हांनै तो गिरिधर ही पियारो, छाड़यो जगत सूँ सीर।
तजियो पीहर, सासरो तजियो, सहियो उपहास।
राणा जी रो बस तजियो, राखो रावल[2] पास।
मथुरा मे हरि जन्म लिया जी, कियो द्वारका बास।
सहस गोप्या रे, बालमो, गावै मीरॉ दास ॥२७७॥

---

१ बीच, २ तुम्हारे।

पाठान्तर १,

द्वारका रो बास दीज्यो, म्हाने द्वारका रो बास।
सुथान बासो नाम हरिको, जिन रो भोज न पार।
सकल तीरथ गोमती रे वा'ला, सावलिया सिरदार।
पपीया ने मेघ प्यारो, मछली जल पास नीर।
म्हाने तो म्हारो साहिब प्यारो, छाड़्यो जगत को आस (पास)।
तजियो पीहर, सासरो तज्यो, सब उपवास।
राणा जी रो पार्स तजियो, राख्यो रावल पास।
गोकुल सूँ प्रभु मथुरा आये, भये द्वारिका बास।
सहस गोप्या रो बालमो रे, गावै मीराँ दास।

१९

द्वारिका को बास हो, मोहि द्वारका को बास।
संख चक्र पद्म हूं ते, मिटे जग त्रास।
सकल तीरथ गोमती मे करत निवास।
सख झालरि झांझ बाजै, सदा सुख की रास।
तजियो देसोबेस, पति गृह तज्यो, सम्पत्ति राजि।
दासी मीराँ सरन आई, तुम्हे अब सब लाजि। ॥२७८॥

पाँचवी पक्ति के द्वितीयार्द्ध का निम्नांकित पाठान्तर भी प्राप्त होता है :—"तजियो राणा राज" ।

उपर्युक्त दोनों पदो मे साम्य विचारणीय है।

स्व० पुरोहित जी के शिष्य और सहयोगी पडित सूर्य नारायण जी चर्तुवदी के अनुसार यह पद किसी "मीराँ दास" कवि का प्रतीत होता है। इसको देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सम्भवत ऐसे "मीराँ दासी" या "दासी मीराँ" प्रयोग युक्त सभी पद इन्ही उपर्युक्त कवि के हो। यह "मीराँ दास" कवि कौन और कहा के थे? इनका रचना काल क्या था ? आदि बातें जाने बिना इस विषय पर कुछ

कहना सर्वथा ही भ्रामक होगा। पद स० १७ और १८ तथा इनके पाठान्तर तथा और भी कुछ पद ऐसे मिलते है जिनमे (मीरा दास) प्रयोग मिलता है। अत इन्ही के आधार पर किसी नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन नही किया जा सकता।

२०

म्हॉरा सतगुरु बेगा आज्यो जी, म्हॉरी सुख री सीर[1] बुहावज्यो[2] जी।
तुम बिछडियॉ दुख पाऊॅ जी, मेरा मन माही मुरझाऊॅ जी।
मै कोयल ज्यू कुरलाऊॅ जी, कुछ बाहर कहि न जणाऊॅ जी।
मोहि बाधण[3] बिरह सतावै जी, कोई कहिया पार न पावै जी।
ज्यू जल त्याग्या मीना जी, तुम दरसन बिन खीना जी।
ज्यू चकवी रैण भावै जी, वा ऊगो[4] भाण[5] सुहावै जी।
ऊ दिन कबै करोला जी, म्हॉरे ऑगण पॉव धरोलॉ जी।
अरज करै मीरॉ दासी, गुरु पद रज की मै प्यासो जी ॥२७९॥†

पद की भाषा शुद्ध जोधपुरी बोली है।

---

१ वह धार विशेष जो सन्तान प्रेम के कारण माता के स्तनो से स्वत फूट निकलती है, २ बहा देना, ३ बाघिन, ४ उदित हुआ, ५ सूर्य।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

ऐसो पिया जान न दीजै हो।
सब सखिया मिलि राखिल्यो, नैनां सुख लीजै हो।
स्याम सलोनी सावरो, मुख देखत जीजै हो।
जिण जिण विधिर्या हरि मिलै, सोही विधी कीजै हो।
चन्दन काला नाग ज्यूँ, लपटाइ रहीजै हो।
चलो सखी री वहां जइयै, वाको दरसन कीजै हो।
बाहु काधै मेलिकै, तन लूमि रहीजै हो।
प्यालो आयो जहर को चरणोदक लीजै हो।
मीराँ दासी वारणै, अपनी कर लीजै हो। ॥२८०॥†

"प्यालौ लीजै हो" पक्ति का शेष पद से समन्वय नही होता। यह पद अधिकाश कीर्तन-मडली के पदो की लय पर ही है।

२

हे मेरो मन मोहना।
आयो नाहि सखी री, हे मेरो मन मोहना।
कै कहूं काज किया सतन का कै कहू गैल भुलावना।
कहा करू कित जाऊं मोरी सजनी, लाग्यो है बिरह सतावना।
मीरा दासी दरसण प्यासी, हरि चरणो चित लावणा ॥२८१॥

३

वारी वारी हो रामा हू वारी, तुम आज्यौ गली हमारी।
तुम देख्यां बिन कल न पड़त है, जोऊ बाट तुम्हारी।

कुण[1] सखी सू तुम रगराते, हम सू अधिक पियारी।
किरपा कर मोहि दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी।
तुम सरणागत परम दयाला, भव जल तार मुरारी।
मीराँ दासी तुम चरणन कों, बार बार बलिहारी। ॥२८२॥

४

वैद को सारो[2] नहि रे माई, वैद को नही सारो।
कहित ललिता वैद बुलाऊ, आवैं नन्द को प्यारो।
वो आया दुख नाहि रहैगो, मोहि पतियारो।
वैद आय कर हाथ जो पकड्यो, रोग है भारो।
परम पुरुष की लहर व्यापी, डस गयो कारो। ॥२८३॥†

इस पद मे मीराँ का नाम कही भी नही आया है। कही कही निम्नाकित दो और पक्तिया भी उपर्युक्त पद मे ही जुडी मिलती है। जिसमे "दासी मीरा लाल गिरधर" का प्रयोग हुआ है।

"मोर चन्दो हाथ ले हरि, देत है झारी।
दासी मीराँ लाल गिरधर, विष कियो न्यारी।"

५

अच्छे मीठे चाख चाख, बेर लाई भीलणी।
ऐसी कहा अचाखती ,रूप नही एक रती।
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचालणी।
झूठे फल लीन्हे राम, प्रेम की प्रतीत[3] जाण।
हरिजू सो बाँध्यो हेत, बैकुन्ठ मे फूलणी।
ऐसी प्रीत करे सोई, दरस मीराँ तेरे जोई।
पतित पावन प्रभु गोकुल, अहीरणी ॥२८४॥

---

१ कौन, २ बूता, ३ विश्वास।

६

प्रभू, मेरा बेड़ा पार बाधान्यो जी।
मैं निगुनी मे गुन नाही प्रभु जी, औगुण चित्त मत लाज्यो जी।
काढ़ खडग राणा जी कोप्या, गरुढ चढ्या हरि आज्यो जी।
विषरा प्याला राणा जी भेज्या, चरणामृत करि पीज्यो जी।
काया नगर मे घेर पड्या छै, ऊपर आयर कीज्यो जी।
मीराँ दासी जनम जनम की, कठ लगाया कर लीज्यो जी ॥२८५॥†

पदभिव्यक्ति असगत है। राणा जी के द्वारा 'खडग' प्रहार की कथा पद की प्रामाणिकता मे विशष सदेह उपस्थित करती है। पद की शैली भी इस सदेह का समर्थन करती है।

७

मेरी कानां[1] सुणज्यो जी करुणा निधान।
रावरो विरद मोय खांड रे, सो लागै परत पराये प्राण।
सगो सनेही मेरो और न कोई, बैरी सकल जहान।
ग्रह ग्रह्यो गजराज उबार्‌यो, बूड न दीनो न जान।
मीराँ दासी अरज करत है, नही जी सहारो आन ॥२८६॥

द्वितीय पक्ति की अभिव्यक्ति स्पष्ट नही है। इस पक्ति मे प्रयुक्त 'परत' शब्द के बदले कही कही पीडित शब्द मिलता है।

८

जोगिया के कहज्यो जी आदेस।
जोगिया चतुर सुजाण सजनी, ध्यावं[2] सकर सेस।
आवूंगी मै नाह रहूगी, रे म्हांरा पिव बिन परदेस।

---

१ कानो से सुनो, ध्यान देकर सुनो, २ ध्यान लगाता है।

करि किरपा प्रतिपाल मो परि, रखो न आपण देस।
माला मुद्रा भेखला[1] रे, बाला खप्पर लूँगी हाथ।
जोगिण होय जुग ढूँढसूं रे,म्हारा रावलिया[2] री साथ।
सावण आवण कहि गया रे, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घस गई रे, म्हांरा आंगलियारी रेख।
पिव कारण पीली पडी रे, बाला जोबन वाली बेस[3]।
दास मीराँ राम भजि कै, तन मन कीन्हौ पेस ।।२८७।।

पद की भाषा प्रमुखत राजस्थानी है। परन्तु अधिकाश क्रिया पदो पर खड़ी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। सम्भवत गेय परम्परा ही इसके लिये उत्तरदायी हो।

९

जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी मैं नाही रहूं रे, कर जटाधारी भेस।
चीर को फोडूँ कथा पहिरू, लेऊगी उपदेस।
गिणते गिणते घिस गई रे, ऊगलियो की रेख।
मुद्रा माला भेखलू, रे खप्पड लेऊ हाथ।
जोगिन होय जुग ढूँढसॅ रे, रावलिया के साथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़।
बात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पॉच पचीसो बस किए, मेरा पल्ला न पकड़े कोय।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, कोई आय मिलावै मोय ।।२८८।।

इस पद पर खडी बोली का प्रभाव और भी स्पष्ट हो जाता है। उपर्युक्त पाठ की द्वितीय पक्ति के उत्तरार्द्ध मे निम्नाकित पाठ भेद भी मिलता है :—

"कर जोगन को भेस।"

---

१ पहन लूँ, वेष धारण कर लूँ, २ पति, ३ वयस।

१०

जोगिया ने कहजो जी आदेस।
आऊगी पण नही रहू, बाला, कर जोगिन को भेस।
प्राण हमारा वहा बसत है, यहा तो खाली खोड।
मात पिता अरु सकल कुटुम्ब सो, रही तिणका ज्यूँ तोड।
दड कमडल गूदड़ी रे बाला, कियो नबेलो सनेह।
प्रीतम अजहू न आइया, म्हारे योही[1] बडो सनेस[2]।
गुरु को सबद कान मे पहिरू, अग विभूति रमाके।
जा कारण मै जगत न जोरै बाला, बालावा रे फसि मै जाके।
पाच पचीसूँ बस कर राखूँ, म्हारी पल्ली न पकड़ो कोय।
मीरॉ व्याकुल विरहणी रे बाला, हरि मिलीया सुख होय ।।२८९।।

उपर्युक्त तीनो पदो के प्रथम अर्द्धाश मे गहरा साम्य हो उठता है। परन्तु जहाँ प्रथम दो पद मे सिर्फ नाथ प्रभाव ही स्पष्ट हो उठता है,वहाँ इस तीसरे पद पर सतमत का ही प्रभाव है। इस पद की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव भी अधिक है।

११

राख कमडल गूदडी रे बाला, कियो नेवलो भेष।
प्रीतम ओज्यूँ[3] नै आइया, यो है बडो अनेस।
गुरु को शब्द कान मे पहिरू, अग विभूति रमाय।
जा कारण मै जगत तज्यो है, भौरं लागी आय।
पाच पचीसा बस करू, पलो न पकडे कोय।
मीरॉ व्याकुल विरहणी, हरि मिल्या सुख होय ।।२९०।।†

यह पद उपर्युक्त तीनो पदो के सम्मिश्रण से बना हुआ गेय रूपान्तर प्रतीत होता है। इस पाठ की प्रथम पक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ यही, २ आशका, ३ फिर से अर्थात् लौटकर।

१२

जोगिया जी दरसण दीजंयो आइ।
तेरे कारण सकल जग ढूँढया, घर घर अलख जगाइ।
खान पान सब फीको लागै, नैणां नीर न माइ[1]।
बहुत दिनां के बिछुरे प्यारे, तुम देख्यां सुख पाइ।
मीराँ दासी तुम चरणां की, मिलज्यो कंठ लगाइ ॥२९१॥

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

सखी मन स्याम सूरत बसी।
मुकुट कुडल करन बसी, मंद मुख पर हँसी।
बावरी कोऊ कहै मो को, कोई कहै कुलनासी।
हस्ती की असवारी[2], पाछै लाख कुतिया भुसी।
तजियो घूँघट लई गाती, सत देख्या खुसी।
सील चोल पहन गल मे, भक्त मारग घुसी।
ओस पानी नाहि पियो, छांह बादर किसी।
दासि मीराँ लाल गिरधर, प्रेम फदे फँसी ॥२९२॥

२

पिया अब घर आज्यो मोरे, तुम मेरे[3] हू तोरे।
मै जन तेरा पथ निहारूं, मारग चितवत तोरे।
अवध बदीती अजहूं न आये, दुतियन सूँ नेह जोरे।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, दरसन बिन दोरे[4] ॥२९३॥

---

१ समाय, २ सवारी का राजस्थानी अपभ्रश, ३ मै, ४ दुखमय।

पद की भाषा प्रधानत. ब्रजभाषा है, यद्यपि दो एक राजस्थानी शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। पद के बीच मे ही "मै जन" का प्रयोग अन्य पदो से सर्वथा पृथक पडता है।

३

कैसे जिऊ री माई, हरि बिन कैसे जिऊ री।
उदक दादुर पीनवत है, जल से ही उपजाई।
पल एक जल कूँ मीन बिसरे, तलफत मर जाई।
पिया बिन पीली भई रे, ज्यो काठ घुन खाय।
औषध भूल न सचरै रे, बाला, बैद फिरि जाय।
उदासी होय बन बन फिरू, रे बिथा तन छाई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, मिल्या है सुखदाई ॥२९४॥

सम्पूर्ण पद से वियोग ही लक्षित होता है, तथापि अतिम पक्ति से मिलन की ही अभिव्यक्ति होती है।

४

मै हरि बिन क्यो जिऊ री माय।
पिय कारण बौरी भयी, जस काठ ही घुन खाय।
औषद भूल न सचरे, मोहि लागो बौराय।
कमठ दादुर बसत जल मह, जल ही ते उपजाय।
मीन जल के बिछुरे तन, तलफि के मर जाय।
पिय ढॅढन बन बन गई, कहु मुरली धुन पाय।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर, मिल गए सुखदाय ॥२९५॥

इस पद की तुलना मे प्रथम पद से पूर्वापर सगति अधिक है।

५

प्रभु बिन ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरि बिन ना सरै माई।
कमठ दादुर बसत जल में, जल से उपजाई।

मीन जल से बाहर कीन्हा, तुरत मर जाई।
काठ लकरी बन परी, काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभ डारि आए, भेसम हो जाई।
बन बन ढूंढत मै फिरी, आली सुध नहि पाई।
एक बेर दरसण दीजै, सब कसर मिटि जाई।
पात ज्यूँ पीरी परी, अरु विपत तन छाई।
दासि मीरॉ लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई।।२९६।।

उपर्युक्त दोनो सम्मिश्रण से बना हुआ पद ही कुछ परिवर्त्तन के साथ स्वतत्र पद के रूप मे चल पडा है। शेष पदाभिव्यक्ति से समन्वय नही होता, यह एक विशेष विचारणीय बात है।

६

मै अपने सैया सग साची।
अब काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कबहिन, नीद निसु नासी।
बेध वार को पार हवैगो, ज्ञान गुह गासी।
कुल कुटुम्ब सब आनि बैठे, जैसे मधुमासी।
दास मीरॉ लाल गिरधर, मिटी जग हॉसी।।२९७।।

उपर्युक्त पद का समर्पण द्योतक पद (स० १) से गहरा साम्य है। दोनो ही पदो पर सत-मत का गहरा प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

परिवार और समाज का गहरा विरोध कई पदो से अत्यन्त सुस्पष्ट हो उठता है तथापि उनके लौट आने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है।

७

राणा जी, सांवरे रग राची।
कोई निरखत कोई हरखत है जी।

कोई करत है हासी, कोई साची।
ताल मृदग बाजै मन्दिर मे, हौ हरि आगे नाची।
मीराँ दासी गिरधर जू की, जनम जनम की जाची ।।२९८।।

पदाभिव्यक्ति से वैष्णव परम्परा का प्रभाव ही सुस्पष्ट हो उठता है।

८

माई मे तो गिरधर के रग राची।
माई हू स्याम के रग राची।
मेरे बीच परो मत कोऊ, बात चहु दिसी माची।
जागत रैनि रहै उर ऊपर, ज्यूँ कचन मणि खाची।
होय रही सब जग मे जाहर, फेरि प्रगट होय नाची।
मिलि निसान बजाय कृष्ण सूँ, ज्यो कछु कहो सो साची।
जन मीराँ गिरधर की प्यारी, मोहबत है नाहि काची ।।२९९।।†

उपर्युक्त पद की भाषा और अभिव्यक्ति दोनो ही विचारणीय है। अभिव्यक्ति मे वह सरस गाम्भीर्य नही जो मीराँ के पदो की विशेषता है। पद की तृतीय पक्ति अर्थ-हीन है। 'जन मीराँ' का प्रयोग पद की प्रामाणिकता मे सदेह की पुष्टि करता है।

९

माई मे तो गिरधर रंग राची।
मेरे बीच पडो मत कोई बात चहू दिस माची।
जो मन सार मेरे मन उपज्यो, ज्यो कचन मणि साँचो।
और सब हीरो हो सिर ऊपर, मै परगट होय नाची।
मुलक[1] निसान बजावा कृष्ण के, जे कोई कहो सोई सांची।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मो मति नही कांची ।।३००।।†

---

१ हँस कर, खुश होकर।

यह पद उपर्युक्त पद (स० ९) का ही गेय रूपान्तर मात्र प्रतीत होता है। पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सगति का अभाव है, इतना ही नही पद की अन्य पक्तिया अर्थहीन भी सिद्ध होती है।

१०

राणाजी मै तो सावरे रंग राची।
साजि सिगार बाध पग घूघरु, लोक लाज तजि नाची।
गई कुमति लई साधु की सगति, भगत रूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुण निसदिन, काल व्याल सो बाची।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब कांची।
मीराँ श्री गिरधरलाल सूँ भगति रसीली जाची ॥३०१॥†

भाव और भाषा दोनो ही के विचार से पद अपने मे पूर्ण है "मीराँ श्री गिरधरलाल" जैसी अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। ऐसा प्रयोग और भी कुछ पदो मे मिलता है, परन्तु ऐसे पदो की प्रामाणिकता विशष सदिग्ध है।

११

मै तो रंगराती गुँसाइयां, मै तेरे रंगराती।
औरो के पिया परदेस बसत हैं, लिख लिख भेजती पाती।
मेरे पिया मेरे निकट बसत है, कह ना सकूँ सरमाती।
सुवा सुवा चोला पहर सखी, मै झरमट खेलन जाती।
खेलत खेलत मिले सांवरे, खोल मिली हिय गाती।
मदवा मी पी सब मदमाती, मै विन पिया मदमाती।
प्रेम मदी का मै इषचाष्या, मै छकी रहू दिन राती।
वह दूल्हा मोहि व्याहन आवै, आप क्रश्न ब्रजवासी।
मीराँ के गिरधर मन मान्यो, मै स्याम सुन्दर की दासी ॥३०२॥

इस पद पर सतमत का गहरा प्रभाव सुस्पष्ट है।

१२

में गिरधर रग राती, सैया मै।
पचरग चोला पहर सखी मै झिरमिट खेलन जाती।
ओह् झिरमिट मा मिल्यो सावरो खोल मिली तन गाती।
जिन का पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजे पाती।
मेरा पिया मेरे हीय बसत है, ना कहू आती जाती।
चदा जायगा सूरज जायगा, जायगी धरणी अकासी।
पवन पाणी दोनूँ हीं जायेगे, अटल रहै अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मगा ले, जगे रह्या दिन राती।
सतगुरु मिलिया सासा भाग्या, सैन बताई साची।
ना घर तेरा न घर मेरा, गावै मीराँ दासी ॥३०३॥

१३

सखी री मै तो गिरधर के रग राती।
पचरग मेरा चोला रगा दे, मैं झुरमट खेलन जाती।
झुरमुट मे मेरा साई मिलेगा, खोल आडम्बर गाती।
चदा जायगा सूरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पावन पाणी दोनो ही जायगे, अटल रहे अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सजोले, मनसा की कर बाती।
प्रेम हटी का तेल बना ले, जगा करे दिन राती।
जिनके पिय परदेस बसत है, लिख लिख भेजे पाती।
मेरे हिय मो माहि बसत है, कहूँ न आती जाती।
पी हर बसूँ न बसूँ सास घर, सतगुरु शब्द सगाती।
ना घर मेरा ना घर तेरा, मीराँ हरि रग राती ॥३०४॥

उपर्युक्त तीनो पदो की भाषा व अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है। तीनो ही पदो की भाषा अपेक्षाकृत अधिक आधुनिक है

और तीनो पर ही सत मत का प्रभाव विशेष रूप से स्पष्ट हो उठा है। यह पद उपर्युक्त दोनो पदो (स० ३०२ और ३०३) के सम्मिश्रण से बना हुआ एक नया रूपान्तर मात्र प्रतीत होता है।)

१४

सांवरे रग राची, राणाजी हू तो।
बाध घूघरा प्रेम का, हू हरि आगे नाची।
एक निरखत है एक परखत है, एक करत मोरी हासी।
और लोग म्हारो काई करसी, हू हरि जी की दासी।
राणो विष को प्यालो भेज्यो, हू तो हिम्मत काची।
मीरॉ चरणा लाग रही छै, साची ॥३०५॥

यह पाठ पहले चार पाठो के ही अधिक निकट पडता है। इसकी भाषा मिश्रित है तथापि राजस्थानी की ओर ही विशेषत झुकी हुई है। भावाभिव्यक्ति मे एक नूतनता है, "हू तो हिम्मत की काची"। जैसी अभिव्यक्ति अन्य प्राय प्राप्त पदो मे मीरॉ पीवत हासी" जैसी अभिव्यक्ति के विरुद्ध पडती है।

विभिन्न पदो का सम्मिश्रण ही इस पद का आधार प्रतीत होता है।

१५

राणाजी हो मै साधुन रग राती।
काहू को पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजती पाती।
मेरो पियो मेरे माहि बसत है, कहि न सकूँ सरमाती।
सहो कसूँमी ओढ दुपट्टी, झुरमुट खेलन जाती।
झुरमुट खोल मिले यदुनन्दन, खोल मिली मिल साती।
और सखी मद पीवन भाई, मै मद की मदमाती।
मै मद पियो पचवटी को, छकी रहूँ दिन राती।
सुन्न सिखर के द्वारे आके, मोहि मिले अविनासी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, जनम जनम की दासी ॥३०६॥

इस पद को विभिन्न भी कुछ परिवर्तन के साथ चला हुआ पदो का सम्मिश्रण ही कहा जा सकता है।

१६

राम तने रग राची, राणा मै तो सावलिया रग राची।
ताल पखावज मिरदग बाजा, साधो आगे नाची रे।
कोई कहे मीरॉ भई बावरी, कोई कहै मदमाती रे।
विष का जो प्याला राणा भर भेज्या, अमृत कर आरोगी[1] रे।
मीरा कहे प्रभु गिरिधर नागर जनम जनम की दासी रे।
॥३०७॥

विभिन्न पदो का सम्मिश्रण ही इस पद का भी आधार प्रतीत होता है।

१७

गोपाल रग राची, मै श्याम रग राची।
कहा भयो जल विषय के खाये, तिनहुते बॉची।
तात मात लोग कुटुम्ब तिन कीनी उपहासी।
नन्द नन्दन गोपी ग्वाल तिनके आगे मै नाची।
और सकल छॉडे के मै भक्ति काछ कॉची।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, जानत झूठी सॉची ॥३०८॥

उपर्युक्त दस पदो मे एक गहरा साम्य है। यहॉ तक कि सरसरी दृष्टि से देखने पर ये सभी पद एक दूसरे के गेय रूपान्तर से प्रतीत होते है। परन्तु इन पर विचार करने से दो शैलियॉ सर्वथा स्पष्ट दीखती है। "रॉची", "सॉची", "नाची" आदि तुकान्त पद एक शैली विशेष के है। ऐसे पदो पर कही कही सतमत का हल्का सा प्रभाव मिल जाता है, फिर भी इनकी भावाभिव्यक्ति प्रधानत वैष्णव-परम्परा से ही प्रभावित है। ऐसे पदो की भाषा भी कुछ राजस्थानी

---

१ खा लिया, यहा होगा पी लिया।

की ओर झुकी हुई है। "राती", "माती", "पाती" आदि तुकान्त पद दूसरी शैली के है। इनकी भावाभिव्यक्ति पूर्वोक्त पदो की अभिव्यक्ति से सर्वथा भिन्न पड़ती है।इन पर सतमत का ही स्पष्ट प्रभाव है इनकी भाषा भी खडी बोली से प्रभावित ब्रजभाषा है।

१८

भीड छाडि बीर बैद मेरे पीर न्यारी है।
करक कलेजे मारी ओखद न लागै कारी।
तुम घरि जावो बैद मेरे पीर भारी है।
बिरहित बिरह बाढ्यो, तातै दु ख भयो गाढो।
बिरह के बान ले बिरहनि मारी है।
चित ही पिया की प्यारी नेक हूँ न होवे न्यारी।
मीराँ तो आजार बाँध बैद गिरधारी है। ॥३०९॥

सूर्यनारायण जी चर्तुवदी के अनुसार यह पद मीराँ का नही अपितु "मीराँ लीला" करन वालो का है। पद की शैली को देखते हुए मै भी निसकोच उनका समर्थन करती हूँ।

१९

हरि बिन कूँण[1] गति मेरी।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मे रावरी चेरी।
आदि अत निज नाव तेरो, हिया मे फेरी।
बरि बेरि पुकारि कहू, प्रभु आरति है तेरी।
यो ससार बिकार सागर, बीच मे घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाधो, बूडत है बेरी।
विरहणी पिव की बाट जोवै, राखिल्यो नेरी[2]।
दासी मीराँ राम रटत है, मै सरण हूँ तेरी ॥३१०॥

---

१ कौन, २ निकट।

पद की भाषा प्रमुखत ब्रजभाषा है। परन्तु "कूँण" "नेरी" आदि दो एक राजस्थानी शब्दो का प्रयोग भी हुआ है। पद की छठी पक्ति मे "बेरी" शब्द का अर्थ स्पष्ट नही होता। बहुत सभव है कि बार बार के अर्थ मे यहां "बेरी" का प्रयोग हुआ हो।

२०

हरि तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राख्यो, तुम बढायो चीर।
भक्त कारन रूप नरहरि, धार्‌यो आप सरीर।
हरिनकस्यप मार लीन्हो, धर्‌यो नाहि न धीर।
बूडते गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुख जहॉ तहॉ पीर। ॥३११॥

अन्तिम पक्ति के उत्तरार्द्ध मे प्रयुक्त "पीर" शब्द निरर्थक ही प्रतीत होता है। बहुत सम्भव है कि "सीर" शब्द का एतदर्थ द्योतक किसी अन्य शब्द का प्रयोग हुआ हो। "सीर" राजस्थानी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ है "साथ" या "साथ देने वाला"। अत अर्थ देखते हुए "सीर" का प्रयोग उपयुक्त ही लगता है। पाठान्तर मे "सीर" का प्रयोग मिलता भी है।

पाठान्तर १,

हरी तुम हरौ जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुरत बढायो चीर।
भगत कारण रूप नरहरी धार्‌यो नाहिन धीर।
बूडतो गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दासी मीरॉ लाल गिरधर, करण कँवल पै सीर।

पाठान्तर मे "सीर" शब्द "सिर" या "मस्तक" के ही अर्थ मे आया है। कहना सम्भव नही कि कौन पाठ प्रामाणिक है।

२१

मन रे परसि हरि के चरण।
सुभग सीतल कवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीन्हे, सखी अपनी शरण।
जिण चरण ब्रह्माड प्रभु परसि लीणो, तरी गौतम घरण।
जिण चरण काली नाग नाथ्यो, गोपी लीला करण।
जिण चरण गोबरधन धार्यो, इन्द्र को गर्व हरण।
दासी मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण। ॥३१२॥

पद की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है। अत प्रत्येक पक्ति का प्रथम शब्द "जिण" न होकर "जिन" होना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

२२

मै तो तेरी सरण परी रे, राम, ज्यूँ जाणे ज्यूँ तार।
अड़ेसठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहि मानि हार।
या जग मे कोई नही आपणा, सुणियौ श्रवण मुरार।
मीरां दासी राम भरोसे, जग का फदा निबार। ॥३१३॥

पद की तृतीय पक्ति का उत्तरार्द्ध अर्थहीन है। बहुत सम्भव है कि "सुणियौ कृष्ण मुरार" पाठ हो। ऐसा होने पर सम्बोधन की पुनुरुक्ति अवश्य हो जाती है, तथापि अर्थ सगति बैठ जाती है।

२३

नहि ऐसो जनम बारम्बार।
का जाणूँ कुछ पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढत छिन छिन घटत पल पल, जात न लागे बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागे, डार।

भौ सागर अति जोर कहिए, अनत उडी बार।
राम नाम का बाध बड़ो उतर परले पार।
ज्ञान चोसर, मडी चोहट्ट, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ मे रची लाजी, जीत भावै हार।
साधु सन्त महन्त ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दास मीराँ लाल गिरधर, जीवणाँ दिन च्यार। ॥३१४॥

पाठन्तर १,

नहि ऐसो जनम बारम्बार।
क्या जानूँ कुछ पुण्य प्रगटे, मानुषा अवतार।
बढ़त पल पल, घटत छिन छिन, जात न लागे बार।
बिरछे के ज्यूँ पात टूटे, लगे नहि पुनि डार।
भव सागर अति जोर कहिए' विषम औखी धार।
सुरत का नर बाध बेड़ा, बेग उतरो पार।
साधु सन्ता ते गहन्ता, चलत करत पुकार।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जी वणो दिन चार।

उपर्युक्त पद सूरदास जी के पद का ही गेय रूपान्तर प्रतीत होता है (देखिये "मीराँ, एक अध्ययन")। पाठान्तर पर सन्त-मत का प्रभाव स्पष्ट है।

२४

यहि विधि भक्ति कैसे होय।
मन की मैल हिये से न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, बाधि मोहि चडाल।
क्रोध कसाई रहत घट मे कैसे मिले गोपाल।
बिलार विषया लालची रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै क्षुधा तरसै, राम नाम न लेत।

आप ही आप पुजाय कै रे, फूलै अंग न समात।
अभिमान टीला किए बहु, कहु जल कहां ठहरात।
जा तेरे हिय अन्तर की जाणे, तासो कपट न बनै।
हिरदे हरि को नाव न आवे, मुख ते मणिया गणै।
हरि हितु सो हेत कर, संसार आसा त्याग।
दासी मीराँ लाल गिरधर, सहज कर वैराग। ॥३१५॥

इस पद पर सन्त-मत का प्रभाव बहुत स्पष्ट है।

२५

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
तात मात भ्रात बन्धु, अपना नहि कोई।
छाडि दई कुल की कान, क्या करेगा कोई।
सतन ढिग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
चुनरी के किए टूक टूक, ओढ़ लीन्ही लोई।
मोती मूँगे उतार, बन माला पोई।
अंसुवन जल सीचि सीचि, प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैलि गई, आनन्द फल होई।
दूध की मथनिया, बडे प्रेम से बिलोई।
माखन जब काढि लियो, छांछ पिये कोई।
आई मै भक्ति काज, जगत देखि रोई।
दासी मीराँ गिरधर प्रभु, तारो अब मोहि। ॥३१६॥

"दासी मीराँ गिरधर प्रभु" प्रयोग इस पद की विशेषता हैं।

२६

मेरे तो राम नाम, दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई, सकल लोक जोई।

भाई छोड़या, बन्धु छोड़या, छोड़या सगासोई ।
साध संग बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
भगत देखि राजी भई, जगत देखि रोई।
प्रेम नीर सीच सीच, विष बेलि धोई।
दधि मथ घृत काढ़ि लियो, डार दियो छोई।
राणा विष को प्यालो भेजियो प्रिय मगन होई।
अब तो बात फैलि गई, जानै सब कोई।
मीरां राम लगन लगी, होनी होय सो होई ॥३१७॥

इस पाठ विशेष मे भी प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "राम" के बदले गिरधर नागर का भी प्रयोग मिलता है। "गिरधर नागर" पाठ ही विशेष रूपसे प्रसिद्ध है क्योकि प्रचलित मान्यतानुसार मीराॅ कृष्ण की की ही उपासिका मानी जाती है।

२७

गोविन्द सूॅ प्रीत करत, तबही क्यूॅ न हटकी।
अब तो बात फैल गई, जैसे बीज बटकी।
बीच को विचार नाहि, छाॅय परी तटकी।
अब चूकौ तो ठौर नाहि, जैसे कला नट की।
जल के बुरी गाठ परी, रसना गुन रटकी।
अब तो छुड़ाय हारी, बहुत बार झटकी।
घर घर मे घोल मठोल बानी, घट घट की।
सब ही कर सीस धरि, लोक लाज पटकी।
मद की हस्ती समान फिरत, प्रेम लटकी।
दासी मीराॅ भक्ति बुन्द, हिरदय बिच गटकी ॥३१८॥

यह पद भी सूरदास जी के पद का ही गेय रूपान्तर भर प्रतीत होता है। (देखिये मीराॅ, एक अध्ययन)।

२८

सखी री लाज बैरन भई।
श्री लाल गुपाल के संग्, काहे नाहि गई।
कठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कँह नई।
रथ चढाय गोपाल लैगी, हाथ मीजत रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिरह मे तन तई।
दास मीराँ लाल गिरधर, बिखरै क्यो ना गई।।३१९।।†

२९

सखी मोहे लाज बैरन भई।
चलत गुपाल लाल पिय के, सग क्यो ना गई।
चलन चाहत गोकुल ही तें, रथ सजायो नई।
बिरह व्याकुल होय सजनी, हाथ मल मल रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिदर क्यो ना गई।
लेन अब संदेश पिय को, काहे पठऊँ दई।
कूबरी संग प्रीति कीन्ही, मोहे माला दई।
दास मीराँ लाल गिरधर, प्रान दछना दई। ।।३२०।।

पद की चतुर्थ और छठी पक्ति मे निम्नाकित पाठान्तर मिलतेहै।

चतुर्थ पंक्ति. "रुकमनी संग जाइबे को, हाथ मीजत रही।"
छठी पक्ति. "तुरत लिखि संदेस पिय को, काहि पठऊॅ लई।"

दोनो ही पाठो मे "दास मीराँ" प्रयोग मिलता है, यह विचारणीय है।

३०

अब तो हरि नाम लौ लागी।
सब जग को यह माखन-चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी।

कह् छोडी वह् मोह्न मुरली, कह् छोडी सब गोपी।
मूँड मुँडाई डोरि कह् बाधी, माथे मोह्न टोपी।
मातु जसुमति माखन कारन, बाध्यो जाको पांव।
श्याम किसोर भये नव गोरा, चैतन्य तांको नांव।
पीताम्बर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसे।
दास भक्त की दासी मीराँ, रसना कृष्ण रहे। ॥३२१॥

कहा जाता है कि यह् पद मीराँ ने महाप्रभु चैतन्य देव को सम्बोधित कर बनाया था। अद्यावधि प्राप्त इतिहास के आधार पर मीराँ चैतन्य देव के समकालीन नही ठह्रती। पद की अन्तिम पक्ति भी विशेष विचारणीय है। पद से व्यक्त होती भावना के आधार पर महाप्रभु चैतन्य स्वयं ही कृष्ण के अवतार सिद्ध होते है, परन्तु अन्तिम पक्ति के अनुसार "दास भक्त" सिद्ध होते है। यह् "दास भक्त" कौन है? "मीरा दास" नाम से लिखने वाले और इस "दास भक्त" मे भी एक रूपता हो सकती है या नही। यहाँ 'दास' का प्रयोग सभी भक्तो के लिये हुआ है, यह् विशेष विचारणीय है। अभिव्यक्ति के आधार पर, मेरे विचार से, "दास भक्त" सम्बोधन किसी विशेष भक्त को ही लक्षित करता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

सूँ करु राना जी मारो चितड़ूँ चुरोये मारे मनहु बेधाये।
करवा ना सूझे अगने धर नारे काम, भोजन न भावै नैन निद्रा हराम।
जल जमनानो काठे ऊभा बलिभद्र वीर, बसरी बजावे वालो जमुना ने तीर।
अभी बजारे गजरथ चाल्यो रे आय, स्वान भसे तो तेनी सख्यान थाय।
झख रे मारे रे पेला दुर्जन लोग, चितडूँ आटयूँ तो तेनी सिखामन फोक[1]।
ज्यॉ स्यामलियो गिरधारी त्यॉ मारी आस, हरिखी निरखी गया मीरा दास।
॥३२२॥†

पदभिव्यक्ति मे पूर्वापर संबध का निर्वाह नही हुआ है।

२

म्हारे घेरे आवो सुन्दर श्याम, सोंले सनगार पेरो शोभता रे।
मोतिडे मॉग भरावुॅ, वेणी गुॅथावुॅ, शोभे ढलकती हु[2] तो ऊभी राजद्वार।
ऊॅची हुं चहु ऊभेड़री रे, जोऊ पातलियानी बाट।
बेग पधारो म्हांरा ओ साअेबा, तारे बेसणे मॉटु पाट[3]।
मोर मुगट शोहामणो रे, गले गुँजा नो हार।
मुख मधुरी तारे हो मोरली रे, तारी चालतणी छे बलीहार।
दास मीरॉ बाई गिरधर नागर, हर्खी निर्खी गुण गाय।
कलयुग मॉ अये अवतरियॉ[4], मने राखोनी चरणे करो साथ॥३२३॥ †

पूर्वापर सबध का निर्वाह इस पद मे भी नही हुआ। पद की अन्तिम पंक्ति प्रामाणिकता के विरुद्ध गवाही देती है।

---

१ व्यर्थ, २ मै, ३ पीढ़ा, ४ मै हम,

३

विट्ठल वाहेला आवोरे, वाटडी जाऊ हरखि निरखि मन मोहियुँ रे
वाही गाऊ। टेक।
वाहला म्हारा रसोई बनावी छे, सारी[१] की धी[२] छे सुन्दर थारी रे।
वाहला म्हारा केसार पिरसियो छे, प्रीते प्रभु जमो[३] पूरन प्रीत रे।
वाहला म्हारा दालि भात ने कढी, वडी सामाग्री सव की धी रे।
वाहला म्हांरा राइता शाक,पापड छे सारा[४] तम जमो प्रीतम मारा रे।
वाहला म्हांरा शरमाशो नही वारू कई कहे जो खाहुं खारुं रे।
वाहला म्हांरा कनक नी झारी भरि लाई तमने आचमन लेव रावुँ रे।
वाहला म्हारा मुखवास[५] लावी छूँ सारो, तमे उठो सेजे पधारो रे।
वाहला म्हांरा हेते रहो भुज पास, गुण गाय तेरी मीरा दास रे॥३२४॥†

ऐसी हल्की भावाभिव्यक्ति वाले पदो की प्रामाणिकता सर्वथा अमान्य है। (देखे मीरा एक अध्ययन)।

४

जेने मारा प्रभुजी ने भक्ति न भावे रे, तेंदे घर सीद जइये रे।
जेने घर सन्त पाहुनो न आवे रे, तेने घर सीद जइये रे।
स्वसुरो अमारो अग्नि नो भड़को, सासू सदानी सूली रे।
एनी प्रत्ये मारु काई ना चाले रे, एने आँगनिये नाखूँ पूला रे।
जेठानी हमारी भवरानु जालु, देयरानी तो दिल मॉ दाजी रे।
नान्ही ननद तो मो मचोकडे ते भाग्ये अमारे कर मे पाजी रे।
...............,ते बलता मॉ नाके, छे वारी रे।
मारा घर पछुवाड़े सीद पड़ी छे, बाई तु जीती हुं हारी रे।

---

१ अच्छी, २ किया है, ३ भोजन करो, ४ अच्छा, ५ भोजनोपरान्त मुखशुद्धि हेतु पान आदि।

तेने खुणे बेसी ने मै तो झीनुँ कातिउं रे, ते नथि राख्युँ काई काचुँ रे।
दासी मीरा बाई गिरधर गुन गावे, तारा आँगनिए माँ थेइ थेइ नाचुँरे ।
॥३२५॥†

उपर्युक्त पद की प्रथम दो पक्तियाँ शेष पद से सर्वथा भिन्न पडती है। इन दो पक्तियो को छोड कर शेष पद से एक निम्न स्तर के घरेलू जीवन का ही चित्र स्पष्ट हो उठता है। ऐसे पदो की प्रामाणिकता आमन्य ही प्रतीत होती है––(देखे,मीराँ,एक अध्ययन) पद की अन्तिम पक्ति से भी अन्योक्ति ही स्पष्ट हो उठती है।

५

भजलो नी सन्तो भजला नी साधो, रामजी बिन्ना कैसो जीवन रे।
तन तो बनाऊ तम्बूरो जीवन नो तार तनाऊ र् राम।
बन बन बाजे घूघरा, जीवने लाइ लडाऊं राम।
आँगनिये अनियारा आटला (?) मन्दिर लीटया दीसे राम।
शेर अनाज ने सेवता जीवडा जाता ने हीसे राम।
काया ने आना आविया, ज्यो पाछा न पुरे राम।
सात सहेली ना झूमख मा, जीवने आगल बरावे राम।
तल तल होमिया, जरा आज्ञा न मोड़ूँ राम।
जीवड़ो जाय तो आवा देऊ, हरी ने भक्ती ना छोड़ूँ राम।
नी ने किनारे नैने नीर बहे बडाऊ राम।
कान्ह जी ने हाथ नी रेखा ड़े,बिन चम्पे कलियो आवे राम।
दास मीरा बाई नी बिनती, डाकुर दासी तुझ गहाऊ राम॥३२६॥†

पद में पूर्वापर सम्बन्ध का अभाव है।

उपासना खण्ड

वैष्णव प्रभाव द्योतक पद

निर्वेदाभिव्यक्ति

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

थोडी थोडी पावो गिरधारी लाल जी, मोली[1] म्हांने आवै[2]।
नदन बन सूँ बूँटी आई, जोग ध्यान दरसावै।
या बूटी दुरलभ देवन के, सेस सहस्र मुख गावै।
शिव बिरचि जाको ध्यान धरत है, वेद पुरान सुनावै।
मीराँ तो गिरधर रग राची, भक्ति पदारथ पावै ।।३२९।।

२

म्हारो मनडो लाग्यो हरि सूँ, में अरज करु अतर सूँ।
माधुरि मूरत पलक न बिसरु, सोले हिरदै धरसूँ।
आवन कह गये अजहू न आये, बिन दरसण मै तरसूँ।
म्हारो जनम सुफल हुयो,जा दिन हरि के चरण परसूँ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तन मन अरपण करसूँ ।।३३०।।

पद की तृतीय पक्ति से वियोग लक्षित होता है।

३

मै थारे गुण रीझी हो रसिक गोपाल।
निस बासर मोय आस तिहारी, दरसन द्यो नन्दलाल।

---

१ नशा, २ चढता है।

सो मद भगत करो जी न साधो, मत बिसरो नन्दलाल।
काहू के चदो काहू के मदो, काहू के उर मे माल।
प्रेम भरी मीराँ जिन गरजै, हिरदै गिरधर लाल।
(येक) घडी घडी पल मोय़े जुग सम, बीतत हो गई हाल बेहाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, छुट गई जजाल ॥३३१॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है।

४

बाना[1] रो बिडद[2] दुहेलो रे।
बाना पहर कहा गरबायो, मुक्ति न हामी खेलो (रे)।
बाना रो प्रण-प्रह्लाद उबार्‌यो, बैर पिता सो गेल्यो (रे)।
आगा धर पीछा मत ताको, दकतर नाहि चढैलो (रे)।
मीराँ जी ने भक्ति कमाई, जहर पियालो गेल्यो (रे)।
॥३३२॥†

श्री सूर्यनारायण जी चतुर्वेदी के मतानुसार यह पद सम्भवत मीराँ लीला करने वालो का है। "मीराँ जी ने भक्ति कमाई" जैसी अभिव्यक्ति के आधार पर इस मत की पुष्टि होती है।

५

हरि से गरब किया सोई हारा।
गरब किया रतनागर सागर, जल खारा कर डारा।
गरब किया लकापति रावण, टूक टूक कर डारा।
गरब किया चकवे चकवी ने, रैन बिछोहा डारा।
गरब किया बन की चिरभी ने, मुख कारा कर डारा।

---

१ वेश भूषा, २ यश।

इन्द्र कोप किया ब्रज ऊपर, नख पर गिरिवर धारा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारा। ॥३३३॥†

चतुर्वेदी जी के मतानुसार इस पद की प्रामाणिकता भी सदिग्ध ही है, क्योकि शैली मे गहरा अन्तर है। मै भी चतुर्वेदी जी का समर्थन करती हूँ।

६

राणा जी करमारो सगाती[1], कुल मे कोई नही।
एक तो मात रे दोय दोय डीकरा, ज्या की न्यारी न्यारी भात[2]।
(वाकी न्यारी[3] न्यारी करमा रेख)।
एक तो राजाजी री गद्दी बैठिया, दूजो हलर बैल भर तो पेट।
एक तो भाखा रे दोय दोय डीकरी, ज्या की न्यारी न्यारी भात।
(वाकी न्यारी न्यारी कामा रेख)।
एक तो मोतियन माग भरावती, दूजी घर घर की पनिहार।
एक तो गऊ रे दो दो बछड़ा, ज्याकी न्यारी न्यारी राणा भांत।
(वाकी न्यारी न्यारी करमां रेख)।
एक तो महादेवजी रे मदिर नादियो, दूजो वणजारारे हाथ।
एक तो कुम्हार रे दोय दोय मटकिया,ज्याकी न्यारी न्यारी राण भात।
(ज्याकी न्यारी न्यारी करमा रेख)।
एक महादेव जी रे मदिर जल, चढ़े दूजी चभारा रे हाथ।
राणा जी करमां रो सगाती, जग मे कोऊ नही ॥३३४॥†

सम्पूर्ण पद मे मीराँ का कही वर्णन नही है। "राणाजी" जैसे सम्बोधन के कारण सम्भवत मीराँ का कहा जा सकता है, परन्तु यह पहलू बहुत हल्का जान पड़ता है। शब्द योजना अन्य पदो के अनुकूल नही पड़ती। पद को प्रक्षिप्त मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

---

१ साथी, २ भाँति, तरह, ३ भिन्न भिन्न।

७

साधू म्हांरे आइया हेली, वे गिरधर जी रा प्यारा।
चरण धोय चरणामृत लेस्या, (हे) कलमल मेटन हार।
प्राण तो अति प्रिय लागै, (हे) कबहुन करस्या न्यारा।
प्रभु कृपा कीनी अति (मो) पर, सुधार्‌या जनम हमारा ॥३३५॥†

यह पद मीरॉ का है, ऐसा कही से भी स्पष्ट नही होता। चतुर्वेदी जी "प्रभु कृपा किनी अति" के बदले "मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर" का व्यवहार करना उत्तम समझते है जिसका कोई कारण नही देते। ऐसा होने से प्रामाणिक पदो को छॉट लेना और भी कठिन हो जाता है। ऐसे पदो को मीरॉ के नाम पर चलाने का प्रयास निरर्थक ही प्रतीत होता है।

८

बड़े घर ताली लागी, रे, म्हारा मन री डणारथ भागी रे।
छीलटिये म्हारो चित नही रे, डाबरिये कुण जाव।
गगा जमना सूँ काम नही रे, मै तो जाय मिलूँ परियाव।
हाल्या मोल्या सूँ काम नही रे, मै तो जाय करु दरबार।
काच कथीर सूँ काम नही रे, म्हांरे हीरा रो व्योपार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो समंद सूँ सीर।
अमृत प्याला छाडि कै, कुण पिवै कडवी नीर।
पीपा को प्रभु परचो दीनो, दिया रे खजीना पूर।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, घणी मिल्या छै हजूर ॥३३६॥

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है।

९

आंवो सखी रली करां दे, पर घर गवण निवारि।
झूठो माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति।

झूठा सब आभूषण री, साची प्रिया जी री प्रीति।
झूठा पाट पटम्बरा रे, झूठा दीक्खनी चीर।
साची पिया जी री गूदडी, जामे निरमल रहे सरीर।
छप्पन भोग बुहाइ दे रे, इन भोगिन मे दाग।
लूण अलूणो ही भलो है, अपने पियाजी के साग[1]।
देखि विराणे निवाण कूँ हे, क्यूं उपजावे खीज[2]।
कालर[3] आपणो ही भलो है, जामे निपज्वै[4] चीज।
छैल विराणे लाख को है, अपणे काज न होई।
ताके सग सिधारता है, भला कहेसी न कोई।
जाके सग सिधारता हे, भला कहे सन कोई।
अविनासी सूँ बालमा हे, जिन सूँ साची प्रीत।
मीराँ को प्रभु मिलिया हे, ऐसी ही भगति की रीत ॥३३७॥

पद से व्यक्त होती भावनाओ का अन्य भावाभिव्यक्ति से कोई समन्वय नही होता, पदाभिव्यक्ति मे भी सगति नही है। सम्भवत कीर्तन मडली का ही कोई गीत हो।

१०

राम मोरी बाहडली जी गहो।
या भव सागर मझधार मे, थे ही निभावण हो।
म्हारे ओगण[5] धणा[6] छै, हो प्रभु जी थे ही सहो तो सहो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज बिदर की बहो। ॥३३८॥

कही कही प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "राम" सम्बोधन के बदले "श्याम" सम्बोधन भी मिलता है।

---

१ मारवाडी का शब्द है 'सागे' जिसका अर्थ है 'साथ'। यहाँ लय मिलाने के लिये ही 'सागे' का 'साग' हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता है, २ क्रोध, ३ कुरूप, ४ उत्पन्न हो, ५ अवगुण, ६ बहुत।

पाठान्तर १,

बाह्डली जो गहो राम जी, म्हारी बाह्डली जो गहो।
भवसागर की तीक्षणधारा, थेई हो न नीमो (निमो)[१]।
म्हे तो छा ओगण का भरिया, थेई हो न सहो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर विडद की लाज गहो।

पद की द्वितीय पक्ति का उत्तरार्द्ध अस्पष्ट है।

११

सूरत दीनानाथ सो लगी, तू तो समझ सुहागण सुरता नार।
लगनी लहगो पहर सुहागण, बीती जाय बहार।
धन जोवण है पावणा री, मिलै न दूजी बार।
राम नाम को चुडलो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार।
नक बेसर[२] हरि नाम की री, उतर चलोनी परले[३] पार।
ऐसे बर को क्या करू, जो जन्मे और मर जाय।
बर बरिए एक सावरो री, मेरो चुडलो अमर हो जाय।
मै जान्यो हरि मे ठग्यो री, हरी ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मोरचा री, छिन मै गोप्या छै विगोय।
सुरत चली जहा मै चली रे, कृष्ण नाम झकार।
अविनासी की पोल पर जी, मीराँ करै छै पुकार ॥३३९॥†

पद की प्रथम दो और दो पक्तियों से सतमत का प्रभाव सुस्पष्ट हो जाता है। बीच की पक्तियाँ असम्बद्ध है। पद का प्रारम्भ होता है उपदेशात्मक शैली से, परन्तु अन्त होता है व्यक्तिगत भावनाओ की अभिव्यक्ति मे। ऐसे पदो की प्रामाणिकता विशेष रूपेण सदिग्ध ही जान पडती है।

---

१ निर्वाह कर दिया, २ नथ, ३ उस पार।

१२

सब जग रुठडा, रुठण द्यो, येक राम रुठो नहि पावै।
गरभ[1] कियौ रतनागर सागर, नीर खारो कर डार्यो।
गरभ कियौ उन चकवा चकवी, रेण बिहोहो[2] पार्यो।
गरभ कियौ उन वन की कोयल, रूप स्याम कर डार्यौ।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, हरि के चरण तन वार्यौ॥३४०॥

पद मे पूर्वापर सगति का अभाव है। सम्भवत यह कोई स्वतत्र पद न होकर पद स० ५ की ही कुछ पक्तियो का रुपान्तर है।

निर्वेद

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

अरे मै तो ठाढी जपूँ रे राम माला रे।
मै तो जपती नांव मेरे सायब का, आण मिलो नन्दलाला रे।
हाथ सुमरणी काख कूबडी, ओढ रही मृग छाला रे।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, ओढे लाल दुसाला रे।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, भगतन के प्रतिपाला रे॥३४१॥

२

ज्याँरा[3] चित चरणा मे लागा, वे ही सबेरे जागा।
पहले भूप भरतरी जागा, शहर उजीणी लागा।
सुणा सुणां बचन साहब सतगुरु का गोपीचन्द उठ भागा।

---

१ गर्व, २ वियोग, ३ जिनका।

साहब सैन बलखारा राजा, बाण बिरहरा लागा।
आठ पहर कबीरा जागा, मरण जीवन भय भागा।
राणा रुस्या भय मोरे नाही, चित साहब से लागा।
मीराँ बाई तो शरणे आया, लोक लाज भय त्यागा ॥३४२॥

पद से सत मत का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है।

३

माई म्हारे निरधन रो धन राम।
खाय न खूटै चोरन लूटै, विपति पड्या आवै काम।
दिन दिन प्रीति सवाई दूणी, समरण आगे याम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बिसराम ॥३४३॥†

पाठान्तर १,

माई म्हारे निरधन को धन राम।
खाय न खूटे, चोर न लूटे, विपत पड्या आवै काम।
दिन दिन प्रीत सवाई दूणी, सुमभरण सूँ म्हारै काम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणकमल बिसराम[१]।

उपर्युक्त दोनो पाठ "पायो जी मै तो राम रतन धन पायो" पद के ही गेय रुपान्तर प्रतीत होते है।

४

भजु मन चरण कंवल अविनासी।
जेताई[२] दीसे धरीन गगन बिच, तेताई[३] सब उठि बासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हे, कहा लिये करवत कासी।
इस देही का गरब न करना, माटी मे मिल जासी।

---

१ विश्राम, २ जितने ही, ३ उतने ही।

यो ससार चह्र की बाजी, साझ पड्या उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहरया, घर तजि भयो सन्यासी।
जोगी होय जुगुति नही जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करो अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फांसी ॥३४४॥

उपर्युक्त पद पर सत मत का प्रभाव सुस्पष्ट है।

५

लगे रहना, लगे रहना, हरी भजन मे लगे रहना।
साहेब का घर दूर है रे, जैसी लगी खजूर।
चढै तो चाखे प्रेम रस, पडे तो चकना चूर।
क्या बक्तर का पहनना रे, क्या ढालो की ओट।
सूरे पूरे का पारखा रे, लडी घणी से जोर।
कान्ह कटारी बडी रे गुरु गोविन्द तलवार।
धनुष्य रूपी माला बाध वो, कबू न लागे द्वार।
हाड चाम की देह बनी रे, नव नाड़ी दश कोर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लगी भर्म की चोट ॥३४५॥†

पद की पहली तीन और अतिम दो पक्तियो से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है। पद का मध्याश अर्थहीन है। ऐसे पदो की प्रामाणिकता मे सदेह का होना सहज है।

६

भजन भरोसे अविनासी, मै तो भजन भरोसे।
जप तप तीरथ कछूए न जाणूँ, करत मै उदासी रे।
मत्र न जत्र कछुए न जाणूं, वेद पढ्यो न गई कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल की हूँ दासी ॥३४६॥

७

भजन बिना जिवडा दुखी, मन तू राम भजन करी ले।
जीव तूँ जायगा जरुर, मन तू राम भजन करीले।
लाख रे चौर्यासी फेरा फिरोगे, जीव जन्मी जन्मी भरे।
माता पिता तेरा दास नें[१] बन्धु वाल्हे, कारज कछु ना सरे।
हस्ती ने घोडा माल खजाना, धन भडार भर्यो घर मे।
बाइ मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, अरे मेरो चित भजन मे धरे।
॥३४७॥

उपर्युक्त पद की भाषा पर गुजराती प्रभाव 'वाल्हे' आदि स्पष्ट है।

८

तुम सुनो दयाल म्हांरी अरजी।
भौ[२] सागर मे बही जात हूँ, काढो तो थारी मरजी।
यो ससार सगो नही कोई, साचां रघुवर जी।
मात पिता और कुटुम्ब कबीला, सब मतलब के गरजी।
मीराँ की प्रभु अरजी सुन लो, चरन लगाओ थांरी मरजी॥३४८॥

९

जग मे जीवणा थोड़ा रे, राम कुण करे जजार।
मात पिता तो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कई रे खायो कइ रे खरचियो, कइ रे कियो उपकार।
दिया लिया तेरे सग चलेगा, और नही तेरी लार[३]।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भज उतरो भव पार॥३४९॥

---

१ गुजराती शब्द जिसका अर्थ है 'और', २ भव, ३ पीछे।

१०

काय कूँ न लियो तब तू काय कूँ न लियो।
राम जी को नाम तब तू काय कूँ न लियो।
नव मास तू ने उदर मे राख्यो।
झूलणे झुलाअे, तू ने पारणे[1] पोढायो।
बडो रे भयो तब तू कुल लजायो।
गुनका[2] को बेटा गली माही डोले।
पिता बिन पुत्र ए गुनका को कहायो।
बाई मीराँ के प्रभु तिहारा भजन बिना।
आवो रुडो मन खोवे ऐले[3] गुभायो ॥३५०॥

पदाभिव्यक्ति मे असगति है। भाषा पर गुजराती प्रभाव है। पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

११

भजले रे मन गोपाल गुणा।
अधम तरे अधिकार भजन सूँ, जोइ आये हरि की सरणा।
अविस्वास तो सखि बताऊ, अजामेल, गणिका, सदना।
जो कृपालु तन मन धन दीन्हो, नैन नासिका मुख रसना।
जाको रचत मास दस लागे, ताहि न सुमिरौ एक दिना।
बालापन सब खेल गमायो, तरुण भयो जब रुप घना।
वृद्ध भयो जब आलस उपज्यो, माया मोह भयो मगना।
गज अरु गीध हूँ तरे भजन सूँ, कोऊ तर्‌यो नही भजन बिना।
धना भगत पीपा मुनि सबरी, मीराँ की हु करो गणना ॥३५१॥†

अन्तिम पक्ति के आधार पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि पद मीराँ द्वारा रचित नही।

---

१ पालने, २ गनिका, ३ मारवाडी मे शब्द है 'अहला' जिसका अर्थ है 'व्यर्थ'।

१२

राम कहिये रे गोविन्द कहि मेरे।
ककर हीरा एक सरसा, हीरा किस कूँ कहिए रे।
हीरा पण तो जब ही जाँणूँ, महगा मोल बिकइए रे।
कोयल कागा एक सरसा, कोयल किस को कहिए रे।
कोयलपण तो जब ही जाणूँ, मीठा बचन सुनाइये रे।
हसा बगुला एक सूरीखा, हसा किस कूँ कहिए रे।
हसा पण तो जद ही जाणूँ, चुग चुग मोती खइये रे।
जगत भगत के आवरे है, भगत किसकूँ कहिए रे।
भगत पणो तो जबही जाणूँ, बोल सभी का सहिए रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा चित दइए रे।
द्वारका के ठाकुर के सरण मे, जाकर रहिए रे ॥३५२॥

१३

रमइया बिन या जिवड़ो दु ख पावै, कहो कुण धीर बँधावै।
या ससार कुबुध[1] को माडो[2], साध सगति नही भावै।
राम की निन्दा ठाणै, करम ही करम कुमावै[3]।
राम नाम बिनु मुकुति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध सगति कबहू न जावे, मूरख जनम गवावै।
मीराँ प्रभु गिरधर के सरणे, जीव परम पद पावै ॥३५३॥†

पद की पाँचवी पक्ति मे पुनरुक्ति है। प्रथम पक्ति को वियोग द्योतक पदो मे प्राप्त पक्ति का ही रुपान्तर कहा जा सकता है। इस पक्ति से व्यक्त होने वाली वियोग वेदना का कोई आभास शेष पद पर नही।

१ कुबुद्धि, पाप, २ पात्र, ३ कमाता है।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

बसो मोरे नैनन मे नन्दलाल।
मोहनी मूरत सावरि सूरति, बनै नैन विसाल।
अधर सुधारस मुरलि राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्र घटिका कटि तट सोभित, नूपुर शब्द रसाल।
मीरॉ प्रभु सत सुखदाई, भक्त वछल गोपाल ॥३५४॥

पद की भाषा शुद्ध साहित्यिक ब्रजभाषा है। यह देखते हुए अन्तिम पक्ति मे व्यवहृत "बछल" शब्द अनुपयुक्त ठहरता है "बछल" शब्द के कारण लय भग भी होता है। अत "बछल" के बदले "वत्सल" का प्रयोग ही अधिक युक्तियुक्त होगा।

२

मेरो मन राम ही राम रटै रे।
राम नाम जप लीजै प्राणी, कोटिक पाप कटै रे।
जनम जनम के खत जू पुराने, नामही लेत फटै रे।
कनक कटोरे इम्रिता भरियो रे, पीवत कौन नटै रे।
मीरॉ कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटै रे ॥३५५॥†

पद की तीसरी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर संबंध नही बैठ रहा है।

३

नैया मेरी हरी तुम ही खवैया, तुमरी कृपा ते पार लगैया।
गहरी नदिया नाव पुरानी, पार करो बलभद्र जू के भैया।
अजमिल गज गनिका तारी, शबरी अहिल्या (द्रोपदी) लाज रखैया।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार तुमरे ब्राल गैया।
॥३५६॥†

चतुर्थ पक्ति का उत्तरार्द्ध अशुद्ध है।

४

राम नाम रस पीजै मनुआ, राम नाम रस पीजै।
तज कुसग सतसग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजै।
काम क्रोध मद लोभ मोहँ कूँ, चित से बहाय दीजै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताही के रग भीजै ॥३५७॥ †

उपर्युक्त पद मे "राम" गिरधर नागर" दोनो ही सम्बोधन का प्रयोग हुआ है यह विचारणीय है।

५

मेरा बेडा लगाय दीजो पार, प्रभु अरज करु छूँ।
या भव मे मै बह्रुत दु ख पायो, ससा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख पार।
यो ससार सब बह्यो जात है, लख चौरासी धार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, आवागमन निवार ॥३५८॥†

प्रथम पक्ति मे "करु छूँ" क्रिया का प्रयोग शेष पद की शुद्ध ब्रज भाषा से सर्वथा भिन्न पडता है।

६

कृष्ण करो जजमान, प्रभु तुम कृष्ण करो जजमान।
जाकी कीरति बेद बखानत, साखी देते पुरान।
मोर मुकुट पीताम्बर शोभत, कुडल झलकत कान।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, दे दर्शन को दान ॥३५९॥†

पद की प्रथम पक्ति सर्वथा निरर्थक है। शेष पद वर्णनात्मक है। तृतीय पक्ति अन्य पदो मे भी हूबहू इसी रूप मे मिल जाती है।

७

धन आज की घरी, सतसंग मे परी।
श्री मदभागोत श्रवण सुनी, रसना रटत हरी।

मन डूबत लीला सागर मे, देही प्रीति धरी।
गुरु सतन की मोहनि सूरति, उर बिच आई अरी।
मीराँ के प्रभु हरी अविनासी, सरणौ राखि हरी ॥३६०॥

वैष्णव और सतमत दोनो का ही प्रभाव स्पष्ट है।

८

डब्बा मे सालगरम बोलत क्यो नहियाँ।
हम बोलत तुम बोलत नाहि, काहे को मौन धरैयाँ।
यह भव सागर अगम भरी है, काढ़ लेहूँ गहि बैयाँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम्ही मोरे सैयाँ ॥३६१॥ †

पदाभिव्यक्ति असगत है।

९

तुम बिन स्याम कौन सुने (गो) मेरी।
ठाढी खेवटणी अरज करत है।
मलवा ने नाव पछिम फेरी।
नदिया गहरी नाव पुराणी।
अध पर बीच भंवर ने घेरी।
बोदी है प्रभु पार लगावो।
डूब जाय तो कहा रहै तेरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर।
कुल को त्याग शरण लिई तेरी। ॥३६२॥ †

पदाभिव्यक्ति स्पष्ट नही है।

१०

काहे को देह धरी, भजन बिन काह को देह धरी।
गर्भवास की मास दिखाई, बाकी पीव लुरी।

कोल[1] बचन कर बाहर आयी, अब तुम भूल परी।
नीब तन गारा बजे बधाई, कुटुंब सब देख डरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जननी भार मरी ॥३६३॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही हैं।

११

अब कोऊ कछु कहो दिल लागा रे।
जाकी प्रीत लगी लालन से, कचन मिला सुहागा रे।
हसा की प्रकृत हसा (ही) जाने, का जाने मर कागा रे।
तन भी लागा, मन भी लागा ज्यो बाभण गल धागा रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भाग हमार जागा रे ॥३६४॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। पद मे पूर्वापर सबन्ध का भी निर्वाह नही हुआ है। सघर्ष द्योतक पदो मे भी एक पद ऐसा ही मिलता है। बहुत सम्भव है कि यह पद उसका गेय रुपान्तर मात्र हो।

१२

करम की गति न्यारी सन्तो, करम की गति न्यारी।
बडे बडे नयन दिये मरधन कु, बन बन फरत उधारी रे।
उज्वल वरन दीनी बगलन कु, कोयल कर दीनीकारी रे।
औरन दीपन जल निरमल कीनो, समुदर कर दीनी खारी रे।
मुरख कु तुम राज दियत हो, पण्डित फरत भिखारी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागुन राना जी तो कान बिचारी रे।
॥३६५॥

१३

भजन भरोसे अविनाशी, मै तो भजन भरोसे अविनाशी।
जप तप तीर्थ कछुए न जाणुं फरत मे उदासी रे।

---

१ कौल, बचन।

मन्त्र ने जन्त्र कछुए न जाणुं बेद पढ्यो न गै काशी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की हूँ दासी ॥३६६॥

१४

कोई ना जाने हरिया तारी गति कोई ना जाने।
मिट्टी खात मुख देखा जसोदा चोदह भुवन भरिया।
पडी पाताल काली नागनाथ्यूँ सूरन शशी डरिया।
डूबत ब्रज राख लियो है करे गोबरधन धरिया।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर सरने आयो सो तरिया ॥३६७॥

१५

चरण रज महिमा मे जानी।
ये ही चरण से गगा प्रगटी भगीरथ कुल तारी।
ये ही चरण से विप्र सुदामा हरि कचन धाम दीनी।
ये ही चरण से अहिल्या उधारी गौतम की पटरानी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर ये ही चरण कमल मे लपटानी ॥३६८॥

१६

मेरो मन हर लिनो राजा रण छोड़, राजा रण छोड़, प्यारा रगीला रणछोड़
केशव माधव श्री पुरुषोत्तम कुबेर कल्याण कीजो।
शख चक्र गदा पद्म विराजे, मुख मुरली घन घोर।
मोर मुकुट सिर छत्र विराजे, कुण्डल की छब ओर।
आस पास रतनागर सागर, गोमती जी करे कलोल।
धजॉ पताका बहुत्यॉ फरके, झालर फरत झकझोर।
सब भगत के भाग्य ही प्रकटे, नाम धर्यो रणछोर।
जे कोई तेरो नाम सुनावे, पावे युगल किशोर।
मीरॉ बाई के प्रभु गिरधर नागुण कर ग्रहो नन्द किशोर ॥३६९॥

गुजराती में प्राप्त पद

१

बोल माँ बोल माँ बोल माँ रे।
राधा कृष्ण बिना बीजूँ बोल माँ[१]।
साकर शेलडीनो स्वाद तजी ने।
कडवो लीवडो घोल माँ रे।
चाँदा सूरजनु तेज तजी ने।
अगिया सगा ने प्रीत जोड माँ रे।
हीरा माणेक झवेर तजी ने,
कथीर सगाते मणि तोल माँ रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरिधर नागर,
शरीर आप्यु सम तोल माँ रे ॥३७०॥

२

ध्यान धणी केरू धरवूँ[२] रे, बीजुँ[३] पारे शुँ करवूँ।
शुँ करवूँ रे सुन्दर श्याम, बीजानें[४] मारे शुँ करवूँ।
नित्य उठी शुभे नाहि अेने धोई अे रे, ध्यान धणीतणुं धरीए रे।
साधु जन ने जमाडीअे[५] वाला, जूढ़ूँ वधे[६] ते अभे जभीए रे।
वृन्द ते वन माँ राच्यो रे वाला, राम मडल माँ तो अभे रमीए रे।
हरि ने चीर काम न आवे वाला, भगवाँ पहरीने अभे भभीए रे।
बाई मीराँ के प्रभु-गिरिधर नागर, चरण कमल माँ चित धरीए रे।
॥३७१॥

पदाभिव्यक्तिमे वह गाम्भीर्य पूर्ण मधुरता नही जो मीराँ के पदो की विशेषता है।

---

१ मत कर, २ धरना, ३ दूसरा, ४ भोजन करा कर, ५ दूसरे का, ६ बढे ।

३

राम नाम साकर कटका हाँ रे, मुख आवे अभी रस गटका।
हाँरे जेने[1] राम भजन प्रीत थोडी, तेनी[2] जी मड़ली लियो ने तोड़ी।
हाँरे जेने राम तना गुण गाया, तेने जमुना मार न खाया।
हाँ रे गुण गाये छे मीराँ बाई, तुम हरि चरने जाओ धाई।
बोल माँ बोल माँ बोल माँ रे, राधिका सुन बिन बोल माँ रे।
साकर सेरड़ी स्वाद तजी ने, कड़वो लिवड़ो[3] घोल माँ रे।
चान्दा सूरजने तेज तजी रे, आगिया सधाथे प्रीत जोड माँ रे।
हीरा माणक जेवर तजी ने, कथीर सधा थे मनी तोल माँ रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सरीर आप्यूँ समतोल माँ रे ॥३७२॥†

उपर्युक्त पद का प्रथमाँश "राम नाम जाओ धाई। अभिव्यक्ति के आधार पर प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। द्वितीयाश "बोल माँरे ˙ प्रीत जोड माँरे।" प्रथम पद (स० १) की हो पुनुरुक्ति है। ऐसे पद निश्चित रूप से प्रक्षिप्त कहे जा सकते है।

४

मुझ अबला ने मोटी नीरात थई सामलो घरे, नु म्हारे साँचुरे।
खाली धडाऊँ बीटलबर केरी, हार हरिनो म्हारे हिय रे।
तीन माल चतुर भुज चुडलो, सिद्ध सोयी धरे जाइये रे।
झाझरिया जगजीवन केरा, किसन गला री कठी रे।
बिछुवा घुँघरा रामनारायण, अनवट अन्तरजामी रे।
पेटी धड़ाऊ पुरुषोतम केरी, ने टीकम नाम नूँ तालो रे।
कुञ्जी कराऊँ करुणा नन्द केरी, ते मा गैषा नू माँरू रे।
सासर बासो सजी ने बैठी, अब नथी[4] काँचू रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि नु चरणे जाचू रे।
३७३॥†

१ जिसको, २ उसकी, ३ नीम, ४ नही।

५

मुखडानी माया लागी रे, मोहन प्यारा, मुखडानी माया लागी रे।
मुखडूँ मैं जोयूँ[१] तासूँ सर्व जग थे यूँ[२] खारूँ, मन मारूँ, रहियूँ न्यारूँ रे।
संसारी नो सुख एवो[३] झाझवाना नीर जे बूँ[४], तेने तुच्छ करी फेरिये रे।
ससारी नो सुख काचूँ, परणी ने रड़ावु पाछुँ, तेने घर सीद[५] जइये रे।
परणूँ तो प्रीतम प्यारो, अखण[६] सौभाग्य मारो, राण्डवानो भय टाल्यो रे।
मीराँ बाई बलिहारी आशा मूने एक तारी, हवे[७] हूँ तो बड भागी रे।
॥३७४॥†

६

काम नही आवे तो काम नही आवे प्रभु बिना तुम्हारे काम नही आव।
खचि खचि अन्न वो भोजन बनायो, तापरे तन तापकर लगायो रे।
रत्न जतन करि एहि पुतर जायो, छनो छनो बाबु लाड लडायो रे।
तिरया कहे तोरे साथ चलूँगी, लुटि लुटि वाको धन खायो रे।
काढ काढ करे घर की बाहरी छनुरे रहेवा न पाया रे।
बाई मीराँ थे प्रभु गिरधर नागुण, चरणे रही चरण न धरायो रे।
॥३७५॥†

७

हाँ रे चालो डाकोर माँ जई बसिये।
हाँ रे मने रग लगाडी रग रसिये रे।
हाँ रे प्रभात ने पहोर माँ नोबत बाजे।
हाँ रे अमे दरसन करवा जइये रे।
हाँ रे अटपटी पाग केसरियो बाधो रे।
हाँ रे काने कुण्डल सोइये रे।
हाँ रे पीला पीताम्बर जरकस जामा।

---

१ देखा, २ हुआ, ३ ऐसा, ४ जैसा, ५ उसको, ६ अखड ७ अब।

हाँ रे मोतियन माल थी मोहिये रे।
हाँ रे चन्द्र बदन अनियाली आँखो।
हाँ रे मुखड़ो सुन्दर सोहिये रे।
हाँ रे रुमझूम रुमझूम नुपूर बाजे।
हाँ रे मन मोहियो मारू मोर लिये रे।
हाँ रे मीराँ बाई कहे रे गिरधर नागर।
हाँ रे अगो अंग जाई मलिये रे ॥३७६॥†

उपर्युक्त पद गुजराती गरबा गीतों की तर्ज पर है।

८

सोकल डानूँ साल भरि भोटूँ हो जीरे घरमाँ सो कलडानूँ साल मोरे।
हेमो ने हमारे मइयर बनावो वोला, हवे रहेवानूँ म्हाने खाँटु।
कुबेरे पडीसुँ अभो वखडोर पीसूँ, हावे जीवा ने आल सिर चोटु।
सासु हठीली ननद ढगारी वाला, नाना दिये रयुँ मे यूँ मोटु।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर वाला, चरण कमल चितने ओठु ॥३७७॥†

९

लेताँ लेताँ राम नाम रे, लोकड़्याँ तो लाज मरे छे।
हरि मन्दिर जाता पाव लिया रे दूखे, फिरि आवे सारो गाम रे।
झगडो थाय त्याँ दौड़ी ने जाय रे, मुकी ने घर ना काम रे।
भाड गवैया गाने का नृत्य करताँ, बेसी रहे चारे जाभ रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम रे ॥३७८॥†

१०

हाँ रे मै तो की धी छैं ठाकोर थाली रे, पधारो बनमाली रे वनमाली।
प्रभु कगाल तोरी दासी, हाँ रे प्रभु प्रेमना छो तमे प्यासी, दासी नी पूरजो आशी।
प्रभु साकर द्राख खजूरी, माँहे न थी बासुरी के पुरी, मारे सासु नण्दनी सूली।

प्रभु भॉत भॉत ना मेवा लावूॅ, तमे पधारो वासु देवा मारे भुवन मा
रजनी रेह्वा।
हॉ रे मे तो तजी छे लोकनी शका, प्रीतम का घर हे बका बाई मीरॉ गे
दीघा डका ॥३७९॥†

११

काये कूॅ नलीयो तब तु कोय को न लीयो, रामजी को नाम तब तु काये
को न लीयो।
नव नव मॉस तुॅने उदर मे राख्यो, बड़ोरे भयो तबसे कुल लजायो।
गुनका को बेटो गली माही डोले, पिता बिन पुत्र गुनका को कहायो।
मीरॉ बाई के प्रभु त्याहारा भजन बिना, आवो मनखोते ऐले गॅवायो।
॥३८०॥†

खड़ी बोली में प्राप्त पद

१

मै तो हरि गुण गावत नाचूगी।
अपने महल मे बैठ कर प्रभु जी गीता भागवत बाचूॅगी।
ज्ञान ध्यान की गठरी बाध कर, हिरदे मन मे राचूॅगी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, सदा प्रेम रस चाखूॅगी ॥३८१॥†
अभिव्यक्ति के आधार पर पद को प्रक्षिप्त कहा जा सकता है।

२

मालक कुल आलम के हो, तुम सॉचे श्री भगवान।
स्थावर जगम पावक पाणी, धरती बीच समान।
सब मे जलवा तेरा देखा, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोये, बाले की पहिचान।
दो मुट्ठी तंडुल की चाबी, श्राप भये रथवान।

उन ने अपने कुल को देखा छूट गये तीर कमान।
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा यह अज्ञान।
चेतन जीवन तो अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ पर तो प्रभु किरपा कीजे, बन्दी अपनी जान ।।३८२।।†

उपर्युक्त पद मीराँ विरचित है ऐसा आभास पद के किसी भी अश से नही मिलता। "मीर माधो" के निम्नाकित पद से उपर्युक्त पद की तुलना करने पर यह सुस्पष्ट हो जाता है कि "मीर माधो" का ही पद मीराँ के नाम पर चल पड़ा है।

मालक कुल आलम के हो साँचे श्री भगवान।
स्थावर जगम पानी पावक, धरती बीच समान।
सब मे जलवा तेरा देखा, कुदरत के कुरबान।
सुदामा के दारिद खोये, पाडे की पहचान।
दो मुट्ठी तडुल की चाबी, बख्शे दो जहान।
भारत मे अर्जुन की खातर, आप भये रथवान।
उसने अपने कुल को देखा, छूट गये तीर कमान।
ना कोई मारे ना कोई मरता, तेरा ही अजान।
यह तो चेतन अजर अमर है, यह गीता को ज्ञान।
मुझ अज्ञान पर किरपा कीजे, बन्दा अपना जान।
मीर माधो मै शरण तिहारी, लागे चरनन ध्यान।।३८३।।
(बृहद्राग रत्नाकर, पृ० १७७, पद १३८)

३

कछु लेना न देना मगन रहना।
नाय किसी की काणा सुनवी, नाय किसी को अपनी कहना।
गहरी गहरी नदिया नाव पुरानी, खेवटिये सूँ मिलते रहना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, साँवरा के चरण मे चित देना ।।३८४।।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वपर संगति का अभाव है।

मीरॉ को प्रभु सांची दासी बनाओ।
झूठो धंधो से मेरा फ़दा छुडाओ।
लूटे ही लेत विवेक का डेरा।
बुधि बल यदपि करु बहुतेरा।
हाय राम, नहि कछु बस मेरा।
मरत हू विवस प्रभु धाओ सबेरा।
धर्म उपदेश नित प्रति सुनती हू।
मन कुचाल से भी डरती हूं।
सदा साधु सेवा करती हू।
सुमिरण ध्यान मे चित धरती हू।
भक्ति मार्ग दासी को दिखाओ।
मीरॉ को प्रभु साची दासी बनाओ ।।३८५।।†

भाषा के आधार पर पद की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

विभिन्न बोलियों में प्राप्त पद

१

बन्दे बन्दगी मत भूल।
चार दिना की कर ले डूबी, ज्यूँ पाडिभरा फूल।
आया था ए लोभ के कारण, भूल गमाया मूल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रहना वे 'हजूर। ।।३८६।।†

उपर्युक्त पद में ब्रज और पंजाबी भाषा का अजीब सम्मिश्रण है। अन्तिम पक्ति का द्वितीयांश 'रहना वे हजूर' भी अर्थ हीन ही प्रतीत होता है। पंजाबी भाषा के प्रभाव के कारण पद की प्रामाणिकता विशेष संदिग्ध है।

वैष्णव प्रभाव द्योतक पद

पौराणिक गाथाएँ

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

क्यूँ कर म्हे दिन काटा (नाथ जी), थे तो म्हांसू अतर राखो
(नाथ जी) राखो क़पटी आंटा।
कुबज्या दासी कस राई की, फिरती कपड़ा फाटा,
वाकू तो पटरानी कीन्ही पहरे रेसम पाटा।
बाजूबन्द मूँदडी अंगुली नखसिख गहणों साटा,
पहर[1] कुबड़ी न्हावण चाली जमुन के घाटां।
धान ने भावै नीद न आवै, चिन्ता लगी निराटा,
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, देख देख हियो फाटां।
॥३८७॥†

२

दूर रहो रे कवर नदना रे, परे[2] रह रे कवर नदना रे।
कारी कामरी वारा तू रे कान जी ओ,
थे तो रीझ्या[3] सालूडा[4] री कोर जी ओ।
गज मोत्या[5] वारी राणी राधिका जी रे,
श्री राधा गोरी ज्याको नाम छै रै।

---

१ पहन कर, २ दूर, ३ मोहित हो गये, ४ओढनी, ५मोती का राजस्थानी बहुवचन।

बाला हाथ जोडी ने करा बीनती रे,
म्हारो अबला को कह्योड़ो[1] जादू मानजो रे।
मीरॉं मेडतणी रा म्हैला उभयिया रे,
मै तो रीझ्या रीझ्या साधूडा री साथ मे रे ॥३८८॥†

यह पद राजस्थानी लोक गीतों की लय पर ही है। श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी जी के अनुसार भी इसकी प्रामाणिकता सदिग्ध है।

३

रुक्मणी री लाज राखो, राखोला म्हांराजि।
आजि रुक्मण की लाज राखो।
माता के मै घणि पियारी, नाही दोष पिता को।
रुकमइयौ सिसुपाल बुलायो, नही मुख देखूॅं वाको।
थाका बिडद कूॅं लोग हसैगो, जीव जावेगी म्हाको।
मेरा स्याम कूॅं कृष्न बतावै, नारद मूनीयो भाषो।
मीरॉं कहे यूॅं रुक्मणि कहत है, ऊॅंच नीच मति राखो। ॥३८९॥†

४

माधो जी, आया ही सरैगो, राणी रुक्मण का भरतार।
लिखी पतिया द्विज हाथ पठावो, द्वारका ने गमन करैगी।
बडे बडे भूल महावल जोधा, कुण से कोण घटैगी।
यो सिसपाल चंदेरी को राजा, कूडी सॉंख भरैगी।
मीरॉं कहै यूँ रुक्मणी कहत है, योको ही बिड़द लजैगी।
॥३९०॥†

---

१ कहा हुआ।

प्रसिद्ध है कि मीराँ ने रुक्मणी मगल नामक एक ग्रथ की रचना भी की थी, परन्तु अभी तक इस ग्रथ की उपलब्धि नही हुई है। श्री सूर्य-करण जी चतुर्वेदी का मत है कि उपर्युक्त दोनो पद सम्भवत उसी ग्रथ के अश हो। सम्पूर्ण ग्रथ के अप्राप्य होने के कारण मात्र दो चार पदो के आधार पर इस सबध मे कोई निर्णय देना सभव नही।

५

मत आवै रे नन्द का म्हांकी गली।
म्हाकी गली की बाकी गुवालिन, मत ना लोग हँसावे रे।
सासु बुरी मेरी नणद हठीली, पाडोसण[1] लख जावै[2]।
कोऊ गलियो मे लुकतो छिपतो म्हांके कामी आवै रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, झूठो ही ललचावे रे ॥३९१॥†

६

म्हासूँ मुखड़ै क्यूँ नहि बोली।
म्हासूँ काई गुना लियो छै अबोले।
पहली प्रीति करी हरि हम सूँ, प्रेम प्रीति को झोलो।
प्रेम प्रीति की गाठना धुलि गई, याने कुण विधि खोलो।
कुब्जा दासी कसराय की, अक भरि भरि तोलो।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, हिवडा री गाठंवा खोलो ॥३९२॥†

७

मोहन मुसक्याने सखी लागे सोही जाणे।
मैं जल जमुना जात वृन्दावन वो पीछे से आयो।

---

१ पडोसी स्त्रियाँ, २ लख जावे, भाँप लेना।

काकरी दे मोरी गगरी गिराई, जोरी से बैया मरोरी।
सखी कोई रीत न जाणे।
मै दधि बेचन जात वृन्दावन वो सामे से आयो।
दधि की मटकी सिर से गिराई लूट लूट दधि खाणे,
सखी कोई मरम न जाणे।
घायल की गति घायल जाणे, जे कोई निकसे जाणे।
मीरॉ को कह्यो बुरा न मानो, आखिर जात अहीर।
सखी ये प्रीत न जाणे ॥३९३॥†

पद के तीसरे अश का शेष पद से समन्वय नही होता। श्री सूर्यकरण चतुर्वेदी जी के मतानुसार भी यह पद मीरॉ का प्रतीत नही होता।

८

नन्द जी रे आज बधावणो छै।
गहमह हुई रंग रावल मै, निरखि नैना सुख पावनो छै।
भाभी जी, म्यो था सूँ पूछां, आजिरो द्योस सुहावणो छै।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर जनमिया, हुवो मनोरथ भावनो छै।
॥३९४॥†

९

हे री मॉ नन्द को[१] गुमानी, म्हारे मनडे बस्यो।
गहे दुम डार कदम की ठाढ़ो, मृदु मुस्काय म्हारी ओर हंस्यो।
पीताम्बर फटि काछनी काछे, रतन जटित माथे मुकुट कस्यो।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, निरख बदन म्हारो मनडो फस्यो।
॥३९५॥

---

१ नन्दा का पुत्र, 'नन्द को', 'नन्द का' आदि प्रयोग राजस्थानी भाषा की शैली मे प्राय प्राप्त होते हैं,

१०

कुछ दोष नहि कुबज्या ने, बीर[२] अपना श्याम खोटा।
आप न आवे पतियाँ न भेजे, कागज का कोई टोटा।
नौ लख धेनु नन्द घर दूंधे, माखन का नही टोटा।
आप ही जाय द्वारिका छाये, ले समदर[३] की ओटा।
कुबज्या दासी नन्दराय की, वे नन्द जी के ढोटा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कुबज्या बडी हरी छोटा।
॥३९६॥†

एक निम्माकित ऐसा ही पद 'चन्द्रसखी' के नाम पर भी प्रचलित है।

कुछ दोष नही कुबज्या ने, वीर आपनो स्याम खोटो।
आप न आवे पतियाँ न भेजे, कागद रो काई टोटो।
बिख बेल रे बिख् फल लागे, काई छोटी काई मोटो।
जमना के नीरे तीरे धेन चरावे, हाथ चन्दन रो सोटो।
कुबज्या चेरी कस राय री, वो छै नन्दजी रो ढोटो।

इस पद मे 'चन्द्रसखी' की छाप नही है तथापि यह 'चन्द्रसखी'के सग्रह मं ही प्राप्त है। पदाभिव्यक्ति देखने से प्रतीत होता है कि गेय परम्परा के कारण विभिन्न पदाश सग्रहीत होकर एक स्वतत्र पद के रूप मे चल पड़े है।

११

हमने सुणी छै हरि अधम उधारण।
अधम उधारण सब जग तारण।
गज की अरजि गरजि उठि ध्यायो, संकट पर्‌यो तब निवारण।
द्रोपति सुता को चीर बढायो, दुसासन को मान पद मारण।
प्रल्हाद की प्रतग्यां राखी, हरणाकुस नख इन्द्र विदारण।

---

२ भाई, ३ समुद्र।

रिख पतनी पर कृपा कीन्ही, विप्र सुदामा की विपति विदारण।
मीराँ के प्रभु मो बदि पर, एती अबेरी भई किण कारण।
॥३९७॥

१२

म्हा नैणा आगे रहीजो जी स्याम गोविन्द।
दास कबीर घर बालद जो लाया, बासदेव का छान छबन्द।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनन्द।
भीलणी का बेर सुदामा का तदुल, भर मूठडी, बुकन्द।
करमी बाई को खीच आरोग्यो[1], होइ परसण पाबन्द।
सहस गोप बीच स्याम बिराजै, ज्यो तारा बिच चन्द।
सब सतो का काज सवाँरे, मीराँ सूँ दूर रहन्द। ॥३९८॥

उपर्युक्त दोनो पद इस श्रेणी के अन्य पदो से अलग पड़ते है, क्योकि इनमे निर्वेद की भी भावना झलकती है। इस पद मे प्रयुक्त 'मीराँ 'सूँ दूर रहन्द' जैसी टेक भी अन्य पदो मे प्राप्त नही।

मिश्रित भाषा में प्राप्त पद

१

राम गरीब निवाज, मेरे सिर राम गरीब निवाज।
कचन कलस सुदामा कूँ दीनो, हीडत है गजराज।
रावण के दस मसतग छेदे, दीयो भभीखण राज।
द्रोपती सती को चीर बंधायो, अपणे जन के काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, कुल की राखी लाज ॥३९९॥

---

१ खाया।

२

किरपा भई सतगुर अपने की बेर बेर, हरि नॉव[१] लियो री।
हिरणाकुस प्रल्हाद सतायो, जार अगन बिच डाल दियो री।
राज छॉड दियो नॉव न छाँड़ियो, खम्भ फाड़ प्रभु दरस दियो री।
माता को उपदेस भयो जब, राज छॉड धुजी बन मे गयो री।
मारग मे मिल गए नारद मुनि, तब से धुजी अटल भयो री।
सागर ऊपर सिला तिराई, दुष्ट रावण कूँ मार लियो री।
सीता सहित अवधपुर आयै, भगत बिभीषण राज दियो री।
सब भगतन की सहाय करी प्रभु, मेरी बेर कहॉ सोय गयो री।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, बसी बजा के मोहि लियो री।
॥४००॥†

पद के प्रथम पक्ति से सतमत का प्रभाव स्पष्ट हो उठता है, परन्तु शेष पद से वैष्णव प्रभाव ही स्पष्ट लक्षित होता है।

३

प्रीत मत तोडो गिरधर लाल।
तुम ही साहुकार तुम ही बोहोर, ब्याज भूल मत जोडो।
सॉवरियॉ के कारणे मै तो बाग लगायो, काचा कलियाँ मत तोडो।
सॉवरियॉ के कारण मै तो सेज बिछाई, सूनी सेज मत छोडो।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, इमरत मे विष मत घोरो।
॥४०१॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है। श्री सूर्यकरण जी चतुर्वेदी के मतानुसार भी यह पद मीरॉ विरचित नही प्रतीत होता।

---

१ नाम।

४

नन्द को बिहारी म्हारे हियडे बस्यो छै।
कटि पर लाल काछनी काछे, हीरा मोती वालो मुकुट धर्यो छे।
गहिर ल्यो डाल कदम की, ठाडी गोहज मो तन हेरि हस्यो छे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, निरखि दृगन में नीर भर्यो छे।
॥४०२॥†

पद की तृतीय पक्ति सर्वथा अर्थहीन है।

५

मिथुला, कर पूजन की त्यारी।
धूप दीप नैवेद्य आरती, सबही सौज लेआ री।
बहु विध सूँ पंकवान बनाकर, करो भोग की त्यारी।
जीमेली[1] म्हारो पिया गिरधारी, साधां ने बेग बुला री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरणा पर बलिहारी। ॥४०३॥

पाठान्तर १,

मिथुला, सुन यह बात हमारी।
राज भोग की समै[3] हुई है, बेग[2] थाल सजला री।
छप्पन भोग छतीसो विजन, सीतर जल की झारी।
धूप दीप नइ वेद[4] आरती, कीजे वेग त्यारी।
धरिये भोग विलम्ब नही कीजिये, मेरी मान पियारी।
जीमे म्हाँरो प्यारो गिरधर, साधा ने बेग बुलारी।

उपर्युक्त पद विशेष विचारणीय है। किसी अन्य को आज्ञा देकर पूजन की त्यारी करने की अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है। यहाँ "मिथुला" सम्बोधन भी किस के प्रति हुआ है यह एक विचारणीय प्रश्न है।

---

१ भोजन करेगा, २ शीघ्र, ३ समय, ४ नैवेद्य ।

६

मन मोह्यो रे बसीवाला।
कॉधे कमरिया हाथ लकुटिया, मारियो नैना के भाल।
यक बन ढूँढी सकल बन ढूँढे, कहूँ नही पायो नन्दलाल।
मोर मुकुट पीताम्बर राजे, कानन कुडल छबी बिसाल।
मीरॉ प्रभु गिरधर जू की प्यारो, आनि मिल्यो प्यारी गोपाल।
॥४०४॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सम्बन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

७

वाह वाह रे मोहन प्यारे, कहॉ चले जादू करि के।
रुप सरूप सलूनी सी डारी, मेरो मन लीनू हर के।
मोर मुकुट सिर छत्र बिराजै, नख पर गिरवर धर के।
दमन कियो नाग काली को, आप घुसे मघ सर के।
फण फण निरत करत यदुनन्दन, अमै कियौ बग बद के।
सब ब्रजलोग छॉडि निज घरकूँ, जाई बसे तर गिर के।
सात दिवस लग सूँड धार, जल इन्द्र पखो पग डर के।
कातिग[1] मास बाल सब मिल कै, नाचै जल मे तिर के।
चोर चोर पुनि बगल डार कै, जाय चढे छल करि के।
वृन्दावन की कुज गलिन मे, रास रच्यो छल बल के।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, पानै पडी गिरिवर के ॥४०५॥

पदाभिव्यक्ति असंगत है।

८

पाछो रथ फेरो द्वारका राRा।
सूरज तलफे चदा तलफे, तलफे नोलख तारा।

---

१ कार्तिक।

गऊ भी तलफे बाच्छा भी तलफे, तलफे गुवाल बिचारा।
जोगी भी तलफे जगम भी तलफे, तलफे समदर खारा।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, तुम जीते हम हारा ॥४०६॥†

ऐसी पदाभिव्यक्ति अन्य पंदो से सर्वथा भिन्न पडती है। अन्तिम पक्ति और शेष पद मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह भी नही हुआ है।

९

मैया ले थारी लकरी, ले थारी कांवरी,
बछिया हू न जाऊ री।
सग के ग्वाल बाल सब बलिभद्र कूँ मोकलो।
एकलो बन मे डराऊ री।
सघन बन मे कछु खबर नहि परे।
सग के ग्वाल सब मोहे डरावे रे।
दादुर मोर पछी यूँ रटे, कृष्ण कृष्ण कहि मोहि खिजावे।
माखन तो बलिभद्र को खिलायो, हमको पिलाई खाटी छाछडी।
वृन्दावन के मारग जातां, पाऊ[1] मे चेभत झीनी काकरी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर,चरण कवल तोरी ऑख री।।४०७॥†

उपर्युक्त पद का भाषा और भाव के आधार पर गुजराती पदो से गहरा समन्वय है। गुजराती भाषा का प्रभाव भी स्पष्ट है। प्रथम अर्द्धांश की भावाभिव्यक्ति का सूरदास के पदो से गहरा साम्य है। पद की छठी पक्ति का शेष पद से पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही होता। अन्तिम पंक्ति द्वितीयार्द्ध सर्वथा अर्थविहीन है। ऐसे पदो को गेय परम्परा का फल मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

१०

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम के डारी हो माय।
म्हारी गैल[2] फर्‌यो गिरधारी, हे भाय आज अनारी ले गयो सारी।

---

१ पैर, २ पीछे।

मै जल जमुना भरन गई थी, आगयौ कृष्ण मुरारी हे माय।
ले गयो सारी अनारी हॉररी, जल मे उभी उघारी हे माय।
सखी साइनी मोरी हॅसत है, हॅसि हॅसि दे मोहि तारी हे माय।
सास बुरी अरु नणद हठीली, लरि लरि दे मोहि तारी हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल की बारी हे माय ॥४०८॥†

११

वाटड़ली निहारा जी हरि ठाढो।
आप नही आवत पतियाँ नाही मेलत, छाती करी हरि ठाढी[1]।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, जमुना बहै छै नाडी।
आप जाय मथुरा मे बैठे, प्रीत रली उहाँ बाढी।
हम को लिषि लिषि जोग पठावत, आप दूलह कुबज्या भई लाढी[2]।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कहा करै जमुना आडी। ॥४०९॥

लगभग ऐसे ही पद गुजराती भाषा के पदो मे भी मिलते हैं। अन्तिम पक्ति का द्वितीयाश अर्थविहीन है।

१२

मोरी गलियन मे आवो जी घनश्याम।
पिछवाडे आए हेला[3] दीजी, ललित सखी हे म्हारो नाम।
पैया परत हूँ बिनती करत हूँ, मत कर मान गुमान।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तेरे चरण मे ध्यान। ॥४१०॥

---

१ कठिन, मजबूत, २ दूसरी पत्नी, ३ पुकार।

विभिन्न भाषाओं में प्राप्त पद

१

कुबज्या ने जादू डारा री, जिन मोहै श्याम हमारा।
झरमर झरमर मेहा बरसे, झुक आये बादल कारा।
निरमल जल जमुना को छाँडो, जाय पिया जल खारा।
शीतल छाँय कदम की छोडी, धूप सहा अति भारा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बाही प्राण पियारा ॥४११॥†

कही कही प्रथम पक्ति के द्वितीयाश का निम्नाकित पाठान्तर भी प्राप्त है —"बिना भाल सुर मारा"।

२

मेरे प्यारे गिरिवरधारी जी, दासी क्यो बिसार डारी।
द्रोपदी की लाज राखी, सब दुख सो निवारी।
प्रल्हाद पैज पारी, नृसिह देह धारी।
भीलनी के झूठे बैर खाये, कछु जात न बिचारी।
कुब्जा सो नेह लायो, और गोतम की नारी तारी।
प्यासी फिरो दरस बिन तलफो, मोहे काहे बिसारी।
प्यासी फिरो दरस बिन तलफो, मोहे काहे बिसारी।
मीरा के प्रभु दरसन दीजो, गिरिधर अपनी ओर निहारी।
॥४१२॥

३

छैल, गैल[1] मत रोकै तू हमारी रे।
चाल कुचाल चलो जिन चचल, ऐसी अनीती तैंने करमी विचारी रे।
सखी सग की देखत ठाढी, चरचा करैगी सब पुरनर नारी रे।

---

१ रास्ता।

जो कोई ल्यावै श्याम वैद कूँ, तो उठि बैठूँ हसिके री।
भ्रकुटि कमान वान बाँके लोचन, मारत हिय कसिके री।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, कैसो रहो घर बसि के री ।।।४१५।।†

पाठान्तर १,

हे माँ बड़ी बड़ी आँखियन वारो साँवरो, मो तन हेरत हँसि के।
भौहै कमान वान वाके लोचन मारत हियरे कसि के।
जतन करो, जतन लिख बाँधो, ओषध लाऊ घसि के।
ज्यो तोको कछु और बिथा हो, नाहिन मेरो बसि के।
कौन जतन करो मेरी आली, चदन लाऊ घसि के।
जन्तर मन्तर जादू टोना, माधुरी मूरत बसि के।
साँवरि सूरत आनि मिलावो, ठाडी रहूँ मै हँसि के।
रेजा रेजा भयो करेजा, अदर देखो धसि के।
मीराँ तो गिरधर बिन देखे, कैसे रहे घर किस के।†

उपर्युक्त पाठ की अभिव्यक्ति मे असगति है। 'चन्द्रसखी' के नाम पर भी एक ऐसा ही पद प्रचलित है —

हँस के री, माँ री, मेरा मन ले गये आँखनवारो क्वारो, हँसि के।
भौहें कवान वान जाके, लोचण मेरे हिवड़े मार्‌या कस के।
रेजा रेजा भयो करेजा मेरो, भीतर देखो धस के।
जतन करो, जन्तर लिखि ल्यावो, ओखद लावो घस के।
रोम रोम विष छाय रह्यो है, कारो खायो डस के।
जो कोई मोहन आनि मिलावे, गले मिलूँगी, हँस के।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, क्या रे करु घर बस के।

६

अब नही जाने दूँ गिरधारी, थारे म्हारे प्रीत लगी अति भारी।
बाँको मुकुट काछनी सुन्दर, ऊपर जरद किनारी।

गल मुतियन की माल बिराजे, कुन्डल की छवि न्यारी।
बाँकी मौ कजरारे नैना, अलकै छुट रहि कारी।
मद मद मुरली धुन बाजत, मोही बृज की नारी।
क्षुद्र घटिका कटि सोहै, भुज पर बाजू धारी।
कडा भरहरी सुधर नेवरी, नूपुर की गुणकारी।
दुरजन लोग हँसो क्यो ने मोसो, दे दे कर कर तारी।
मीराँ प्रभु की भई दिवानी, प्रेम मगन मतवारी ॥४१६॥†

पद की सातवी पक्ति अर्थहीन प्रतीत होती है। आठवी पक्ति की अभिव्यक्ति और शेष पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही होता। यह पद श्री जगतश्रवण जी के पुजारी जी की जबानी लिखा गया है। सूर्यकरण जी चतुर्वेदी के मतानुसार इस पद को इस रूप मे प्रामाणिक नही माना जा सकता है।

७

मेरी चूनर भिजावे, मेरे भिजे अगी पाक।
नन्द महर जी को कुअर कन्हैया, जान न देऊगी मै आज।
पट पकर के फगवाँ ल्यूँगी, मुख भी डोगी उगराज।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सदा रहो सिरताज ॥४१७॥†

पद की तीसरी पक्ति सर्वथा अर्थ-विहीन है।

८

जागो मोहन प्यारे ललना, जागो बसीवार।
रजनी बीती भोर भई है, घर घर खुले किवारे।
गोपी दधि मथुन करियत है, कगन के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढे द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कोलाहल, जय जय शब्द उचारे।
माखन रोटी हाथ मे लीन्ही, गऊअन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, शरण आये कूँ त्यारे ॥४१८॥†

पद की प्रथम और अन्तिम पक्ति के निम्नाकित पाठान्तर भी मिलते है।

"प्रथम पक्ति . "जागो बसीवारे ललना, जागो मेरे प्यारे।"
अन्तिम पक्ति . "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तरण आया कूं तारे।"

अभिव्यक्ति के विचार से इस अन्तिम पक्ति का प्रथम पाठ ही उपयुक्त सिद्ध होता है।

९

तुम सो तो मन लाग रह्यो, तुम जागो मोहन प्यार।
भोर भई चिडिया चहचाई, कागा बोले कारे।
कामनिया ने चीर सभाले, घर घर खुले किवारे।
सारी गऊएँ निकसाई, यमुना लेकर संग ग्वाल रे।
ग्वाल बाल सब द्वारे ठाडे, ठाई हार तिहारे।
घर घर ग्वालन दही बिलोवे, कर कगन झनकारे।
वस्तर आभूषण तन पर धारो, पागियाँ पेच सवारे।
या ब्रज के प्रभु भूषण तुम हो, तुम ही प्राण हमारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आयी शरण तिहारे ॥४१९॥†

अन्तिम पक्ति के द्वितियाश का निम्नाकित पाठान्तर भी मिलता है। "तुम हो प्राण हमारे।" ऐसी स्थिति मे आठवी और नवी पक्ति के द्वितीयाश एक ही हो जाते है। पाचवी पक्ति का द्वितीयाश अर्थहीन है।

१०

सखी मेरो कानूडो, कलेजे की कोर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की झकझोर।
विन्द्रावन की कुज गलिन मे, नाचत नद किसोर।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कंवल चितचोर ॥४२०॥†

११

रे री कौन जाति पनिहारी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, बीच मिले गिरधारी।
सुन्दर वदन नयन मृग मानों, विधाता आप सवाँरी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, तुम जीते हम हारी।।४२१।।†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है।

१२

गागर ना भरन देत तेरो कान्ह माई।
हँसि हँसि मुख मोड़ि मोड, गागर छिटकाई।
घूघट पट खोल देत, साँवरो कन्हाई।
जसुमति तै भली बात, लाल को सिखाई।
नगर डगर झगरो करत, रारि तो मचाई।
हौ तो बीर जमुना तीर, नीर भरन धाई।
गिरधर प्रभु चरण कमल, मीराँ बलि जाई।।४२२।।†

पद की छठी पक्ति मे प्रयुक्त "बीर" शब्द का अर्थ जुडता नही है। "गिरधर प्रभु चरण कमल, मीराँ बलि जाई।" जैसी टेक भी इस पद की विशेषता है।

१३

कमल दल लोचना, तैंने कैसे नाथ्यो भुजग।
पेसि पियाला काली नाग नाथ्यो, फण फण निर्त अकरत।
कूद परियो न डर्यो जल माँही, और कारी नहि सक।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, श्री वृन्दावन चन्द।।४२३।।†

१४

मन अटकी मेरे दिल अटकी हो, मुकट लटक मेरे मन अटकी।
माथे खोर चन्दन की, सेला है पीरे पटकी।

शख गदा पद्म विराजै, गुँज माल मेरे हिये अटकी।
अन्तरधान भये गोपिन मे, सुध न रही जमुना तटकी।
पात पात वृन्दावन ढूँढै, कुज कुज राधा लटकी।
जमुना के तीरे धेनु चरावै, सुरत रही वशी वट की।
फूलन के जामा कदम की छैया, गोपिन की मटुकी पटकी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, जानत हो सब के घटकी ।।४२४।।†

पदाभिव्यक्ति मे सगति नही है। चतुर्थ और सातवी पक्तियाँ अर्थ-विहीन ही प्रतीत होती है, अत पद की प्रामाणिकता सहज सदिग्ध है।

१५

यदुबर लागत है मोहि प्यारो।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल मे पग धारो।
जन्मत ही पूतना गति दीनी, अधम उधारन हारो।
यमुना के तीर धेनु चरावै, ओढे कामलो कारो।
सुन्दर बदन दल लोचन, पीताम्बर पर वारो।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, कर मे मुरली धारो।
शंख चक्र गदा पद्म विराजै, सतन को रखवारो।
जल डूबत ब्रज राखि लियो है, कर पर गिरिवर धारो।
मीराँ प्रभु गिरिधर नागर, जीवन प्राण हमारो। ।।४२५।।

१६

भज केशव गोविन्द गोपाल हरि हरि, राधेश्याम पहिरे बनमाला।
मथुरा मे हरि जन्म लियो है, गोकुल फुलै नन्दलाला।
गोपी के कन्हैया बलभद्र जी के भैया, भक्त वच्छल प्रभु प्रतिपाला।
पूतना को जननी गति दीन्ही, अधम उधारन नन्दलाला।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।

यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, मुरली बजावे नन्दलाला।
वृन्दावन हरि रास रच्यो है, मीराँ की करौ प्रतिपाला ।।४२६।।

१७

या मोहन के मै रूप लुभानी।
हाट बाट मोहि रोकत टोकत, या रसिया की मैं सारी न जानी।
सुन्दर बदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मद मुसकानी।
यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे, बसी मे गावे मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारू, चरण कमल मीराँ लपटानी।
।।४२७।।†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही हुआ है।

१८

अब मै शरण तिहारी जी मोहि राखो कृपा निधान।
अजामिल अपराधी तारे, तारे नीच सदान।
जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, माखन सन्त सुजान।
कुब्जा नीच भीलनी तारी, जाने सकल जहान।
कहं लगि कहूँ गिणत नही आवै, थकि रहै वेद पुरान।
मीराँ कहै मै शरण रावरी, सुनियो दोनों कान ।।४२८।।

१९

सुण लीजो बिनती मोरी , मै सरन गही प्रभु तोरी।
तुम तो पतित अनेक उधारे , भव सागर ते तार्‌यो।
मं सब का तो नाम नही जानूँ, कोई कोई भक्त बखानो।
अम्बरीष सुदामा नामी पहुचाये, निज धामा।
ध्रुव जो पाँच बरस को बालक, दरस दियो घनस्यामा।
धना भक्त का खेद जमाया, कबिरा बैल चराया।

सबरी के झूठे बेर खाये, काज किए मन भाये।
सदना ओ सैना नाई को तुम लीन्हा अपनाई।
कर्मा की खीचडी तुम खाई, गनिका पार लगाई।
मीराँ प्रभु तुम्हारे रंगराती, जानत सब दुनियाई। ॥४२९॥

उपर्युक्त दोनो पदो की प्रथम पक्ति का भाव-भाषा साम्य विचारणीय है।

२०

तुम बिन मोरी कौन खबर ले गोबरधन गिरधारी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल की छबि न्यारी रे।
भरी सभा मे द्रोपदी ठारी, राखो लाज हमारी रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल बलिहारी रे॥४३०॥

२१

देखत राम हँसे, सुदामा, कूँ देखत राम हँसे।
फाटी तो फुलडियाँ, पाँव उभाडे चलते चरण धसे।
बालपने का मीत सुदामा, अब क्यो दूर बसे।
कहा भावज ने भेट पठाई, तदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गऊवन बछिया, द्वार बिच हस्ती फँसे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सरणा तोरे बसे। ॥४३१॥

२२

गोकुल के बासी, भले ही आये गोकुल के बासी।
गोकुल की नारी, देखत आनन्द सुख रासी।
एक गावत एक नाचत, एक करत हाँसी।
पीताम्बर के फेटा बाँधे, अरगजा सुबासी।
गिरिधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी ॥४३२॥ †

पदाभिव्यक्ति अस्पष्ट है। अन्तिम पक्ति की भाषा शैली विशेष विचारणीय है।

२३

आये आये जी महाराज आये।
तज बैकुठ तज्यो गरुडासन, पवन वेग उठ ध्याये।
जब ही दृष्टि परे नन्दनन्दन, प्रेम भक्ति रस प्याये।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरन कमल चित ल्याये ॥४३३॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबन्ध का निर्वाह नही हुआ है। प्रथम दो पक्तियो से गज-उद्धार की कथा लक्षित होती है, परन्तु तीसरी और चौथी पक्तियो की अभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पड़ती है।

२४

कोई ना जाने हरिया तारी गती, कोई ना जाणे।
मिट्टी खात मुख देख जशोदा, चौदह भुवन भरिया।
पडी पाताल वाली नाग नाथ्यो, सूर ने[1] शशी डरिया।
डूबत ब्रज राखिलियो है, कर गोबर्धन धरिया।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, शरणे आयो तो तारिया ॥४३४॥

पद पर गुजराती प्रभाव स्पष्ट है।

२५

निपट विकट ठौर, अटके री नैना मेरे।
सुख सम्पति के सब कोई साथी, विपति परे सब अटके।
तजि खगराज छुडायो, हाथी टेर सुने नही कहुँ अटके।
मीराँ के प्रभु गिरिधर को, तजि मूरख अनत ही मरवो।
॥४३५॥†

---

१ और।

पद मे पूर्वा पर संबध का निर्वाह नही हुआ है, इतना ही नही तीसरी और चतुर्थ पक्ति मे विरोधाभास भी बहुत स्पष्ट है। तृतीय पक्ति का प्रथमाश अर्थ-हीन है, अन्तिम पक्ति के अन्तिम शब्द "मरवो" का अर्थ नही लगता, अत उपयुक्त नही प्रतीत होता। उपर्युक्त परिस्थिति मे पद को प्रामाणिक मानना सम्भव नही।

२६

जब ते मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो माई।
तब से परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
कुटिल तिलक भाल चितवन मे टोना।
खजन अरु मधुप मीन भूले मृग छोना।
सुन्दर अति नासिका सुगीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु वेष धरे रूप अति विशेषा।
अधर बिम्ब अरुण नैन मधुर मन्द हाँसी।
दसन दमक दाडिम द्रुति अति चपलासी।
छुद्र घटिका किकनी अनूप धुनि सुहाई।
गिरिधर के अग अग मीरा बलि जाई। ॥४३६॥

पाठान्तर १,

जब से मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो भाई।
जमुना जल भरन गई, मोहन पर दृष्टि गई।
गागंर भरि गृह चली, भवन न सुहाई।
गृह काज भूलि गई, सुधि बुधि बिसराई।

सास नन्द ऊलझि परी, जाऊ कहाँ भाई।
मोरन की चन्द्रकला कीरीट मुकुट सोहै।
केसर के तिलक ऊपर तीन लोक मोहै।
कानन मे कुडल कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
काछनि कटि सोहै, पग नूपुर बिराजै।
गिरधर के अग अग मीरॉ बलि जाई।

पाठान्तर २,

जब ते मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पड़्यो भाई।
तब ते परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोर मुकुट चद्रिका सु सीस मध्य सोहै।
केसरि को तिलक ऊपर तीन लोक मोहै।
सॉवरो त्रिभग अंग चितवन मे टोना।
खजन जौ मधुप मीन भूले मृग छौना।
अधर बिम्ब असन नयन मधुर मद हॉसी।
दसन दमक दाडिम द्युति दमके चपला सी।
छुद्र घटिका अनूप नुपुर धुनि सोहै।
गिरिधर के चरणकमल मीरॉ मन मोहै।

पाठान्तर ३,

जब ते मोहि नन्दनन्दन दृष्टि पर्यो भाई।
तब तै परलोक लोक कछु न सुहाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन परछाई।
मानो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई।
भृकुटि कुटिल चपल नयन मधुर मद हॉसी।

दसन दमक दाडिम द्युति दमकै चपलासी।
कबु कठ भुज बिलासे ढीव तीन रेखा।
नटवर को भेष भानु सकल गुण विशेषा।
क्षुद्र घट किकनी अनूप धुन सुहाई।
गिरिधर के अग अग मीराँ बलि जाई।

पाठान्तर ४,

जब ते मोय नन्दनन्दन दृष्टि पड्यो भाई।
हरि की कहा कहों सुन्दरता बरनी नही जाई।
मोरन की चन्द्रकला सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल तीन लोक मोहै।
कुडल की अलक झलक कपोलन पर छाई।
मानो मीन सरवर तज मकर मिलन आई।
भृकुटि कुटिल अति विसाल चितवन मे टौना।
खजन और मधुप मीन मोहै मृग छौना।
नासिका अति अनूप मद मद हाँसी।
दसन बरन दामिनि द्युति चमकत चपलासी।
कुभुक कठ भुज विशाल गिरिव तीन रेखा।
नटवर को भेख मानो सकल गुण विसेषा।
छुद्र घटिका अति अनूप किकनि धुन सवाई।
(उस) गिरिधर के अंग अंग मीराँ बलि जाई।

उपर्युक्त पाठ के विभिन्न पाठान्तरो मे कुछ शब्दो का ही हेर फेर है। यद्यपि प्रत्येक पाठ मे कुछ शब्द निरर्थक है तथापि कही भी भाव मे कोई विशेष अन्तर नही पडने पाया है।

२७

(१) कोई स्याम मनोहर ल्यो रे, सिर धरे मटकिया डोले।
(२) दधि को नॉव बिसर गई ग्वालन, हरि ल्यो हरि ल्यो बोले।

(iv) मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चेली भई बिन मोले।
(iii) कृष्ण रूप छकी है ग्वालिन, और ही और बोले। ॥४३७॥

उपर्युक्त पद मे तीसरी पक्ति मे ही टेक आ जाता है। चतुर्थ पक्ति को यदि तृतीय पक्ति के स्थान पर रख कर तृतीय पक्ति को ही, अन्तिम पक्ति बना दिया जाना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ऐसा करने पर द्वितीय और अन्तिम पक्ति की भाव-धारा मे व्यवधान भी नही पड़ेगा और मीराँ के पदो की परम्परा का भी निर्वाह हो जावेगा। तृतीय पक्ति के द्वितीयाश के प्रारम्भ मे 'चेली' शब्द के बदले 'चेरी' शब्द का होना अधिक सगत प्रतीत होता है।

२८

या ब्रज मे कछु देख्यो री टोना।
ले मकुटी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नन्दजी के छोना।
दधि को नाम बिसर गयो प्यारी, ले लेहुरी कोई स्याम सलोना।
वृन्दावन की कुज गलिन मे, आँख लगाई गयो मन मोहना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर सलोना। ॥४३८॥

उपर्युक्त तीनो पद विशेष विचारणीय है। इन तीनो की भाषा साहित्यिक है, भाव मे भी साहित्यिक उपमाएँ व चमत्कार है। इन पदो पर ब्रजभाषा मे प्राप्त वैष्णव साहित्य का गहरा प्रभाव बहुत ही स्पष्ट हो उठता है।

२९

शिव मठ पर सोहै लाल ध्वजा।
कौन कै सोहै हरी पीरी चुनरियाँ, कौन के सोहै भसम गोला।
गौरी कै सोहै हरी पीरी चुनरियाँ, शिव के सोहै भसम गोला।
कौन शिखर पर गौरी विराजै, कौन शिखर पर बम भोला।
उत्तर शिखर पर गौरी विराजे, दक्षिण शिखर पर बम भोला।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रभु के चरन पर चित मोरा। ॥४३९॥†

३०

शिव के मन मॉही बसी कासी।
आधी काशी बामन बनिया, आधी कासी सन्यासी।
काह करण को ब्राह्मण बनिया, काह करन को सन्यासी।
नेम धरम को ब्राह्मण बनिया, तप करने को सन्यासी।
कौन शिखर पर गौरी विराजै, कौन शिखर पर अविनासी।
उत्तर शिखर पर गौरी विराजै, दक्षिण शिखर पर अविनासी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, हरी चरणन पर मै दासी। ॥४४०॥†

उपर्युक्त पद की पॉचवी और छठी पक्तियॉ प्रथम पद की पॉचवी और छठीं पक्तियो की पुनरुक्ति मात्र है।

३१

वे न मिले जिनकी हम दासी।
पात पात विन्द्रावन ढूँढ्यो, ढूँढि फिरी सिगरी मै कासी।
कासी को लोग बडो बिसवासी, मुष मे राम बगल मे फासी।
आधी कासी मे बामण बनिया, आधी कासी बड़े सगसी।
मीरॉ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणा की रहो मै दासी ॥४४१॥†

इस पद की तीसरी पक्ति पद स० २८ की दूसरी पंक्ति की पुनरुक्ति ही प्रतीत होती है। "सगसी" कोई शब्द नही है। सम्भव है कि "सन्यासी" का ही अशुद्ध रूप चल गया हो।

इन तीनो ही पदो को भाव और भाषा के ही आधार पर प्रक्षिप्त कहना ही उपयुक्त प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति मे ही वह भावातिरेक और गाम्भीर्य नही है जो मीरॉ के पदो की विशेषता है। प्राप्त अधिकाश पदो की भाषा शैली का भी इन पदो की भाषा शैली से कोई साम्य नही बैठता। इतना ही नही, पदाभिक्तियो मे भी पूर्णतया पूर्वापर सबंध का निर्वाह नही हुआ है।

३२

नमो नमो तुलसी महाराणी, नमो नमो हरि की पटरानी।
जाके दरस परस अघ नासै, महिमा वेद पुरान बखानी।

शाखा पत्र भेज री कोमल, श्रीपति चरण कमल लपटानी।
धनि तुलसी पूरब तप कीन्हौ, शालिग्राम भई पटरानी।
शिव सनकादिक अस ब्रह्मादिक ,खोजत फिरे महामुनी ज्ञानी।
छप्पन भोग धरे हरि आगे, बिन तुलसी प्रभु एक न मानी।
धूप दीप नैवेद्य आरती, पुष्पन की वर्षा वर्षानी।
प्रेम प्रीति करी हरि बस कीन्ही, साँवरी सूरत हृदय हुलसानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भक्ति दान मोहि दियो महारानी।
॥४४२॥†

पद के द्वितीयार्द्ध मे अर्थ सगति का विशेष अभाव है। शिव और काशी वर्णन के पदो की तरह इस पद को भी भाव और भाषा के आधार पर प्रक्षिप्त मानना ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

३३

अजी ये लला जू आज गोकुल वासी।
गोकुल वासी प्राण हमारे, हाँ ललाजी, श्याम आये, भला।
श्याम सुन्दर अविनासी।
इत गोकुल उत मथुरा नगरी, हाँ लला जी, बीच ये भला।
बीचे नदी यमुना सी।
यमुना के तीरे धेनु चरावे, हाँ लला जी, हाथ लिये नौलासी।
वृन्दावन की कुंज गलिन मे, हाँ लला जी, सग दुलहिन राधा सी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हाँ ललाजी, तुम ठाकुर मै दासी।
॥४४३॥†

भाव भाषा के आधार पर प्रक्षिप्त ही प्रतीत होता है। इस शैली का यही एक पद प्राप्त है। पद मे पूर्वापर सबध और अर्थ सगत का अभाव है। "यमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे" जैसी अभिव्यक्ति की पुनरुक्ति अन्य कई पदो की तरह इसमे भी हुई है।

३४

नागर नन्दा रे मुगट पर वारी जाऊँ नागर नन्दा।
वनस्पति मे तुलसी बडी है, नदीयन मे बड़ी गंगा।

सब देवन मे शिवजी बडे है, तारन मे बडा चन्दा।
सब भक्त मे भरथरी बडे है, शरण राखो गोविन्दा।
मीरॉं के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल चित चन्दा ॥४४४॥†

३५

कृष्ण करो यजमान, अब तुम कृष्ण करो यजमान।
जाकी कीरत वेद बखानत, साखी देत पुरान।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहत, कुण्डल झलकत कान।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, दो दरशण का दान ॥४४५॥†

३६

माई मोरे नैन बसे रघुबीर।
कर सर चाप, कुसम सर लोचन, ढारे भए मन धीर।
ललित लवग लता नागर लीला, जब पेखो तब रनबीर।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, बरसत काचन नीर ॥४४६॥†

३७

दोनो ठाढे कदम की छइयॉं।
गौर वरण है ज्येष्ठ हमारा, श्याम वरण मोरे सइयॉं रे।
गौर के सिर जर कसबी नीरा, श्याम सिर मुकुट धरइया रे।
गौर के नाव बलभद्र भइया, श्याम के नाव कन्हैया रे।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, दोनो मोरे शीश नवइया रे ॥४४७॥†

३८

गोरस लीने नन्दलाल, रसमॉं गोरस लीजे।
मै हू वृषभानु नन्दिनी, तुम हो नन्दाजी के लाल।
मोर मुकट मुक्ता फूल कुन्डल, उर बैजन्ती माल।
मै दंधि बेचन जाती वृन्दाबन, रोकत है बिना काज।
बाई मीरॉं के प्रभु गिरधर ना गुण, बॉंह गहे की लाज ॥४४८॥†

खड़ी बोली

१

एरी बरजो जसोदा कान, मेरे घर नित्य आता है।
जिधर को मै जाती हूँ, वह मेरे सामा ही आता है।
मै जल जमुना भरन जात हूँ, मेरे सामा ही आता है।
ककरी दे मोरी बहिया मरोरी, बारजोरी मचाता है।
मै दहि बेचन जात वृन्दावन, चली पीछा से आता है।
दहि मटकी फोड माखन, मेरा लुट खाता है।
रास विलास करत गोकुल मे, बीसयाँ सुनाता है।
मीराँ के गिरधर मिलियाँ, चरण मे लगता है ॥४४९॥†

२

बसीवारे की चितवन सालति है।
मोर मुकुट मकराकृत कुडल, तापर कलंगी हालति है।
मै तो छकी तुमरे छबि ऊपर, जो न छके ताहै नालति है।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल चित लागति है।
॥४५०॥†

३

बता दे सखी सांवरियाँ को डेरो किती दूर।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी बीच बहे यमुना पूर।
मथुरा जी की मस्त गुवालिनी मुख पर बरसे नूर।
मीराँ के प्रभ गिरिधर नागर, साँवरे से मिलना जरूर।
॥४५१॥†

पंजाबी बोली

१

दसियो मोहन किस दानी।
आवदा जावदा नजर न आवै, अजब तमाशा इस दानी,।
दधि मेरी खायो मटुकिया फोरी, लोभी वह गोरस दानी।
मात यशोदा दधि विलोवै, गोरस ले ले नसदानी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, लूँ लूँ रस दानी ॥४५२॥†

†पदाभिव्यक्ति असगत है।

भोजपुरी बोली

१

मेरो मन बसि गयो गिरधर लाल सो।
मोर मुकुट पीताम्बरो, गल बैजन्ती माल।
गऊवन के सग डोलत हो, जसुमति को लाल।
कालिन्दी के तीर हो, कान्हा गऊवा चराय।
सीतल कदम की छहियाँ हो, मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ हो, ग्वालिन सब जाय।
बरजहूँ अपना दुलरवाँ हो, हमसे अरूझाय।
वृन्दावन क्रीडा करै हो, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि सब मोहै हो, ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन बरखे, मूसल जल धार।
बूडत ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर हो, सुनिये चितलाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सुहाय। ॥४५३॥

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर सबध का अभाव है।

बिहारी बोली

१

मै तो लागी रहो नन्दलाल सो।
हमरे बारहि दूज न पार।
लाल लाल पगिया झिन झिन बार।
साँकर खटोलना दुइ जन बीच।
मन कइले बरष, तन कइले कीच।
कहाँ गइले बछरु, कहाँ गइली गाय।
कहाँ गइले धेनु चरावन राय।
कहाँ गइले गोपी, कह गइले बाल ?
कहाँ गइले मुरली बजावनहार।
मीराँ के प्रभु गिरधर लाल।
तुम्हरे दरस बिन महल बेहाल ॥ ४५४ ॥

पदाभिव्यक्ति असगत और कही कही अर्थहीन भी है।

२

हरि सो बिनती कर जोरी।
बरबस रचल धमारी, हम पर मात पिता पारे गारी।
निपट अल्प बुधि हीन, दीन गति थोरी, प्रेम मकान रसले बसोरी।
मीराँ के प्रभु शरण तिहारी, ओचक आय मिलतु गिरधारी ॥४५५॥†

पद की तृतीय पक्ति अर्थहीन है।

३

जागिस गिरधारी लाल, भक्तन हितकारी।
दासी हाजर खवास, कचन ले झारी।

सऊच करो दंत धावन, स्नान की तय्यारी।
वस्त्र और पुष्प माल, तुलसी अति प्यारी।
रत्न जटित आभूषण, मुकुट लटक वारी।
धूप दीप नैवैद्य, आरती सवारी।
मीरॉं प्रभु विधी विधान चरणन चित हारी॥ ४५६॥†

पद की प्रथम पक्ति से बिहारी प्रभाव स्पष्ट है तथापि शेष पद की भाषा शुद्ध व्रजभाषा ही है। भाव और भाषा के आधार पर पद की प्रामाणिकता सदिग्ध है। पद की अन्तिम पक्ति का निम्नाकित पाठान्तर प्राप्त है :—"जागिये गिरिधारी लाल भक्तन हितकारी" इस पाठान्तर के आधार पर पद शुद्ध व्रजभाषा का हो जाता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

कनैया बल जाऊँ, अब नहि बसूँ रे गोकुल मे।
काली ओढे कामली रे, काली हेरे कहान।
वृन्दावन की कुंज गलिन मे, खेलत गोपी तज मान रे।
घेर आई गोवालन, घेर आये गोवाल।
हरिह जु नहि आये रे, मेरे मदन गोपाल।
सोने की बॅसरिया, रूपे की जजीर।
गावे न बजावे कान जी, भट जमुना के तीर।
जमना के नीरे तीरे बँगला बनावुँ।
बँगला के भीते भीते बेर बेर प्रेम चणाऊँ।
'मीरॉं' के प्रभु गिरिधर प्यारे लाल।
अब कोई मत पडो रे, मेरे ख्याल॥४५७॥†

२

लेने तुरी लकंडी रे, लेने तुरी कामली, गायो तो चरावा नहिं जाऊँ मावडी।
माखन तो बलभद्र ने खायो, हमने खायो खाटी हो रे छॉशडली।

वृन्दाबन ने मारग जाता; पाँवों मे खुँचे[1] झीनी काँकडली ।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर नागुण, चरण कलम चित राखडली ।।४५८।।†

३

नन्दलाल नही रे आऊँ मुझे घरे काम छे,तुलसीनी माला मे श्याम छे ।
वन्द्राते वनने मारग जता, राधा गोरी ने कान श्याम छे।
वन्द्राते वन मॅ रास रचो छे, सहस्त्र गोपी मँ एक श्याम छे।
वन्द्राते वन ने मारग जाता, दान आथानि[2] धनी हाम[3] छे।
वन्द्राते वननी कुञ्ज गलिन मँ, घरे घरे गोपियो मे डाम छे।
आनी तेरे गगा वाला पेरी तेरे जमुना, वह माँ गोकुल यू गाम छे।
गामना वालो ना मारे महीना वलोना,महिणा धुनियानी घनी हाम छे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरन मे सुख स्याम छे ।।४५९।।†

४

वारे वारे कहोने कहीए दिलडानी वातो, वारे वारे कहोने कहीए।
आगे तमे बोलड़ा बोल्या मारा राज ।
ते बोलड़ा सभारी[4] मने कहे तॉ आवे लाज।
पॉडवोनी प्रतिज्ञा पाली, द्रौपदी नी राखी लाज।
सुदामानी वेला वारी, उगार्यो प्रह्लाद ।
प्रजापतिए नीभामाँ पूरियाँ , माँहे देवतानो वास।
माजारी[5] ना बच्चा रे राख्याँ, एवा श्री महाराज।
वृन्दावन थी सालुडा लाव्या[6], राधाजी ने काज।
पहेरी ओढी महेले आव्या, रीझ्या श्री महाराज।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, सोहागी बनी सजी साज।।४६०।।†

---

१ चुभती है, २ देनेकी, ३ इच्छा, ४ सुनकर, ५ बिल्ली, ६ लाये ।

५

आँखलडी बाँकी रे, अलबेला तारी, आँखडली बाँकी।
चारवणीमाँ मारा चित्त चोरी लीधा[१],नेणे मोहनी नाखी।
नेण कमलना भलका[२] मारे, अेणे मार्या ताकी ताकी रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागुण,नीत चरण कमलनी दासी रे।।४६१।।†

६

झगडो लाग्यो श्री जमना जी आरे, चल्याने मॉरे शुँ छे।
वृन्दावन ना मारग जाताँ, हॉरे आगल आवी[३] का घेरे।
वृन्दाबननी कुज गलीन म्राँ, पालव आवी का झेरे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागुण,गोपी ओने लाड लडावे।।४६२।।†

७

कोण भरे रे पानी कोण भरे, जमनानाँ पाणी कोण भरे।
घर म्हाँरू दूर गागर शिर भारी, अरे खोटी थाँऊ तो घेर बेठणी बढे।
शिर पर कलश कलश पर झारी, झारी पे बेठी झारी मोज करे।
आणी तेरे गगा पेली तीरे जमना, वचमाँ[४] कानुडे रग रास रमे[५]।
साव सोनानो मारो घाट घडुलो, उठाणीए तो रत्न कनक जडे।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्त ध्यान ठरे।।४६३।।†

८

चाल सखी वृन्दाबन जइये, जीवन जोवाने[६], महीनी मढुकी ओ माथे लई।
श्याम सुन्दर ने भावे भेट जो, तेणे दु खडा सहु शमावशे[७] रे।
मीराँ बाई प्रभु गिरधर नागर, भावजी मारग माँ आवशे रे।।४६४।।†

---

१ लिया, २ चमक, ३ आकर, ४ बीच मे, ५ खेले, ६ देखने के लिए, ७ शामिल हो जावेगे, नष्ट हो जावेगे।

९

चढी ने कदम्ब पर बैठो रे, वालो मारो चीर तो हरी ने।
माता जसोदा नो कुँवर कन्हैया, नागर नन्दजी नो बेटो रे।
मोर मुकुट सिर बिराजे, पहिर्‌यो छे पीलो लपेटो रे।
नहाया धोया मैं केम[1] करी आवी ये, नाखो[2] ने नवरंग रेटो रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, को उतारू ने अने हेठो[3] रे ॥४६५॥†

१०

नाव रीसायो रे, बेनी मारो नाव रीसाचो रे।
चोरामा जोया[4] ने चौटामाँ जोयो, फलीयाँ जोयाँ पूरी पूरी ने।
हाथ माँ दीवलडो ने घेर घेर जोती, जोती अणे धणु[5] रोती।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित देती ॥४६६॥†

११

कानुड न जाणी मोरी पीर।
बाई हुँ तो बाल कुँवारी रे, कानुडे न जाणी मोरी पीर।
जलरे जमनाँ अमे पाणीडाँ गया ना, वाहला कानुडे उठाडाया आच्छानीर॥
उडाया फर ऽऽऽ रे।
वृन्दा रे वनमाँ वालछै, रास रच्यो सोलसे गोपियाँ ताण्याँ चीर।
फाट्याँ चर ऽऽऽ रे।
हुँ[6] वरणागी काहना तमारो[7] र नामनी रे, कानुडे मारया छे अमने तीर।
वाग्याँ अरऽऽऽरे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, कानुडे बाली ने फेकी ऊँचे नीर।
राख ऊँडे फर ऽऽऽ रे ॥४६७॥†

---

१ कैसे, २ डालो, ३ नीचा, ४ देखा, ५ बहुत, ६ मै, ७ तुम्हारा।

१२

कॉकरी मारे घूनारो कान, पाणीलॉ केम करी जई ये।
आ[१] कॉढे[२] गगा वहाला, पेली[३] कॉठे जमना जी, वचमॉ गोकुलीऊँ गाम।
सोना उठाणी मारूँ, रूपानु बेठँ वा'लॉ, हलवो चढावत कानो करे काम।
मारे मदरिए मारी सासु रहे छे वा'ला, सामा मदरीए मारो श्याम।
बाई मीरॉ के प्रभु गिरधर नागुण, भावे भेटो[४] भगवान ॥४६८॥†

१३

भूली मोतियन को हार, सखी तट जमुना किनारे।
एक एक मोती मारूँ लाख टकानु वाला, परोव्युं सुवरण के रे तार।
सासु हमारी अती बढकारी[५] वा'ला, नन्दन बिखड़ानु[६] झार।
सासु हमारो परम सुहागी, मारा छे मोहना बान।
बाई मीरॉ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित ध्यान ॥४६९॥†

१४

हॉरे कोइ माधवल्यो, माधवल्यो, बेचती व्रजनारी रे।
माधव ने मटुकी मॉ घाली, गोपी लटके लटके चाली रे।
हॉरे गोपी घेलुँ शुं[७] बोलती जाय, मटुकी माँ न समाय रे।
नव मानो तो जुवो[८] उतारी, मॉही जुवे तो कुजबिहारी रे।
वृन्दाबन मॉ जाता दहाडी वा'लो गो चार छे गिरधारी रे।
गोपी चाली वृन्दाबन वाटे, सौ व्रजनी गोपियो साथे रे।
मीरॉ कहे प्रभु गिरधर नागर, जेना चरण कमल सुख सागर रे ॥४७०॥

उपर्युक्त पद से भाव साम्य रखता हुआ एक पद ब्रजभाषा मे भी मिलता है।

---

१ इस, २ और, ३ उस, ४ मिलो, ५ क्रोधी, ६ विषका, ७ पागल की तरह, ८ देख लो।

१५

मेलो ने मारगड़ो मेलीनी मावा।
वाटे ने घाटे रोको साँवलिया हारे मारा पाल बडा सावा।
रसिया जी सु सहोर करो छो, जीवन दो जावा।
मीराँ बाई के शुभ गिरधर ना गुण, गुण तो गोविन्द नु गावा ।।४७१।।

१६

मने मेली ना जाशो भावा रे, आ व्रज मा केम वैसीए बोलारे, भेली ना जाशो।
जे जोइए ते तमणे आणी आपु बोला, मीठाई मेवा खावा रे।
आ बीजाँ घणा घणा तमने बाना रे करती, नहि देऊ तमने जावा रे।
कब की ठारी अरज करूँ छूँ, अेटली[१] अरज मोरी मानो ब्रज बाबा रे।
जल जमनाँ रे जल भरवाँ गयाँ ताँ वहाला, सुन्दर गयाँ ता न्हावा रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण वहाला, शाम लिओ चित्र थे मनावा रे।
।।४७२।।†

१७

जल भरवा के म जाऊँ, कानो मारी केडे[२] पड्यो रे।
साव सोनानु घाट घडुला वाला, उढानिए रतन जड़ाऊँ रे।
मारग माँ वा'लो पानिला मागे, सहिय[३] देखता[४] केम[५] पाऊँ रे।
नाथ जी हमारा निरलज थई बैठा, वा'ला हुँ निरलज केम थाऊँ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, हरी चरणे ध्यान धराऊँ।
।।४७३।।†

१८

काँनुडे कामण[६] कीधा[७], ओधव ने वा'ल, कानुड़े काँमण कीधाँ।
वृन्दावन माँ धेनु चरावे वा'लो, मोरलीए मनड़ा गोपी बिधाँ।
जल जमनाँ भरवाँ ने गयाँ ताँ, ताँ पालव पकड़ी मन लीधाँ।

---

१ इतना, २ पीछे, ३ सखियो के, ४ देखते हुये, ५ कैसे, ६ सम्मोहन, जादू, ७ किया ।

राधा नो कथ[1] कामण[2] गारो।
मीरॉंबाई के प्रभु गिरिधर ना गुण वा'ला, भव सागर थी[3] हमने तारो।
॥४७४॥†

१९

प्रेम नी प्रेम नी प्रेम नी रे, मन लागी कटारी प्रेम नी रे।
जल जमुना मॉं भरवा गयातॉं, इती गागर माथे इमे नीरे।
कॉंचे ते तॉंत न हरि जी पे बॉंधी, जेम खेचे तेम नी रे।
'मीरॉं' के प्रभु गिरधर नागर, सॉंवली सुरत सुभ एक नी रे॥४७५॥†

श्री विष्णु कुमारी 'मजु' ने उपर्युक्त पद को मीरॉं कृत मानने मे सन्देह प्रकट किया है। परन्तु "मीराबाई की शब्दावली" वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग मे लिखित होने के कारण इसमे उल्लिखित है।

२०

जागो रे अलबेला कान्हा, मोटा मुकुट धारी र।
सहु दुनिया तो सुती जागी, प्रभु तुम्हारी निद्रा भारी रे।
गोकुल गामिनी गायो छूटी, वनज करे व्यापारी रे।
दातन करो तमे आद देवा, मुख धुओ मुरारी रे।
भात भात ना भोजन निपाया[5], भरी सुवरण थीली रे।
लवॅग सुपारी न एलची, प्रभु पाननी बीडी वाली रे।
प्रीत करी बाओ पुरुषोत्तम, अवडावे[6] ब्रजनी नारी रे।
कस नीत मे वस काढी, मासी पूतना मारी रे।
पताले जाई काली नाग नाथ्यो, अॅवली करी असारी रे।
मीरॉं के प्रभु गिरधर नागर, हुॅ छे दासी तमारी रे॥४७६॥

२१

ब्रजमा कयम र' वाशे, ओधवना वा' ला, ब्रजमा कयम रे' वाशे।
आठ दाहाड़ानी[7] अवध करीने गया छे वा'ला, खर मास थया छे[8] हरि ने।

---

१ पति, २ जादू करनेवाला, ३ से, ४ सब, ५ बनाया, ६ अच्छा लगे, ७ दिवस, ८ हो गये।

वृन्दाबन नी कुज गली माँ वा'ला, बेठा छे मुख मोरली धटी ने।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण वा'ला, अमोरह्या छे आँसडा[1] मरी ने।
।।४७७।।†

२२

शामले मेल्याँ ते विसारी, ओधवने वा'ले शामले ते मेयाँ विसारी।
प्रीत करीने पालव पकडो वा'ला, प्रेम नी कटारी मुने मारी।
गोकुल थी मथुरामाँ गया छो वा'ला, कुब्जा से लागी छे ताली।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल बलिहारी ।।४७८।।†

२३

लालने लोचनीए दिल लीधाँरे,माडी मारा,लालने लोचनीए दिल लीधाँ रे।
जत्र मणी वा'लो मुझ पर डारे वा'लो, वेला कबेलाजाँ कामण मने कीधाँ रे।
जल जमना ना जल भरवाँ गयाँ ताँ वा'ला, घुँघटड़ा माँ घेरी लीधाँ रे।
चुन चुन कलिया वाली सेज बनावुँ वाहला, भ्रमर पलग सुख लीधाँ रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल मे चित्त चोरी लीधाँ रे।
।।४७९।।†

२४

लेशे रे महीडाँ केरा दान आ तो मोढुँ, लेशे रे महीडा केराँ दाण।
अमो अबला कइ सबल सुवालाँ वा'ला, आवड़ी शी खेचा ताण।
नन्दना घरना गोवालियो रे, ओल्ख्या बिना रे भ्रखु माण।
मधराते मथुराथी रे नाठो, ते तो अमणे न थी रे अजाण।
वृन्दावन ने मारगे जाताँ, तुँ तो शेणे माँगे छे रे दाण।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल नु चित्तडा मे ध्यान ।।४८०।।†

२५

कोने[2] कोने कहुँ दिलडानी बात, वारे वारे कोने कोने कैहुँ।
पाँडवनी प्रतिज्ञा पाली, द्रौपदी नी राखी लाज रे,

१ आशा, २ किसको।

३१

वृजमाँ नाव्या[1] फरीने[2] गोपीनो वा'लो, व्रज माँ नाव्या फरीनो।
गामने गोकुल यो मेली मथुरा पधारिया वा'लो, जईवरिया कुब्जा कारीनो।
सातरी दिवस हरि वादो करीने गयो छो, षटमास थमाछे हरी ने।
सोलसे गोपी नो साथे रास रचे थे वा'ला, उमा मुख मुरली धरीने।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुन वा ला, चरन कमल चित हरी ने।
॥४८७॥†

३२

गगरिया वेडा ढलसे, उढानी मारी आपो, गागरिया वेडा ढलसे।
साव सो नानी मारी, जड़ित्र उघानी वा'ला, सुने री तार मारो खड़से।
कस तो दाय नो कुरु छे राज वा'ला, कस कहयू जू पडसे।
जल रे जमुना ना वा'ला मोटो छे आरो रे, नित्य उठि नाहवाँ जाऊ परसे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर वा'ला, गोपी नो स्वामी मुझने मलसे।
॥४८८॥†

३३

वा'ला ना कान हेडा रे ओधव जी, एवा काल ना कठन हेडा रे।
टीटू डीना इण्डा[3] डगरिया मञ्जारी, ना राख्या दइया रे।
ग्रेह थी गजराज उगारियो, गोकुल मा चारी गइया रे।
गोकुल सघन रेलतु राख्युँ, गोबरधन कर धरिया रे।
मीराँ गावे गिरधर ना गुन, मै तो तोरे लागूँ पइया रे॥४८९॥†

३४

उढानी मोरे आलो रे, गागरिया बेढा ढलसे।
जल जमना भरूआ गयाँ ता, चीर खस्योने बेढु परसे।

---

१ न + आव्या—नाव्या अर्थात् नही आये, २ लौटकर, ३ अण्डा।

सास हठीली मारी ननद धुतारी, नाधड़े दीयरियो मूजने बढसे।
मीराँ गावे प्रभु गिरधर ना गुन, चरण कमल चित हर से ॥४९०॥†

३५

ज्ञान कटारी मारी, अमने प्रेम कटारी मारी।
मारे आँगणे रे रामजी तपसीओ तापे रे,
कानै कुडल जटाँधारी रे, राणाजी अमने।
मकनोसो[1] हाथी रामजी, लाल अबाडी[2] रे,
अँकुश दई दई हारी रे।
खारा समुद्र माँ अमृत नाँ बहे लियुँ रे,
अेवी[3] छे भक्ति अमारी रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,
चरण कमल बलिहारी रे ॥४९१॥†

३६

राखो रे श्याम हरि लज्जा मोरी, राखो श्याम हरि।
भीम ही बैठे, अर्जुन ही बैठे, तेणे[4] मारी गरज ना खरी।
दुष्ट दुर्योधन चीरने खेचावे, सभा बीच खडी रे करी।
गरूड चढीने गोविन्द जी रे आव्या, चीरना तो वाण भरी।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरणे आवे तो उबरी ॥४९२॥†

३७

ओ आवे हरि हसता सजनी, ओ आवे हरि हसता।
मुझ अबला एकलडी जानी, पीताम्बर केड़े कसता।
पचरगी पाध केसरिया रे बाधा, फुलडा मेहेले तोरा।

---

१ मदमाता, २ हौदा, ३ ऐसी, ४ उनसे ।

मारे आँगिनए द्राख बिजोरा, मेवले भराऊँ तारा खोला[१] ।
प्रीत करे ने तेनी पुठ न मेले, पासे थी से नथी खसता[२] ।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, हाँ रे वालो हृदय कमलमाँ बसता ।
॥४९३॥†

३८

दव[३] तो लागेल डुँगर[४] मे, कहो ने ओधा जी हवे केम करी अे ।
केम ते करी अे, अमे केम करी अे, दव तो लागेल डुगर मे ।
छालवा[५] जइये तो वाहला हाली न शकीए, वेशी रहीए तो अमे बली मरीए रे ।
आरे वरतीए नथी ठेकाणुंरू रे, वाहला हेरी परवरती नी पाँखे अमे फरीए रे ।
ससार सागर महाजण भरीओ वाहला हेरी, वाँहेड़ी झालो नीकर बूडी मरीए रे ।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर हेरी, गुरु जी तारे तो अमे अमे तरीए रे । ॥४९४॥†

३९

जाण्यूँ जाण्यूँ हेत तमारू जदवारे लोल, हेतज होय तो हुई डामा बरताय जो,
अमे तमारी आँख डिये अलखामणा[६] रे लोल, बालप होय तो नयणा माँ कलकाय जो ।
पारिजातक नूँ फूल रे नारद लखियारे लोल;
जै सोप्यूँ राणी रुकमणी ने दरवार जो ।
राके पाखडकी मारे मदिर नव मोकली रे लोल;
कीधी मुज थीरा अदकेरी नार जो ।
अचरत पाम्या ने आनन्द उतर्यो रे लोल,
जाओ जाओ जाओ नहि बोलूँ सुन्दर श्याम जो ।

---

१ गोद, २ हटना, ३ अग्नि, ४ जगल, ५ दौडना, ६ परिचय ।

रूकमणी ने मदिर जैने रंगे रमोरे लोल,
हवे तमारे अमसाथे शुं काम जो।
अलगा रहो अलबेला मने अडशो नही रे लोल,
तम साथे नैहि बोलूँ नदकुमार जो।
भले ने पधारो मोनती तणे रे लोल,
आज पही आवशोमा मारे द्वार जो।
नारदे कह्यूँ सतभामा साभलो रे लोल,
ऐ निर्लज ने नथी तमारू काम जो।
काला ने वा'ला करतो ते आवशेरे लोल,
मोटा कुलनी मूक शोभा मान जो।
उतरया आभ्रणारे सर्वे अग थकी रे लोल,
लो शामलिया तमारो शणगार जो।
मारा रे मैयरनी ओढूँ आढ़णी रे लोल,
बीजूँ आयो माने ती दरबार जो।
चरणा चीर उतारी चोली चूँदरी रे लोल,
उरथ की उतारयो नवसर हार जो।
काबी ने कडला रे भोटी डामणी रे लोल,
सर्व संभाली लेजो नन्दकुमार जो।
आगलथी नव जाण्यूँ मे तो रावडूँ रे लोल,
धरथी न जाण्यूँ धूतारानो ढग जो।
वाला पणरी प्रीत अमारी पालटी रे लोल,
ए निर्लज ने शानो दीजे रग जो।
धीरज नी बातो धरथी जाणी नही रे लोल;
प्रीत करीने परवश कीधा प्राण जो।
कालजणा कोरी ने भीतर भेदिया रे लोल,
मीट उलियाँ मांर्या मोहना वाण जो।
प्रीत करी पर हरऊँ नोतू पधारू रे लोल,
थोडा दिवस माँ शूँ दीधा मने सुख जो।

स्वपनाना सुख डारे स्वपने पही गया रे लोल;
देहड़ लीमां प्रगट्या दारुण दुख जो।
पूरण पाप मल्यां रे अे अबला तणां रे लोल,
जेनो परण्यो पर घेर रमवा जाय जो।
अवोलड़ा लीधा रे वाले वेहाथीरे लोल,
जे नारी नूँ जोबन भोला खाय जो।
पाणीडा पीनेरे घर शूँ पूछिये रे लोल,
तेरीं पिता अे शोध्या पूरण बैर जो।
उद्देरी आपी रे अेना हात मारे लोल,
गल थूथी मा घोल न पाया अरे जो।
शोकडलीना वे मने बहु साभवेरे लोल,
नयणथी छूटे छै जलनी धार जो।
हैडू नव फोड्यू रे हजूए अमतणूँ रे लोल,
उर ऊपर काई अहृचा मेघ मलार जो।
रावा ने मेण सूँ बोलो मुख कीरे लोल,
कुलवन्ती तमे केम करो कल्यान्त जो।
पटराणी तमथी बीजी घारी न थी रे लोल,
घणो वघारे घरे घरे विरोध जो।
साँचू जो कहु तो तमे नव सांभलो रे लोल;
तोरा तमारू मन नव माने काम जो।
मोहन जी कहेरे सती तमे साभलोरे लोल;
कहो तो मंगावू पारिजातक नू आड़ जो।
आणी ने रोपाऊ तमारो आँगणे रे लोल;
राणी रोषत जी ने मूको राड़ जो ॥४९५॥†

राधा वर्णन

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

मोहन जावो कठे[१] सावरियाँ मोहन जावो कठे।
तुम रहो न अठे[२] सावरियाँ मोहन जावो कठे।
गोकुल बसवो फीको लागे, मथुरा मे काई लड्डु बटे।
नित को आणो जाणो छोडि दे, नित के आये जाये से तेरा मान घटे।
राधा रुक्मण और सतभामा, कुब्जा ने कोई लीनी पटे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम सुमराँ सूँ सकट कटे ।।४९६।।†

पाठान्तर १,

जावो कठे रे रामा, रह्वो अठे सांवलियाँ।
नित काई जावो, नित कांई आवो, नित का जाया से मान घटे।
गोकुल बसवो फिकोई लागे, मथुरा मे काई लाडु बटे।
गोकुल मे काई धेनु चरावे, मथुरा मे काई राज लुटे।
राधाई रुक्मण और सतभामा, कुब्जा काई थारे संग पटे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, तुम सुमराँ सूँ सकट कटे।

उपर्युक्त पदाभिव्यक्तियो मे पूर्वापर सबध का अभाव है। 'चन्द्रसखी' के नाम पर प्रचलित एक ऐसा निम्नाकित पद मिलता है जिसका उपर्युक्त पदो से गहरा साम्य है।

कांई मिस आया छोजी राज अठे।
राय आगणिये ठाढा रहियो, आगे जावोला[३] कठे।
राधा रुक्मण अर सतभामा, कुब्जा ने कांई लीनो पटे।

---

१ कहाँ, २ यहाँ, ३ जावेगे।

हाथ को हीरो खोय दियो है, खोटी लाल सटे।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, लीनी है सीस सटे।

उपर्युक्त पदो के साम्य को देखते हुए चन्द्रसखी का ही यह पद कुछ हेर फेर के साथ मीराँ के नाम पर भी चल पडा हो, ऐसा असम्भव नही प्रतीत होता।

२

आली ! म्हाने लागे वृन्दावन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविन्द जी को।
निरमल नीर बहत जमुना मे भोजन दूध दही को।
रतन सिघासन आप विराजै, मुगट धर्‌यो तुलसी को।
कुजन कुजन फिरत राधिका, सबद सुनत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भजन बिना नर फीको ॥४९७॥

३

उधो ! म्हांने लागे वृन्दावन नीको रे।
वृन्दावन मे धेनु बोहोत है, भोजन दूध दही को।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, सिर केसर को टीको।
घर घर मे तुलसी को बिड़लौ, दरसण माधवजी को रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरी बिना सब फीको रे ॥४९८॥

उपर्युक्त दोनो पदो का गहरा साम्य विचारणीय है। बहुत सम्भव है कि ये दो स्वतत्र पद न होकर एक ही पद के गेय रूपान्तर हो।

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

आवत मोरी गलियन मे गिरधारी, मै तो छुप गई लाज की मारी।
कुसुमल पाग केसर्या जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपरे छत्र विराजे, कुडल की छबि न्यारी[१]।
केसरी चीर दरियाई को लेगो, ऊपर अगिया भारी।
आवते देखे किसन मुरारी, छुप गई राधा प्यारी।
मोर मुकुट मनोहर सोहै, नथनी की छबि न्यारी।
गल मोतियन की माल विराजे, चरण कमल बलिहारी।
ऊभी[२] राधा प्यारी अरज करत है, सुर्णं जे किसन मुरारी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पर बारी ॥४९९॥†

पद को तीन अशो मे बाँटा जा सकता है। प्रथमांश "आवत मोरी अगिया भारी" मे अपनी व्यक्तिगत भावो की अभिव्यक्ति है। "आवते देखे ·· ·किसन मुरारी" लगभग प्रथम पक्ति की ही पुनरुक्ति है। परन्तु जहाँ प्रथम पक्ति मे अपनी भावनाओ का ही वर्णन हुआ है, वहाँ द्वितीयाश मे उन्ही भावों का राधा मे आरोप किया गया है। तृतीयांश "ऊभी राधा पर बारी" का शेष पद से समन्वय ही नही होता। ऐसे सगति-हीन पदों की प्रामाणिकता विशेष सदिग्ध है।

२

थाने कुब्जा ही मनमानी, हम सो न बोलना हो राज।
हमरी कहा सुनी विष लागे, वाहा जाय प्रेम रस पागे।
उन सग हिलमिल रहना, हँसना बोलना हो राज।
हम सो कहे सिगार उतारो, दृग अजन सब ही धोयँ डारो।

१ अपूर्व, २ खडी हुई।

छापा तिलक सवारो, पहिरो चोलना हो राज।
जमना के तट धेनु चरावे, बेसी मे कछु अचरज गावे।
नई नई तान सुनावे, छाछ मछोलना जी राज।
म्हारी प्रीत तुम्ही सो लागी, कुल मरजाद सब ही हम त्यागे।
मीरॉ के प्रभु गिरधारी, बन बन डोलना हो राज ॥५००॥†

इस पद को भी स्पष्ट ही दो भागो मे बॉटा जा सकता है। "थाने कुब्जा हो ·····चोलना हो राज।" प्रथमाश है। बीच की दो पक्तियो "जमुना के तट ·····छाछ मछोलना जी राज" का पूर्वा श से कोई सबन्ध नही प्रतीत होता। "छाछ मछोलना जी राज" जैसी अभिव्यक्ति भी निरर्थक ही प्रतीत होती है। फिर पद की आठवी पक्ति का सबन्ध पूर्वार्द्ध से ही जुडता है, जब कि अन्तिम पक्ति सम्पूर्ण पद से भिन्न पड़ती है। अन्तिम पक्ति मे "मीरॉ क प्रभु गिरधारी" जसा प्रयोग भी सर्वथा नूतन है।

पद की भाषा मे राजस्थानी और भोजपुरी का सम्मिश्रण हुआ है, जिसका कारण एकमात्र गेय परम्परा ही हो सकती है।

पाठान्तर १,

थारे कुब्जा ही मनमानी, म्हॉसूँ अनबोलना हो राज।
हम से कहै सुहाग उतारो, दृग अंजन सब ही धो डारो।
माथे तिलक चढावो, पहरो चोलना हो राज।
हमरी कही बिषै सम लागै, घर घर जाय भवर रस पागै।
उन्ही के सग रहना, हँसना बोलना हो राज।
वृन्दावन मे धेनु चरावै, बसी मे कछु अचरज गावै।
बाकी तान सनावे, छतिया छोलना[1] हो राज।
हमरी प्रीत तुम्ही सग लागे, लोक लाज सब कुल को त्यागी।
मीरॉं के प्रभु गिरिधर, बन बन डोलना हो राज।†

---

१ छीलना, जलाना।

पाठान्तर २,

थाके दासी ही मनमानी, म्हाँसे अनबोलना हो राज।
हमकँ कहै सिगार उतारो, दृग अजन सबही धो डारो।
माँथे तिलक लगावो, पहैरो चोलणा हो राज।
कुबज्या कंवर कंस की दासी, ज्यां देखवाँ मोये आवत हाँसी।
ज्यो पटराणी कीनी, हँस बोलणां म्हाराज।
कुबज्या के संग भोग बणायो, हमको लिख कर जोग पठायो।
मीराँ भई दिवानी. बन बन डोलणा हो राज।†

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

तेरो कान्ह कालो हो भाई, मेरी राधे गोरी हो।
ऐसी राधे रूप बनी, कचन सी देह ठनी।
ऐसो कारो कान्ह पर, कोटि राधे वारी हो।
गोकुल उजार कीनो, मथुरा बसाय लीनी।
कुब्जा कूँ राज दीनो, राधे को बिसारी हो।
बिनती सुनो ब्रजराज, लागूँगी तुम्हारे पाय।
मीराँ प्रभु सों कहीयो जाय, सेवक तुम्हारी हो॥५०१॥†

इस पद मे भी भाव सामजस्य नही है। "तेरो कान्ह ····राधे वारी हो" प्रथमाश मे स्पष्ट है कि कथनोपकथन दो व्यक्तियो के बीच हो रहा है। "गोकुल उजार ····बिसारी हो" वाला अश एक शिकायत के रूप मे ही आता है जिसका प्रथमाश से कोई सबन्ध नही प्रतीत होता। छठी पक्ति मे बिनती स्वय "ब्रजराय" को ही सुनायी गयी है, जब कि अन्तिम पक्ति से यही स्पष्ट होता है कि "ब्रजराय" तक सदेशा पहुँचा देने की "बीनती" किसी अन्य से की जा रही है। एक ऐसा ही पद चन्द्रसखी के नाम पर भी पाया जाता है —

"कैसे व्याहूँ राधे, कन्हैयो तेरो कारो भाई।
घर घर री वो गऊ चरावै, ओढण कबल कारो।
छीन झपट दही खात बिरज मे, चलैगो कैसे राधे को गुजारो।
मेरी राधा अजब सुंदरी, तेरो कन्हैया कारो।
कारो कारो मत करो, कान्हो है बिरज को उजियारो।
नाग नाथ रेती पर डारचो, मारी फूँक कृष्ण भयो कारो।
पीताम्बर की कछनी काछै, मोहन मुरली वारो।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, कान्ह त्रिलोकी सूँ न्यारो।"

दोनो पदों मे भाव और भाषा साम्य के आधार पर यह कहा जा सकता है कि चन्द्रसखी का ही पद मीराँ के नाम पर प्रचलित हो गया है।

२

झूलत राधा सग गिरिधर।
अबीर गुलाल उडावत, राधा भरि पिचकारी रग।
लाल भई वृन्दावन, जमुना केशर चूवत रग।
नाचत ताल अधर सुर भरे, धिम धिम बाजे मृदग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरन कमल कूँ रग ।।५०२।।†

प्रथम पक्ति मे राधा का कृष्ण के सग झूलने की और शेष पद मे होली खेलने की ही अभिव्यक्ति है। पद की तीसरी पक्ति और अन्तिम पक्ति का द्वितीयांश "चरन कमल कूँ रग" अर्थहीन प्रतीत होता है।

†पाठान्तर १,

झुलत राधा सग गिरिधर, झुलत राधा संग।
अबील गुलाल की धुम मचाई, डारत पिचकारी रग।
लाळ भयो वृन्दावन जमना, केसर चुवत अनग।
नाचत ताल अधारे सुर सुन्दरी, डारी डारी बाजे ताल मृदंग।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, चरण कमल कूँ बहोत रंग।

४

कैसे आवों हो नन्दनलाल तेरी ब्रजनगरी, गोकुल नगरी।
इत मथुरा उत गोकुल नगरी, बीच बहे जमुना गहरी।
पॉव धर्‌याँ मेरी पायल भीजै, कूदि परौ वहि जाओ सारी।
मै दधि बेचन जात वृन्दावन, मारग मे मोहन झगरी।
बरज यशोदा अपने लाल को, छीन लई मोरी नथली।
रहु रहु ग्वालिन झूठ न बोलो, कान अकेलो तुम सगरी।
मेरो कन्हैया पाँच बरस कौ, तुम ग्वालन अलमस्त भई।
जाय पुकारो हो कंस राजा से, न्याय नही तेरी गोकुल नगरी।
वृन्दाबन की कुज गलिन मे, बॉह पकर राधे झगरी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, साधु संग करि हम सुधरी ॥५०४॥†

पदाभिव्यक्ति मे पूर्वापर संबंध और सगति का अभाव है। तृतीय पक्ति "पॉव धर्‌याँ" · · जाओं सारी" सर्वथा अर्थहीन है। "झूठ न बोलो," "तेरी," "तुम" आदि शब्दो से पद की भाषा पर खड़ी बोली का प्रभाव सुस्पष्ट हो उठता है। "अलमस्त" शब्द का प्रयोग उर्दू के प्रभाव को भी इगित करता है। इसी प्रकार का एक पद मीरॉ के नाम पर प्रचलित गुजराती पदों मे भी प्राप्त है।

५

हमरो प्रणाम बॉके बिहारी को।
मोर मुकुट माथे तिलक बिराजे, कुडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर बसी बाजे, रीझ रीझावै राधा प्यारी को।
यह छवि देख मगन भई मीरॉ, मोहन गिरिधारी को ॥५०५॥†

अन्तिम पक्ति की शैली सर्वथा नूतन है।

६

झट द्यो मेरो चीर रे मोरारी रे, झट द्यो मेरो चीर।
मेरो चीर कदम चढ बैठो, मै जल बीच उघाडी।

हॉरे वा'ला मै जलबीच उघाडी।
उभी राधा अरज करत है, दो चीर दो ओ गिरधारी।
प्रभु मै तेरे पाय परूँगी।
जो राधा तेरो चीर चहावत हो, जल से हो जा न्यारी।
हॉ रे, वा'ला जल से हो जा न्यारी।
जल से न्यारी कान्हा कबुए न होवृगी, तुम हो पुरुष हम नारी।
लाज मोकूँ आवत भारी।
तुम तो कुँवर नन्दलाल कहावो, मैं बृषभानु दुलारी।
हॉ रे, वा'ला मे वृषभानु दुलारी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर ना गुण, तुम जीते हम हारी।
चरण जाऊँ बलिहारी।। ५०६ ।।†

उपर्युक्त पद की भाषा पर खडी बोली का और शैली पर गुजराती भाषा मे प्राप्त पदों की शैली का प्रभाव सुस्पष्ट है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

वारो यशोदा तारा दानी ने, आली गारा आल करे छे।
लाडकवायो बाई लामज तमने, ते थी घनो राधा राणी ने।
जल यमुना जतॉ मारगे पालव, ग्रहियो मारो तानी न।
एक बार साख्युं बीजी बार साख्युं शरम तमारी घनी आनी ने।
बाई मीरॉ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित मानी ने ।।५०७।।†

२

बोले झीणा मोर, राधे तारा डुँगरिया पर बोले झीणा मोर।
ए मौर ही बोले ब पैया ही बोले, कोयल करे घन शोर।
······भली बीजली चमके, बादल हुआ घन घोर।
झरमर झरमर मेहुलो बरसे, भीजे मारा सालुडानी कोर।
बाई मीरॉ के प्रभु गिरिधर ना गुण, प्रभुजी म्हॉरा चितडानो चोर।।५०८।।†

३

काहानो माग्यो दे,धुतारो माग्यो दे,वर तो राधानो,मने कहानो माग्यो दे।
वृन्दारे वनमाँ जेदी रास रम्याँ, ता सोल से गोपी माँ घेलो कहान।
हाथी ने घोडा बाई माल खजाँना, हैया केरो हार ले मान।
तल भर जव भर वछो नव कीधो, जवे तोली ने पाछो ले।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल मे चित दे ।।५०९।।†

बाँसुरी वर्णन

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

कान्हा रसिया वृन्दाबन बासी।
जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावे,मुरली बजावे मृदुलासी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, श्रवण कुडल फलासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बिना मोल की दासी ।।५१०।।

पाठान्तर १,

म्हाँरी बालपना की परीति थे निभाज्यो रैना।
जमुना के नीराँ तीराँ धेनु चरावै, कुडल झलकत काना।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हर नौ माह रो धाना।

यह पद उपर्युक्त पद का गेय रुपान्तर मात्र प्रतीत होता है, क्योकि प्रथम पक्ति के सिवा सम्पूर्ण पद की भाव और भाषा भी लगभग एक ही है। विभिन्न स्थानो पर प्रचलित होने के कारण स्थानीय बोलियो का प्रभाव पदो से स्पष्ट होता है।

पद की भाषा पर राजस्थानी प्रभाव स्पष्ट है। इस रूपान्तर की अभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। इसी पद से साम्य रखता एक और भी निम्नाकित पद प्राप्त है --

या मोहन के मै रूप लुभानी।
सुन्दर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मद मुसकानी।

जमुना के नीरे तीरे धेनु चरावै, बसी मे गावै मीटी बानी।
तन मन धन गिरिधर पर वारूँ, चरण कवल माही लपटानी।

२

आजु मै दैख्यो गिरधारी।
सुन्दर बदन मदन की शोभा, चितवन अनियारी।
बजावत वशी कुज मे।
गावत ताल तरग रंग ध्वनि, नाचत ग्वाल गन मे।
माधुरी मूरति वह प्यारी।
बसि रहै निस दिन हिरदै बिच, टरै नही टारी।
वाही पर तन मन हो वारी।
वह मूर्ति मोहनि निहारत, लोक लाज डारी।
तुलसी बन कुँजन सचारी।
गिरिधर नवल नटनागर मीराँ बलिहारी ॥ ५११ ॥

३

प्यारी मै ऐसे दखे श्याम।
बाँसुरी बजावत गावत कल्याण।
कब की ठाढी भैयाँ, सुध बुध भूल गैयाँ।
छौने जैसे जादू डारा, भूले मोसे काम।
जब धुन कान पैयाँ, देह की ना सुध सैयाँ।
तन मन हर लीन्हो, विरहो वाले कान्ह।
मीराँ बहि प्रेम पाया, गिरिधर लाल ध्याया।
देह सो विदेह भैयाँ, लागो पग ध्यान ॥५१२॥†

उपर्युक्त पद मे तीन विभिन्न बोलियो का सम्मिश्रण विचारणीय है। पद की भाषा प्रमुखत ब्रज है तथापि क्रियापदो पर पजाबी प्रभाव स्पष्ट है। "मै ऐसे देखे श्याम", "पाया" आदि प्रयोगो से आधुनिक प्रभाव भी स्पष्ट हो उठता है। निम्नाकित एक और पद ऐसा मिलता है जिसकी प्रथम पक्ति उपर्युक्त पद की प्रथम पक्ति का पाठान्तर प्रतीत होती है, परन्तु शेष पद सर्वथा विभिन्न पडता है।

४

कही ऐसे देखे री घनश्याम ।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल झलकत काना ।
सॉवरी सूरत पर तिलक बिराजे, तिस मे लगे रहे मेरे प्राना ।
बरसाने सो चली गुजरिया, नन्दग्राम को जाना ।
आगे केशव धेनु चरावे, लगे प्रेम के बाना ।
सागर सूखि कमल मुरझाना, हसा किया पयाना ।
भौरे रह गये प्रीति के धोखे, फेर मिलन को जाना ॥५१३॥†

इस पद में कही से भी यह स्पष्ट नही होता कि यह पद किस के द्वारा बनाया गया है, तथापि तथाकथित मीराँ क पदसग्रहो मे प्राप्त है। पदाभिव्यक्ति स्पष्ट ही अर्थहीन है ।

५

बॉके सॉवरियॉ ने घेरि मोहि आन के ।
जो गई जमुना जल भरन, मारग रोक्यो मेरो आन के ।
वृन्दाबन की कुज गलिन मे मुरली बजावे, आन तान के ।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, प्रीत पुरातन जान के ॥५१४॥†

६

भई हो बावरी सुन के बॉसुरी ।
श्रवण सुणत गोरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामें मनकी बॉसुरी ।
नेम धरम कोन कीनी मुरलिया, कौन तिहारे पासुरी ।
मीरॉ के प्रभु वश कर लीन्हे, सप्त तानिनि की फॉसुरी॥५१५॥†
पद की तृतीय पक्ति का शेष पद से समन्वय नही होता ।

७

मुरलिया बाजे जमुना तीर ।
मुरलि सुनत मेरो मन हरि लीन्हों, चीत धरत नही धीर ।
कारो कन्हैया, कारी कामरिया,कारो जमुना को नीर ।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पै सीर ॥५१६॥†

८

मोरे अगना मे मुरली बजाय गयो रे।
छोटे छोटे चरण, बडे बडे नयना,
वृन्दावन की कुज गलिन मे, मारि गयो सयना
मेरी आली, मेरी आली कहो कित जाऊँ,
मुरली मे गावै लै लै मेरो नाम ।
ऊँची नीची घाटी, मोसे चढऊँ न जाय,
मुरली की धुनि सुनि, मोसे रहऊँ न जाय।
कित गई गैया, कित गए ग्वाल, कित गये बसी बजावन हारा।
घर आई गैया, घर आये ग्वाल, अजहूँ न आये मेरे मदन गोपाल।
मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल, पाये है दर्शन भई निहाल ।
॥५१७॥†

उपर्युक्त पद मे पूर्वापर सबध का निर्वाह नही हुआ है। पद स० ३ और उपर्युक्त दोनो पदो मे 'मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर' न होकर "मीराँ के प्रभु गिरिधर लाल" का ही प्रयोग हुआ है, जो विचारणीय है।

९

कवन गुमान भरी बसी, तू कवन गुमान भरी।
अपने तन पै छेद परेचे, बाला तूँ बिछरी।
जॉत पॉत सब तेरो मै जाणूँ, तू बन की लकरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, राधा से क्यूँ झगरी॥५१८॥†

पद की दूसरी पक्ति का द्वितीयाश "बाला तू बिछरी" अर्थहीन प्रतीत होता है। ऐसा ही एक पद सूरदास का भी प्राप्त है :—

बॉसुरी तू कवन गुमान भरी।
सोने की नाही, रूपे की नाही, नाही रतन जरी।
जात सिफत तेरी सब कोई जानै, मधुवन की लकरी।

क्या री भयो जब हरि मुख लागी,बाजत विरह भरी।
सूरदास प्रभु अब क्या करिये, अधरन लागत री।
('बृहद्राग रत्नाकर' पद १५०, पृष्ठ ४८)

उपर्युक्त पदो मे भाव और भाषा देखते यही अधिक सम्भव प्रतीत होता है कि सूरदास का ही पद मीराँ के नाम पर भी चल पडा हो।

१०

राधा प्यारी दे डारो जू बसी हमारी।
ये बसी मे मेरा प्राण बसत है, वो बसी गई चोरी।
ना सोने की बसी, ना रूपे की, हरे हरे बाँस की पोरी।
घडी एक मुख मे,घडी एक कर मे,घडी एक अधर धरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर चरण कमल पर बरी ॥५१९॥†

पाठान्तर १,

श्री राधे रानी, दे डारो बंसी मोरी।
जा बसी मै मेरो प्राण बसत है, सो बसी गई चोरी।
काहे से गाऊँ, काहे से बजाऊँ, काहे से लाऊँ गैया घेरी।
मुख से गाओ कान्हा,हाथो से बजाओ,लकुटी से लाओ गैया घेरी।
हा हा करत तेरे पैया परत हूँ, तरस खाओ प्यारी मोरी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, बसी लेकर छोडी।

उपर्युक्त पाठान्तर में पहले पद से कुछ अधिक पक्तियाँ है। साथ ही इस पाठान्तर की भाषा के क्रिया पदो पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है। भाव और भाषा साम्य रखता हुआ एक ऐसा ही पद 'चन्द्र सखी' के नाम पर भी प्रचलित है —

श्री राधे रानी, दे डारो ना बाँसुरी मोरी।
जा बंसी मे मेरो प्राण बसत है, सो बंसी गई चोरी।

सोने की नाही कांन्हा, रूपे की नाही, हरे बॉस की पोरी।
काहे से गावूँ राधे, काहे से बजाऊँ, काहे से लाऊँ गैया घेरी।
मुख से गाओ प्यारे, ताल से बजावो, लकुटिया से लाओ गैया घेरी
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, हरि चरणन की चेरी।

११

चालो मन गगा जमुना तीर।
गगा जमुना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर।
बसी बजावत गावत कान्हा, सग लियो बलबीर।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, कुडल झलकत हीर।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कमल पै सीर ।।५२०।।

उपर्युक्त पद मे कुछ पक्तियॉ निम्नाकित रूप मे भी प्राप्त है —

द्वितीय पक्ति :—

"या बसी मे मेरो प्राण बसत है, वो बसी लेई गई चेरी।"

चतुर्थ पक्ति मे "घड़ी" शब्द के बदले "घटी" का भी प्रयोग मिलता है।

१२

बसीवारे हो कान्हा मोरी रे गागरी उतार।
गगरी उतार मेरो तिलक सभार।
यमुना के नीरे तीरे बरसीलो मेह,
छोटे से कन्हैया जी सू लागो म्हॉरो नेह।
वृन्दावन मे गऊएँ चरावे, तोर लियो गरवा को हार।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, तोरे गई बलिहार ।।५२१।।†

पदाभिव्यक्ति मे संगति नही है। उपर्युक्त पद की शैली का चन्द्रसखी के पदो की शैली से बहुत साम्य है।

१३

तो सो लाग्यो नेहरा, प्यारे नागर नंद कुमार।
मुरली तेरी मन हर्‌यो, विसर्‌यो घर व्यवहार।
जब ते श्रवननि धुनि परी, घर आगण न सुहावै।
पारधि ज्यूँ चूकै नही, मृगी बेधि दई आय।
पानी पीर न जानई ज्यों, मीन तडफि मरि जाय।
रसिक मधुप के मरम को, नहि समझत कमल सुभाव।
दीपक को जो दया नही, समझत उडि उडि मरत पतग।
मीराँ प्रभु गिरिधर मिले, जैसे पानी मिलि गयो रंग ॥५२२॥†

उपर्युक्त पद की प्रथम् पक्ति का निम्नांकित पाठान्तर प्राप्त है –
"तू नागर नन्दकुमार, तों सो लाग्यो नेहरा।"

१४

गाव राग कल्याण, मोहन गावे राग कल्याण।
आप गावे ने आप बजावे, मोरली सुँ मिलावे तान।
मोर पछी सिर मुकुट-बिराजे, कुण्डल झलके कान।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिधर नागर, गोपियें तजियो ध्यान।
॥५२३॥†

१५

गौड़ी तो अब मिट गई, जब अस्त भयो है भाण।
रात घटिका हो गई जब, प्रकट्‌यो राग कल्याण।
कल्याण कल्याण सब को कहै, मै क्या कहूँ कल्याण।
जा घेर सेवा श्याम की, ता घेर सदा कल्याण।
अगो अंग की उलट भयो, जब प्रकट्‌यो राग कल्याण।
कल्याण राग सो महाबली, सब राग को राखत मान।
सिघल देश की पद्मिनी, जपती राग कल्याण ॥५२४॥†

भाषा मे अर्थ-सगति नही है। उपर्युक्त पद मीरॉ-विरचित है ऐसा भी कोई आभास पदाभिव्यक्ति से नही मिलता।

पद स० ३, १४ और १५ इन तीनो ही पद मे राग कल्याण की व्युत्पत्ति का वर्णन या प्रशसा है।* पद स० ३ की भाषा पजाबी से प्रभावित है। पद स० २४ की भाषा शुद्ध ब्रजभाषा है और पद स० १५ की भाषा गुजराती से प्रभावित है। उपर्युक्त परिस्थिति मे ऐसे पदो को प्रक्षिप्त मानना ही युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

वागे छे रे, वागे छे रे, पेला वनडा माँ, मीठी वेणु वागे छे दुरनो उर लागे छे।
सासु सती माती सुख निद्रा माँ, जाऊँ तोरे ननदल जागे छे।
ससुरो हमरो परम सुहागी, दियेरी वो छन छेनो दिल माँ दाझे छे।
मीरॉ बाई के प्रभु गिरिधर ना गुण, जनम मरण भे भागे छे।।५२५।।†

२

अेरे मोरली नन्दावन रागी, बागी छे जमनाने तीरे रे।
मोरली ने नादे घेलॉ कीधाँ, मन कॉई कॉई कामण कीधॉ रे।
जमनाने नीर तीर धेनु चरावे, कॉधे काली कॉबली रे।
मोर मुगट पिताम्बर शोभे, मधुरी सी मोरली बजावे रे।
मीरॉ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरणकमल बलिहारी रे।।५२६।।†

३

चालो नी जोवा जइये रे, माँ मोरली वागी।
भर निद्रा माँ हुँरे सूती ती, जब कि ने जोवा जागी॰
वृन्दावन ने मारग जाता, सामो मलियो सुहागी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल लेहे लागी।।५२७।।†

४

एक दिन मोरली बजाई, कनैया एक दिन मोरली बजाई।
मोरली नाना दे मेरो मन हरि लीनो, ओम की सुरता उठाई।
गौओ तो सब घास ना खाये, ... ।
शर्वरी तो बली स्तभ भई हे, चन्द्र गयो छुपाई रे।
मेघ घटा घट थई रही छे, बादरी कारी गै वाही रे।
मीराँ बाई के प्रभु गिरिध्र्र नागर, चरण कमल चित छाई रे।
॥५२८॥†

५

लीधाँ रे भटके, म्हाँरा मन लीधाँ रे लटके।
गात्र रग कीधाँ गिरिधारिए, जो मार्या झटके।
मन रे मारू मोरली मे मोह्यु, पेला बाँस तणे कटके।
मीराँ के प्रभु गिरिधर ना गुण, हो रग लाग्य अटके ॥५२९॥†

६

मोरलीए मोह्याँ मोहन, तारी मोरलीए मन मोह्याँ।
थारे कारण शामलिया वाहला, गण भुवन मेणे जोया रे।
थारा सरीखा प्रभु नव कोई दीठा, गण भुवन मनडे न मोह्याँ रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्र प्रोयाँ रे ॥५३०॥†

७

मार्या छे मोहन बाण, वा'ली डे मार्या छे मोहना बाण।
तमारी मोरलीए माराँ मनड़ाँ बिधायाँ,बिधायाँ,तन मन प्राण।
वृन्दावन नें मारग जाताँ, हाँ रे मारो पालवडो मो ताण।
जल जमना जल भरवा गयाँ ताँ, काँठले उभो पेलो काण।
मीराँ बाई के प्रभु गिरधर ना गुण, चरण कमल चित्त आण ॥५३१॥†

८

वागे छे रे, वागे छे, वृन्दावन मुरली वागे छे,

तेनो शब्द गगन माँ गाँजे छे।

वन्द्रा ते वन ने मारग जाता, वा'लो दान दधिना माँगे छे।

वन्द्रा ते वन माँ रास रचायो छे, वा'लो रास मण्डल माँ विराजे छे।

पीला पीताम्बर जरकस जामा, वा'ला ने पीलो ते पटको विराजे छे।

काने ते कुण्डल मुस्तके मुगट, हाँरे वा'ला मुख पर मुरली विराजे छे।

वन्द्रा ते वन नी कुज गलिन माँ, वा'ले थनक थई थई नाचे छे।

बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, वा'ला दरशन यो दुखड़ा भागे छे।

॥५३२॥

नाथ-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

जावा दे जावा दे, जोगी किस का मीत।
सदा उदासी रहै मोरी सजनी, निपट अटपटी रीत।
बोलत बचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहि प्रीत।
मै जाणूँ या पार निभेगी, छाँड़ि चले अधबीच।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत ॥५३३॥

२

जोगिया जी छाइ रह्यो परदेस।
जब का बिछुडिया फेर न मिलिया, बहोरि दियो न सदेस।
या तन ऊपरि भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस।
भगवाँ भेख धरुँ तुम कारण, ढूँढत च्यारूँ देस।
मीराँ के प्रभु राम मिलण कू, जीवनि जनम अनेस ॥५३४॥

३

जोगिया जी! निसि दिन जोहाँ थाँरी बाट।
पाँव न चालै, पथ दुहेलो, आडा ओघड घाट।
नगर आई जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापन किन्हो, राख्यो नही बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बहूँ दिन बीता, अजहूँ आयो नाहि।
बिरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माँहि।
कै तो जोगी जग मे नाही, कैर बिसारी मोय।

काँई करूँ, कित जाऊँ सजनी, नैण गुमायो रोय।
आरति तेरे अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, तुम बिन तलफत प्राण ॥५३५॥

४

पिय बिन सूनो छै जी म्हाँरो देस।
ऐसा है कोई पिव कूँ मिलावै, तन मन करूँ सब पेस।
तेरे कारण बन बन डोलूँ, कर जोगण को भेस।
अवधि बदीति अजहूँ न आये, पडर होइ गया केस।
मीराँ के प्रभु कबर मिलोगे, तजि दियो नगर नरेस ॥५३६॥

५

जोगिया जी आवो थे या देस।
नैणन देखूँ नाथ मेरो, ध्याय[1] करूँ आदेस।
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
रावल कुण बिलमाइ[2] राख्यो, बिरहिन है बेहाल।
बिछडियाँ कोई भौ[3] भयो रे, जोगी, ए दिन अहला[4] जाइ।
एक बेर देह फेरि, नगर हमारे आइ।
वा सूरति मेरे मन बसे रे, जोगी छिन भर रह्यो न जाइ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो हरि आइ ॥५३७॥

पाठान्तर १,

जोगिया जी आजो इण देस।
मै जास्या देखूँ नाथ नै, धाइ करूँ आदेस।
आया सावण भादवा, भरिया जल थल ताल।
साँई क्रूँ बिलमाई राख्यो, ब्रहनी है बैहाल।

---

१ दौडकर, २ फुसला रखना, ३ युग, ४ व्यर्थ।

बिसरयाँ बोहो दिन भया, बिसरचो पलक न जाइ।
ऐक बेरी देह फेरि, नगरि हमारै आइ।
वा मूरत म्हारे मन बसे, बिसरचो पलधू न जाइ।
मीराँ के कोई नहि दूजौ, दरसण दीजो आइ।

प्रथम पाठ की अभिव्यक्ति मे अधिक सगति है।

६

म्हाँरो घर रमतो ही आई रे तू जोगिया।
कानाँ बिच कुंडल, गले बिच सेली, अग भभूत रमाई रे।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, ग्रिह आँगणो न सुहाई रे।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, दरसण द्यो मोकूँ आई रे ॥५३८॥

पद की प्रथम पक्ति मे प्रयुक्त "म्हाँरो" शब्द के स्थान पर "सारो" का प्रयोग भी कही कही मिलता है। अर्थ सगति के विचार से "म्हारो" का प्रयोग ही अधिक युक्तियुक्त प्रतीत होता है।

पद की अन्तिम पक्तियो के निम्नाकित पाठान्तर भी मिलते है:—

"मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ध्यावै सेस महेस"।

और

"मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तज दियो नगर नरेस"

७

जोगिया जी दरसण दीजो राज।
कर जोडिया करण करूँ, म्हाँरी बाहा गहवाँ की लाज।
लोक लाज जब सारी डारी, छाडचो जग उपदेस।
ब्रह्म अगिन मे प्राण दाझे, म्हाँरो सुण लीजो आदेस।
साँच मुद्रा भाव कंथा, साज्यो नष सब साज।
जोगणि होय जग ढूँढसूँ रे, म्हाँरी घर घर फेरी आस।
दरध दिवानी तन देषि आपनूँ, मलिया परम दयाल।
मीराँ के मनि आनन्द हुआ, रुम रुम षुसियाल ॥५३९॥†

पाठान्तर १,

जोगिया दरस दीजो राज, बाँह गह्यां की लाज।
लोक लाज बिसारि डारिस, छाँड्यो जग उपदेस।
विरह अगिन मे प्राणि दाझै, सुणि लिज्यो आदेश।
पाँच मुद्रा भाव कथा, नष सिष साजे साज।
जोगिण होय जग ढूँढसूँ, म्हाँरी घर घर फेरी आज।
दरद दिवानी तन जाणि आपनी, मिलिया राम दयाल।
मीराँ के मन आनन्द उपज्यौ, रोम रोम खुसियाल।।†

दोनो ही पाठो मे अन्तिम दोनो पक्तियाँ मिलन और आनन्द को ही अभिव्यक्त करती है, जब शेष सम्पूर्ण पद से वियोग और प्रतीक्षा के साथ ही साथ जोगी द्वारा प्रदर्शित अवहेलना के प्रति एक गहरी शिकायत भी लक्षित होती है। शिकायत की यह अभिव्यक्ति नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदो की विशेषता है।

८

तेरो मरम नहि पायो रे जोगी।
आसण माँडि गुफा मे बैठ्यो, ध्यान हरि को लगायो।
गल बीच सेली, हाथ हाँजरियो, अग भभूत रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो।।५४०।।

९

कोई दिन याद करोगे, रमता राम अतीत।
आसण माँडि अडिग होय बैठ्या, याही भजन की रीत।
मै तो जाणू जोगी सग चलेगा, छाँडि गया अधबीच।
आत न दीसे, जात न दीसे, जोगी किस का मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, चरण न आवै चीत।।५४१।।

पद की प्रथम पक्ति की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। इस पद और पद सं० ८ की द्वितीय पक्ति का भाव और भाषा-साम्य विचारणीय है। इस पद की द्वितीय पंक्ति की अभिव्यक्ति "याही भजन की रीत" मे आराध्य के प्रति बड़ा मार्मिक व्यग है।

१०

धूतारा जोगी एकर सूँ हँसि बोल ।
जगत बदीत करी मनमोहना, कहा बजावत ढोल।
अग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढिया खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद बभूत न बटवो, अजूँ मुनि मुख खोल।
चढती बैस[1] नैण अनियाले[2], तू घरि घरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी,चेरी भई बिन मोल ।।५४२।।

११

धूतारा जोगी एक बेरिया मुख बोल रे ।
कान कुडल गल बीच सेली, अवतेरी मुनि मुख खोल रे।
रास रच्यो बसी बट जमुना, ता दिन कीनी कोल रे।
पूरब जनम की मैं हूँ गोपिका,अधबिच पड गयो झोल रे।
जगत बदी ते तुम करो मोहन, अब क्यूँ बजाओ ढोल रे।
तेरे कारण सब जग त्याग्यो, अब मोहे कर सो लोल रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चैरी भई बिन मोल रे।।५४३।।†

उपर्युत दोनो पदो की प्रथम पक्तियो मे गहरा साम्य है। द्वितीय पद की अभिव्यक्ति कही कही असगत और अर्थहीन है। प्रथम पद पर नाथ-परम्परा का विशेष प्रभाव है और दूसरे पद पर वैष्णव-परम्परा का गहरा प्रभाव है। प्रथम पद मे तो आराध्य "धूतारा जोगी" से "एकर सूँ हँसि बोल" की प्रार्थना है और एतदर्थ प्रयास भी है और द्वितीय पद मे पूर्व जन्म के 'कोल' की याद दिलाई जा रही है। "पूरब जनम की मै हूँ गोपिका" जैसी अभिव्यक्ति वैष्णव-प्रभाव द्योतक अन्य पदो मे भी मिलती है।* इस पद की भाषा पर भी खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है।

---

१ वयस, २ तीखे।

* देखे, मीराँ, एक अध्ययन,

उपर्युक्त परिस्थिति मे प्रथम पद ही प्रामाणिकता के अधिक निकट पडता प्रतीत होता है। अभिव्यक्ति के आधार पर यह पद विशेष विचारणीय है।

१.२

जोगियो आणि मिल्यो अनुरागी।
ससा सोक अंग नहि त्रिसना, दुबध्या[१] सब ही त्यागी।
मोर मुगट पीताम्बर सोहै, स्याम बरन बडभागी।
जनम जनम को साहिब म्हॉरो, वाही सो लौ लागी।
अपणा पिव सो हिलमिल खेलॉ, हरि दरशन अनुरागी।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, अब मै भई सुभागी।।५४४।।†

पाठान्तर १,

जोगियो आणि मिल्यो अनुरागी।
ससय सोक अग नहि त्रिसना, दुबध्या सब ही त्यागी।
मोर मुकुट पिताम्बर सोहै, स्याम बरन बड भागी।
जनम जनम को मित्र हमारो, अधर सुधारस पागी।
अपणा पिय सूँ हिलमिल खेलॉ, हरि दरशन अनुरागी।
मीराँ तो गिरधर मनमानी, अब तो भई है सुभागी।†

नाथ प्रभाव द्योतक सम्पूर्ण पदो मे यही एक ऐसा पद है जिसमे मिलन और तद्जन्य आनन्द की अभिव्यक्ति हुई है। इस पद की एक और विशेषता भी है। अन्य सभी नाथ प्रभाव द्योतक पदो मे आराध्य की वेशभूषा का वर्णन नाथ-परप्परानुसार सुसज्जित जोगी के अनुकूल ही है, परन्तु यहाँ आराध्य का वर्णन वैष्णव-परम्परानुकूल है। उपर्युक्त पदाभिव्यक्ति के अनुसार मीरॉ के आराध्य 'जोगी' 'मोर मुकुट पीताम्बर' ही धारण किए हुए है। द्वितीय पाठान्तर पर ब्रजभाषा का कुछ विशेप प्रभाव स्पष्ट है। पद विशेष रूपेण विचारणीय है।

१ दुविधा।

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

आपणा गिरधर के कारणे, (वा) मीराँ बैरागण हो गई रे।
जब ते सिर पर जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमंडल और गूदड़ी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सो, माला हात लिई रे।
दोऊ कुल छाँडि भई वैरागण, हरि सो टेर दई रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण भई रे ॥५४५॥†

पाठान्तर १,

आपणा गिरधर कै कारणै, मीराँ वैरागण भई रे।
सिर पर जटा बधाई, नैणा नीद गई रे।
दड कमडल और गूदडी, सिर पर धार लई रे।
छापा तिलक बनाये छवि सो, माला हात लई रे।
दोऊ कुल छाँड़ि भई वैरागण, हरि सो टेर दई रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, गोविन्द सरण भई रे।†

पाठान्तर २,

अपणै प्रीतम के कारणै, मीराँ वैरागण भई रे।
जब तै सीस पै जटा रखाई, नैणा नीद गई रे।
दोऊ कुल छाँड भई वैरागण, हरि सो टेर देई रे।
छापा तिलक तुलसी की माला, कुल की लाज गई रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।†

पाठान्तर ३,

अपने प्रीतम के कारणै, वा मीराँ वैरागन हो गई रे।
जब से सिर पर जटा बिठाई, नैनन नीद गई रे।

दोऊ कुल छाँड़ चली वृन्दावन, हरि को टेर गई रे।
छापा तिलक माल गल तुलसी, कुल की लाज गई रे।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, गोविन्द सरण लई रे।†

उपर्युक्त तीनो पाठो मे गेय परम्परा के कारण पडा हलका हेर-फेर स्पष्ट हो उठता है। सभी पाठो मे मीराँ के प्रति किसी अन्य की ही उक्ति स्पष्ट हो उठती है। साथ ही एक और अभिव्यक्ति भी विचारणीय है। वैरागण मीराँ की वेशभूषा मे नाथ और वैष्णव, दोनो ही परम्परा का समन्वय है, जैसा कि किसी भी अन्य पद मे नही है। शुद्ध राजस्थानी मे प्राप्त ऐसे पदो मे भी एक पद (स० ६) ऐसा मिलता है जिसमे मीराँ के आराध्य जोगी की वेश भूषा वैष्णव-परम्परानुसार ही है। उक्त पद के द्वितीय पाठ पर ब्रजभाषा का अपेक्षाकृत अधिक प्रभाव भी है। उपर्युक्त दोनो ही पद विशेष विचारणीय है।

२

ऐसी लगन लगाय कहाँ तू जासी।
तुम देख्या बिन कल न पडत है, तलफ तलफ जिय जासी।
तेरे खातर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, चरण कवल की दासी।।५४६।।

पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव स्पष्ट है।

३

माई ! म्हानै रमइयो है दे गयो भेष[१]।
हम जाने हरि परम सनेही, पूरब जनम को लेष।
अग बिभूत गले मृगछाला, घर घर जपत अलेय।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, रामजी मिलन की टेक।।५४७।।†

इस पद पर भी वैष्णव और नाथ दोनो ही परम्पराओ का प्रभाव स्पष्ट है। "घर घर अलख जगाय" जैसी अभिव्यक्ति नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदो मे प्राप्त है, परन्तु "घर घर जपत अलेष" जैसी अभिव्यक्ति इस पद की विशेषता है। द्वितीय पक्ति मे प्रयुक्त "लेष" के स्थान पर "पेष" का भी प्रयोग मिलता है।

---

१ वेश।

ब्रजभाषा में प्राप्त पद

१

जोगिया मेरे तेरी।
मनसा वाचा करमणा, प्रभु, पुरवौ मेरी।
मै पतिवरत पीव की, हो मोल लयी चेरी।
तुम बिन कोई दूजो देवा, सुपनै नहि हेरी।
माता पिता सुत बधु द्वारा, अै पाँव मे बेरी।
तुम बिन कोऊ नाही मेरो, प्रगट कहूँ टेरी।
एक बिरियाँ[१] मेरे नगर, दे जावो फेरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, राखो चरण मेरी ॥५४८॥

२

जोगिया री सूरत मन मे बसी।
नित प्रति ध्यान धरत हूँ. दिल मे, निसि दिन होत कुसी।
कहा करूँ, कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीराँ कहै प्रभु कबर मिलोगे, प्रीति रसीली बसी ॥५४९॥

३

जोगिया जी, तू कब रे मिलोगे आई।
तेरे ही कारण जोग लियो है, घर घर अलख जगाई।
दिवस न भूख, रैण नही निद्रा, तुम बिन कछु न सुहाई।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, मिल कर तपत बुझाई ॥५५०॥

४

जोगिया से प्रीत किया दुख होई।
प्रीत कियाँ सुख न मोरी सजनी, जोगी मीत न कोई।
राति दिवस कल नाहि परत है, तुम मिलिया बिन मोइ।

---

१ बार।

ऐसी सूरत या जग माहि, फेरि न देखी सोई।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलिया आणन्द होई ।।५५१।।

५

जोगी मत जा, मत जा, पॉव परूँ मै तेरी।
प्रेम भक्ति को पैडो ही न्यारो, हम कूँ गैल बता जा।
अगर चन्दन की चिता रचाऊँ, अपने हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपने अग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, जोत मे जोत मिला जा ।।५५२।।

उपर्युक्त सभी पदो मे प्रयुक्त क्रिया पदो पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मै ने सारा जगल ढूँढा रे, जोगिडा ना पाया।
काना बिच कुण्डल, जोगी गले बिच सेली, घर घर अलख जगाये रे।
अगर चन्दन की धुनी, जोगी, धकाई, अंग बीच भभूत लगाये रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सबद का ध्यान लगाये रे।
।।५५३।।†

उपर्युक्त पद गुजराती पद सग्रहो मे ही प्राप्त है, यद्यपि पद की भाषा पर गुजराती का कोई विशेष प्रभाव नही प्रतीत होता।

इस पद से व्यक्त होनेवाली भावनाये नाथ-प्रभाव द्योतक प्राय: अन्य पदो मे भी मिल जाती है।

२

मलवो[१] जटाधारी जोगेश्वर बाबा, मल्यो[२] रे जयधारी।
हाथ मॉ झारी हूँ तो बाल कुँवारी, वाला, देवल[३] पूजवाने चाली।

---

१ मिलो, २ मिल गया, ३ मन्दिर।

साड़ी फाड़ी ने कफनी कीधी, वाला, अंग पर विभूति लगाडी।
आसण बाली बालो मढी माँ बैठो, वाला घेर घेर[1] अलख जगाड़ी।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, प्रेम नी कटारी मुने मारी ।।५५४।।

उपर्युक्त की पद प्रथम पक्ति मे 'मलवो' और 'मल्यो' दोनो ही शब्दों का प्रयोग हुआ है। अर्थ सगति के दृष्टिकोण से यह अशुद्ध है। सम्पूर्ण पदाभिव्यक्ति के देखते 'मलवो के बदले 'मल्यो' प्रयोग ही शुद्ध प्रतीत होता है।

"घेर घेर अलख जगाडी" जैसी भावना नाथ-प्रभाव द्योतक अधिकाश पदो की विशेषता है।

३

उठ तो चाले अवधूत, मरी माँ कोई ना बिराजे, उठ चले अवधूत।
पथी हतो[2] ते पथे लाग्यो, आसन पड़ रही विभूत।
चेलो साथी कोई ना सूधर्यो, सब ही नीबड़या[3] कपूत।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, टूट तो गए घर सूत ।।५५५।

यह पद अपनी तरह का एक ही है। पदाभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

---

१ घर, २ था, ३ निकले।

संतमत-प्रभाव द्योतक पद

राजस्थानी में प्राप्त पद

१

ग्यान कूँ बाण वसी हो, म्हॉरॉ सतगरु जी हो।
बखतर फूटी हिय, भीतर चालि खुसी।
बाहरि घाव दीसत नही कोई, उरि बीच पूरि खसी।
तन तरवारि भालिका भालका, सबदी की बरछी धसी।
राम दिवानी मै तो पलक न बीसारूँ, जणि' र करावो (जगमे) हँसी,
।।५५६।।†

पदाभिव्यक्ति मे असगति है। साथ ही पदाभिव्यक्ति से यह भी नही आभासित होता कि पद मीरॉ रचित ही है।

२

बड़े घर ताली लागी रे, म्हॉरॉ मन री डनारथ भागी रे।
छीलरिये म्हॉरो चित्त नही रे, डाबरिये कुण जाब।
गगा जमुना सो काम नही रे, मै तो जाय मिलूँ दरियाव।
हाल्या मोल्यॉ सूँ काम नही रे, सीख नही सरदार।
कामदारॉ सूँ काम नही रे, लोहा चढे सिर भार।
कामदारॉ सूँ काम नही रे, मै तो जवाब करूँ दरबार।
काचा कथीर सूँ काम नही रे, म्हॉरो हीरा को व्योपार।
सोना रूपॉ सूँ काम नही रे, लोहा चढे सिर भार।
भाग हमारो जागियो रे, भयो समद सूँ सीर।
अमृत प्याला छाडि के, कुण पीवै कडवो नीर।
पापी कूँ प्रभु परचो दियो, दियो रे खजानो पूर।
मीरॉ के प्रभु गिरिधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर ।।५५७।।†

उपर्युक्त पद राजस्थान के जन-प्रिय भजनो की लय पर है। भावाभिव्यक्ति मे अर्थ-सगति नही है।

३

चालो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का हौज, हसा केल्याँ[1] करै।
ओढण लज्जा चीर, धीरज को घाघरो।
छिमता कॉकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल दुलडी दरियाव, साँच को दोवडो।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूठणो।
बेसर हरि को नाम, चूड़ो चित उजलो।
जोहर सील सतोष, निरत को घूघरो।
विदली गज अरू हार, तिलक गुरु ग्यान को।
साज सोलह सिणगार, पहिर सोने राखड़ी।
सॉवलियॉ सूँ प्रीति, औरॉ सूँ आखडी।
पतिबरता की सेज प्रभु जी पधारिया।
गावे मीरॉ बाई दासी कर राखिया॥५५८॥†

इस तरह के गीत राजस्थान मे कीर्तन मडलियो मे विशेष रूप से प्रचलित है। पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। उपर्युक्त दोनो पदो की भाषा आधुनिक राजस्थानी कही जा सकती है।

४

राम नाम मेरे मन बसियो, राम रसियो रिझाऊँ, ए माय।
मंद भागिण करम अभागिन, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।
बिरह पिजर की बाड सखी री, उठ कर जी हुलसाऊँ[2], ए माय।
मन कूँ मार सजूँ सतगरु सूँ, दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।

---

१ केलि, २ प्रसन्न करूँ।

डाको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढाऊँ, ए माय।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ मोरचग सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
नीरत करूँ, मै प्रीतम आगे, तौ अमरापुर पाऊँ, ए माय।
मो अबला पर किरपा कीज्यो, गुण गोविन्द को गाऊँ, ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, रज चरणा की पाऊँ, ए माय।। ५५९ ।।

पाठान्तर १,

रसियो राम रिझाऊँ ए माइ, राम नाम मेरे मन बसियो।
बिरहै पीड की बात सखी री, काँसूँ कहूँ समझाई।
तन करि ताल र मन करि मिरदग, सुणतहि सुरति जगाऊँ ए माई।
सील सिगार साज तन ऊपर, प्रभु के सनमुख जाऊँ, ए माई।
लोक लाज कुल सक निवारी, राम जी मिल्या सुख पाऊँ ए माई।
मीराँ के प्रभु तुमरे मिलन कूँ, चरण कमल बलि जाऊँ ए माई।

५

म्हाँरो जनम मरण रो साथी, थाँ ने नही बिसरूँ दिन राती।
तुम देख्याँ बिन कल न पडत है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ चढ पंथ निहारुँ, रोय रोय अंखियाँ राती।
यो ससार सकल जग झूठो, झूठा कुल रा न्याती।
दोऊकर जोड्या अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सदगुरु हस्त धर्‌यो सिर ऊपर, अकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रुप निहारुँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा चित राती ।।५६०।।

उपर्युक्त पद मे विभिन्न भावनाओ का समावेश हुआ है। वियोग, निर्वेद और मिलन तीनो भावनाओ की क्रमश अभिव्यक्ति हुई है। अत. पूर्वापर सबध मे असम्बद्धता आ गई है। "म्हाँरो" जनम

मरण रो साथी· · ·रोय रोय अखियाँ राती ” से वियोग, “यो ससार · दे समझाती” से निर्वेद और अन्तिम दो पक्तियो से मिलन-जनित आनन्द ही व्यक्त होता है ।

६

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी ।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ बिरह दिवानी ।
रात दिवस कल नाहि परत है, जैसे मीन बिन पानी ।
दरस बिना मोहि कछु ना सुहावै, तलफ तलफ मर जानी ।
मीराँ तो चरणन की चेरी, सुण लीजै सुख दानी ॥५६१॥

प्रथम पक्ति मे 'हो गुरु ग्यानी' के बदले कही कही 'हो जी गुमानी' पाठ भी मिलता है । चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित निम्नाकित पद की और इस उपर्युक्त पद की प्रथम पक्तियो मे भाव और भाषा का गहरा साम्य है, यद्यपि शेष पदाभिव्यक्ति सर्वथा भिन्न पडती है ।

मिलता जाज्यो राज गुमानी, थाँरी सूरत देख लुभानी ।
म्हाँरो नाम थे जाणो बूझो, मै हूँ राम दिवानी ।
आमी सामी[1] पोल[2] नन्द की, चन्दन चोक निसानी ।
थे म्हाँरे घर आवो बसी वाला, करस्याँ बहुत लडानी[3] ।
करु रसोई सोध[4] की जी, भोत करुँ मिजमानी ।
थे आवो हरि धेन चरावण, मै जल जाना पाणी ।
थे नन्द जी का लाल कँहावो, मै गोपी मस्तानी ।
जमना जी के नीराँ तीराँ, थे हरि धेन चराज्यो ।
चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छबि, नित बरसाणे आज्यो ।

चन्द्रसखी के नाम पर प्रचलित इस पद मे पुनरुक्ति और अर्थ-असम्बद्धता दोनों ही दोष है, जो मीराँ के नाम पर प्रचलित पद मे नही है। अत. बहुत सम्भव प्रतीत होता है कि मीराँ का पद ही गेय परम्परा फलस्वरूप चन्द्रसखी के नाम पर चल पडा हो ।

---

१ आमने सामने, २ सदर दरवाजा, ३ खातिरदारी, ४ शुद्धता ।

७

आज्यो आज्यो गोविन्द म्हॉरे म्हैल, निहारॉ थॉरी वाटडली खडीजी।
म्हॉरे आज्यो।

तन का त्यागू कपडा जी, अग ते परभात,
खडी जोवती राह मे जी, सतगरु पोछे दाता आय।
पियालो लियॉ हाजर खडी जी पन।
साधु हमारी आतमा जी, हम साधन की देह,
रोम रोम मे रम रही जी, ज्यूॅ बादल मे मेह।
सुरत हरि नाम से लगी जी।
मीरॉ हरि लाडली जी, तुम मीरॉ के स्याम,
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, दरसण द्यो गोविन्दा आय।
सुरत निज नाम से लगी जी ॥५६२॥ †

८

आवो आवो जी रग भीना, म्हॉरे म्हैल, प्याला तो लियॉ हाजर खडी
सत जुग मे सूती रही, त्रेता लई जगाय।
द्वापर मे समझी नही, कलजुग पोहॅच्यो आय।
सत्तगरु शब्द उचारिया जी, बिनती करो सुनाय।
मीरॉ नै गिरधर मिल्यॉ जी, निरभै मगल गाय ॥५६३॥ †

उपर्युक्त दोनो पदो मे अर्थ-सगति नही है।

९

राणा जी गिरधर रा गुण गास्यॉ।
गुर परताप साध की सगति, सहजै ही तिर जास्यॉ।
म्हॉरे तो पण चरणामृत को, निति उठि देवल जास्यॉ।
कथा करितण सुख निसि बासर, महाप्रसाद ले धास्यॉ।
सुनि सुनि बचन साधरा, मुषरा निरत करॉ और नाचॉ।

प्रेम प्रतीति जाय निसी बासर, बहुरि न भो[1] जल आस्याँ।
लोक वेद की काण न मानूँ, राम तणै रग राँचाँ।
नाँव अमोलिक[2] इमरित रूपी, सिर कै साँटै लास्याँ।
उमड़ भायो म्हाँरे ऊपर, 'विषूरो प्यालो धरयाँ।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, पीवत मन डुलास्याँ ॥५६४॥ †

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। सत और वैष्णव दोनो ही मतो का प्रभाव समान रूपेण लक्षित हो उठता है।

१०

सतगुरु म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।
थे छो म्हाँराँ गुण रा सागर, जोगण म्हाँरो मति जाज्यो जी।
लोक न धीजै[3], म्हाँरो मर्न न पतीजै[4], मुखडारा सबद सुणाज्यो जी।
म्हे तो दासी जनम जनम की, म्हाँरे आँगणि रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेडा पार लगाज्यो जी ॥५६५॥†

११

पीया की खुमार, मै तो बावरी भई ये माय।
अमल न खायो आयो मोकूँ, यो इचरज देखो भार।
यातन की मै बीण बजाऊँ, रीग रीग[5] बाँधू तार।
समझ बूझ मिल जायँ दुलारो, जद रीझै रिझवाल ॥५६६॥†

उपर्युक्त पद के विषय मे श्री सूर्यकरण जी चतुवेदी लिखते है, "मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर" जैसी छाप न होने पर भी यह पद भाव और भाषा की दृष्टि से मीराँ जी का है।"

मेरे विचार से ऐसे पदो को प्रक्षिप्त मानना ही युक्तियुक्त है।

---

१ भव, २ अमूल्य, ३ विश्वास करै, ४ मन नही भरता, विश्वास नही होता, ५ रग रग।

१२

जागो म्हॉरा, जगपति राइक, हॅसि बोलो क्यूँ नहि।
हरि छो जी हिरदा माहि, पट खोलो क्यूँ नहि।
तन मन सुरति सॅजोई, सीस चरणॉ धरूँ।
जहॉ जहॉ देखूं म्हॉरो राम, जहॉ सेवा करूँ।
सदकै करूॅ जी सरीर, जुग जुग वारणै।
छोडि छोड़ि कुल की लाज, साहिब तेरे कारणै।
थोडि थोडि करूॅ सिलाम, बहोत करि जाण ज्यौ।
बन्दि हूॅ खानाजाद, महीर, करि मान ज्यौ।।५६७।। †

उपर्युक्त पद मीरॉ के पदो के अन्तर्गत् ही प्राप्त है, यद्यपि पदाभिव्यक्ति से ऐसा कही से आभासित नही होता है।

१३

सॉवरियों म्हानै भॉग पिलाई, मेरी अॅखिया मे लाली छाई।
काहे री कूँडी (राधे) काहे रा घोटा, काहे री सुवाफी बणाई।
तन कर कूँडी प्यारे मन कर घोटा, सुरती री सुवाफी बणाई।
कदम नीचे छॉण पिवाई।
पॉचो गुवाल मिल घोटन बैठे श्री गगा भर ल्याई जलझारी।
प्रेम करि (राधेजी को) अधक चखाई।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, प्रेम की रीत निभाई।
चरण मॉहि मनड़ो लगाई ।।५६८।। †

प्रभुजी मन माने तब तार।
नदिया गहरी नाव पुरानी, अब कैसे उतरूॅ पार।
वेद पुराना सब कुछ देखे, अन्त न लागे पार।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, नाम निरन्तर सार।।५६९।। †

१४

करना फकीरी तो क्या दिलगीरी, सदा मगन मन रहना रे।
कोई दिन बाड़ी तो कोई दिन बगला कोई दिन जंगल रहना रे।
कोई दिन हाथी कोई दिन घोडा, कोई दिन पाँखो से चलना रे।
कोई दिन गाद्दी कोई दिन तकिया, कोई दिन भोय मे पडना रे।
कोई दिन खाना तो कोई दिन पीना, कोई दिन भूख ही मरना रे।
कोई दिन पहनाँ तो कोई दिन ओढा, कोई दिन चिथरा पैरना रे।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, ऐसा कता करना रे॥५७०॥†

मिश्रित भाषाओं में प्राप्त पद

१

कित गयो पंछी बोल तो।
कची रे मटीदा महल चुणाया, गोरवाँ ही गोरवाँ[1] डोल तो।
गुरु गोविन्द को कह्यो न मान्यो, ऐंडो ही ऐंडो डोल तो।
ऐंठी रेठढी पाग झुका तो, छाया निरख तो चाल तो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, हरि चरणा चित ल्यावतो।
॥५७१॥†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा असगत ही है।

२

बाल्हा, मै वैरागिण हूँगी हो।
जो जो भेख म्हाँरो साहिब रीझै, सोइ सोइ धरुँगी हो।
सील सतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड रहूँगी हो।
जाको नाम निरजन कहि, ताको ध्यान धरूँगी हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरि गुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी हो।

---

१ बारी।

या तन की मै करूँ कीगरी, रसना नाम रटूँगी हो।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, साधाँ सग रहूँगी हो।।५७२।।†

पद के सभी क्रियापदो पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। प्रत्येक पक्ति के अन्त मे 'हो' का प्रयोग अवधी प्रभाव को भी इगित करता है।

३

हेली, सुरत सोहागिन नार, सुरत मोरी राम से लगी।
लगनी लहगा पहिर सुहागिन, बीती जाय बहार।
धन जोबन दिन चार का रे, जात न लागे बार।
झूठे बर को क्या बरूँ जी, अधबीच मे तज जाय।
बर बरलाँ राम जी, म्हाँरो चूडो अमर हो जाय।
राम नाम का चुडला हो, निरगुन सुरमो सार।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, हरि चरणा की मै दासी।
चालाँ वाही देस प्रीतम पाँवाँ, चालाँ वाही देस।
कहो तो कुसुम्बी झारी संगावा, कहो तो भगवाँ भेख।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो तो छिटकावाँ केस।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सुनियो बिड़द नरेस ।।५७३।।†

उपर्युक्त पद स्पष्ट रूप से दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है। "हेली सुरत सुहागन नार · हरि चरणा की मै दासी" पहला और "चालाँ वाही देस · सुनियो बिडद नरेस" दूसरा। यह दूसरा अश स्वतत्र पद के रूप मे भी प्रचलित है। दोनो अर्द्धांशो मे कोई भाव साम्य नही है। इस दूसरे अश की भाषा भी ठेठ राजस्थानी है, जब कि प्रथमांश की भाषा पर ब्रज और खडी बोलियो का भी प्रभाव स्पष्ट हो उठता है।

पाठान्तर १,

पिर धीवी माया जल मे पड़ी।
तू तो समझि सुहागण सुस्ता नारि, पलक कमरे रामसू लगी
लगनी लँहगो पहरि सुहागण, बीतौ जाई बिव्हार।
धन जोवन दिन च्यार का जातन लागे बार।
राम नाम को चुडलो पहरौ, सुमरण काजल सार।
माला ल्यौ हरिनाम की उतारि चलौ पैली पार।
अैसा बरकौ कांई बसूजी, जनमत ही मर जाय।
बर बरस्याँ म्हाँरो साँवरोजी अमर चूड़ा होइ जाय।
जनमै मरै करै घर केता, बिखराता नर नारि।
मीराँ रत्ती राम सूँजी, सावरियो भरतार ॥†

पाठान्तर मे पूर्व पाठ का द्वितीयाश नही है। इससे मेरे उपर्युक्त कथन का समर्थन होता है।

४

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुरन आता।
अब के मोसर[1] ज्ञान बिचारो राम राम मुख गीता।
सतगुरु मिलिया सुँज पिछानी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती।
सगुरा सूरा अमृत पीवै, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भयो मेरो मन सुख मे, गोविन्द का गुण गाती।
साहिब पाया आदि अनादि, नातर भव मै जाती।
मीराँ कहै इक आस आप की, और सूँ सकुचाती ॥५७४॥†

पद की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव स्पष्ट है। विचारणीय बात है कि उपर्युक्त तीनो ही पदो की भाषा खडी बोली और ब्रज-भाषा दोनो ही से प्रभावित है। साथ ही तीनो की अभिव्यक्ति निर्वेद-द्योतक ही है। राजस्थानी मे प्राप्त कुछ पदो से भी निर्वेद की भावना झलकती है, तथाँपि अधिकाश पदाभिव्यक्तियाँ वियोगात्मक ही है।

---

१ अवसर।

५

मै तो हरि चरणन की दासी, अब मै काहे को जाऊँ कासी।
घट ही मे गगा, घट ही मे जमुना, घट घट है अविनासी।
घट ही मे पुसकर औलेधेश्वर, लछिमन कवर बिलासी।
जगेनाथ गगासागर है, साखी गुपाल ब्रजवासी।
सेतु बध रामेश्वर ईश्वर मूलबटी सुर जासी।
अवधपुरी मधुपुरी द्वारिका, चित्रकूट यमुना सी।
गोवरधन गोकुल वृन्दावन, बीच मडल चौरासी।
हरिद्वार कुरुखेत जनकपुर, गोदावरी हुलासी।
तीरथ बडे प्रयाग गया जी, कासी तरुवर बासी।
गिरिनार विन्ध्याचल सगिनार रगे है, सुघर कपिल दुखनासी।
बदरी नाथ केदार गगोतरी, बैजनाथ कैलासी।
पचबटी पपापुर रुक्मिणी, देब कपिल युवरासी।
नैमषार श्रगीरिष मिसरिष, कासी पाप बिनासी।
मुट्टुकनाथ अस मानसरोवर, भानलता अरु हॉसी।
मीरॉ के प्रभु गिरधर नागर, सहज कटै यम फॉसी ॥५७५॥†

पदाभिव्यक्ति सर्वथा अर्थहीन है। भाषा की दष्टि से भी यह विचारणीय है। प्रथम और अन्तिम पक्ति मे प्रयुक्त क्रियापदो के आधार पर भाषा खडी बोली स प्रभावित कही जा सकती है। शष सम्पूर्ण पद की भाषा को बोलचाल की भाषा कहा जा सकता है। ऐसे अर्थहीन पदो को प्रामाणिक सग्रह मे स्थान नही मिलना ही उपयुक्त होगा।

व्रजभाषा में प्राप्त पद

१

कोई कुछ कहै, मन लागा।
ऐसी प्रीत लगी मन मोहन सूँ, ज्यूँ सोने मे सुहागा।
जनम जनम को सोया मनुवाँ, सतगुरु सब्द सुण जागा।
माता पिता सुत कुटुम्ब कबीला, टूट गया ज्यूँ तागा।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, भाग हमारा जागा ।।५७६।।

२

मोहि लागी गुरु चरनन की।
चरनन बिन कछुवै न भावै, जगमाया सब सपनन की।
भवसागर सूखि गयो है, फिकर नहि मोहि तरनन की।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर,आस वही गुरु सरनन की ।।५७७।।

३

गली तो चारो बन्द हुई, मै हरि सो कैसे मिलूँ जाय।
ऊँची नीची राह रपटीली, पाँव नही ठहराय।
सोच सोच पाँव धरूँ जतन से, बार बार बलि जाय।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ्या न जाय।
पिया दूर पथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाय।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैड पैड बटमार।
है विधना कैसी रचि दीन्ही, दूर बस्यो म्हाँरो गाम।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन से बिछुडी मीराँ, घर में लीन्ही लाय ।।५७८।।

"म्हाँरो" और "झीणो" जैसे दो राजस्थानी के शब्दो के सिवा सम्पूर्ण पद की भाषा ब्रजभाषा ही है। पद की आँठवी पक्ति मे "मीराँ" के प्रभु गिरिधर नागर" के प्रयोग की सार्थकता केवल टेक के रूप मे हो सकती है।

४

हेरी मै तो प्रेम दिवानी, मेरो दरद न जाने कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस बिध सोना होय।
गगन मडल पै सेज पिया की, किस बिध मिलना होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय।
जौहरी की गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
दरस की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिला नहि कोय।
मीराँ की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद साँवलियाँ होय।।५७९।।

पाठान्तर १,

राम की दिवानी, मेरो दरद नहि जाने कोई।
घायल की गति घायल जानै, जो कोई घायल होई।
शेष नाग पै सेज पिया की, किस बिध मिलना होई।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, वैद मिला नही कोई।
मीराँ की पीर प्रभु तभी मिटैगी, वैद साँवलियाँ होई।†
द्वितीय पाठ मे वह भाव तन्मयता नही जो पहले पाठ मे है।

५

मीराँ मनमानी सुरत सैल असमानी।
जब जब सुरत लगै वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यो हिये पीर तीर सम सालत, कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहि नीद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।
ऐसा बैद मिले कोई भेदी, देस विदेस पिछानी।
खोजत फिरो भेद वा घर को, कोई करत बखानी।
रैदास सन्त मिले मोहि सतगुरु, दीन्ही सुरत सहदानी।
मै मिली जाय पाय पिय आपणा, तब मोरी पीर बुझानी।
मीराँ खाक खलक सिर डाली, मै अपना घर जानी।।५८०।।

पदाभिव्यक्ति विशेष महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे रदास का गुरु होना अति स्पष्ट हो जाता है। साथ ही पदाभिव्यक्ति से यह भी सुस्पष्ट हो जाता है कि "गुरु रैदास" और "आराध्य पिय" दो विभिन्न सत्ताएँ है।

कुछ ठेठ उर्दू शब्दो का प्रयोग विशेष विचारणीय ह। सम्भवत यह सधुक्कडी भाषा का ही प्रभाव हो।

६

सखी, तैंने नैन गर्माय दिया रोय।
बालापन की चटक चुदरिया, दिन दिन मैली होय।
बालपन लडकिन सग खेली, रग रूप दियो खोय।
वाही सोच मीराँ भई दिवानी, तेरो दरद न जानै कोय।
लेनहार लेने को आये, ले चल ले चल होय।
मीराँ कहै प्रभु गिरिधर नागर, वैद साँवलियाँ होय॥५८१॥†

पदाभिव्यक्ति मे सगति का अभाव है। पद की तीसरी और चौथी पक्तियाँ अर्थहीन ही प्रतीत होती है। पद की अन्तिम तीन पक्तियो का "मेरो दरद न जाने कोय" पद स० ४ से साम्य सुस्पष्ट है। अत इस परिस्थिति मे पद को प्रामाणिक न मानना ही अधिक युक्तिसगत है।

७

पिया, मोहि आरति तेरी हो।
आरति तेरे नाम की, मोहि साँझ सबेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेल जलाऊँ प्रेम की, बालूँ दिन राती हो।
पाटी पारूँ ज्ञान की, बुद्धि माँग सवारुँ हो।
पिया तेरे कारणे, धन जोबन वारुँ हो।
सेजड़िया बहु रगिया, चगा फूल बिछाया हो।
रैण गई तारा गिणत, प्रभु अजहू न आया हो।
आयो स्रावण भादवो, वर्षा ऋतु आई हो।

त्रिकुटी महल बना है झरोखा,तहाँ से झाँकी लगाऊँ री।
सुन्न महल मे सूरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ री।
मीराँ के प्रभु गिरिधर नागर, ब्रार बार बलि जाऊँ री ॥५८५॥†

उपर्युक्त पद की भाषा पर आधुनिक प्रभाव विशेष विचारणीय है।

गुजराती में प्राप्त पद

१

मार्या रे मोहना बाण, धूतारे, मने मार्या मोहना बाण।
ध्रू ने मार्या, प्रह्लदा ने मार्या, ते ठरीना बेठा ठाम।
शुकदेव ने गर्भवास माँ मार्या, ते चारे युग माँ परमाण।
हिरण्यकश्यप भी मारी वा'ले,उगार्यो प्रहलाद, दैत्यनो फोड्यो छे ठाम।
सायर पान बाँधी वा'ले सेन उतारी, रावण हण्यो एक बाण।
मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण, हमने पार उतारो स्याम ॥५८६॥†

२

तमे जानि लियो समुद्र सरीखा, मारा वीरा रे।
आदिल तो खोली ने दीवो करोरे होजी। टेक।
आरे काया माँ छे वाडियो रे होजी।
माहे मोर करे छे झीगोरा रे, मारा०।
आरे काया माँ छे सरोवर रे होजी,
माहे हँस तो करे छे कलोला रे, मारा०।
आरे काया माँ छे हाटणा रे होजी,
तमे वणज व्यापार करो ने अपरपारा रे, मारा०।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर ना गुण होजी,
दे जो अमने संत चरणे बासेरा रे, मारा० ॥५८७॥†

३

मदिरियमाँ दिवडा बिना नुं अधारूँ।
खलमल्याँ देवल उभी रही थाँ भली, भाटुं नहि झाले अेना भारू रे।

स्याम पधारियाँ सेज में, सूती सेन जगाई हो।
तुम हो पूरे साइयाँ, पूरा सुख दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो॥५८२॥†

पदाभिव्यक्ति मे असगति है। प्रथम अर्द्धांश से वियोग भावना व्यक्त होती है, जब कि पद की दसवी और ग्यारहवी पक्तियो से मिलन-जनित आनन्द ही स्पष्ट हो उठता है। अन्तिम पक्ति से फिर वियोग की स्थिति ही लक्षित होती है।

पाठान्तर १,

स्याम तेरी आरति लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन दुरमति भागा हो।
या तन को दिवला करो, मनसा की करूँ बाती हो।
तेल भरारों प्रेम का, बारो दिन राती हो।
पाटी पारो ज्ञान की, मति माँग सँवारूँ हो।
तेरे कारन साँवरे, धन जोबन वारों हो।
यह सेजिया बहुरग की, बहु फूल बिछाए हो।
पथ मै जोहो श्याम का, अजहूँ नहि आये हो।
सावन भादो उमड़ो, वर्षा ऋतु आई हो।
मोँह घटा घन घेरि कै, नैननि झरि लाई हो।
माता पिता तुम को दियो, तुम्ही भल जानो हो।
तुम तजि और भरतार को, मन मे नहि आनो हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

इस पाठान्तर की भाषा पर खडी बोली का प्रभाव सुस्पष्ट है, जो विचारणीय है।

"माता पिता तुम को दियो" जैसी अभिव्यक्ति विशेष विचारणीय है।

पाठान्तर २,

पिया मोहे आरति तेरी हो।
तेरी तेरा नॉव की, मोहि साँझ सबेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेलज सीचूँ प्रेम को, जालूँ दिन राती हो।
चुन चुन कलियाँ सेज बिछाऊँ, अन्तर सियाऊँ हो।
बाटज जोऊँ साँझ की, पिया अजहूँ न आये हो।
चूक परी तो माफ करीजै, दरशन दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

पदाभिव्यक्ति मे असगति है।

पाठान्तर ३,

पिया मोहि आरति तेरी हो।
आरति तेरे नाम की, मोहि साँझि सबेरी हो।
या तन को दिवला करूँ, मनसा की बाती हो।
तेल जलाऊँ प्रेम की, बालूँ दिन राती हो।
पाटी पारूँ ज्ञान की, बुद्धि माँग सँवारूँ हो।
तो पर मेरे साँइयाँ, धन जोबन वारूँ हो।
सेजडिया बहु रगिया, चगा फूल बिछाया हो।
रैन घटी मग जोवती, प्रभु अजहूँ न आया हो।
मेहा घ्टयो घन घेरि, बीज झलाझल हो रही।
स्याम पधार्‌या सेज मे, सूती सेन जगाई हो।
तुम पुरातन पुरख, पूरा सुख दीजै हो।
मीराँ व्याकुल विरहणी, अपनी कर लीजै हो।†

उपर्युक्त पाठ प्रथम पाठ का ही गेय रूपान्तर है। इस रूपान्तर की अभिव्यक्ति भी असगत ही है।

हाथ माँ नाटकडी घरोघर घुमती, कोई ने आलो ओधारूँ रे।
उठी गयो वाणियोने पडी रही हाटडी रे, जमडा करे छे धीगाणुँ रे।
बाई मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवता जमडाने पाछो वालो रे।
॥५८८॥†

४

जुनूँ थयूँ रे, देवल, जुनूँ थयूँ।
मारो हँसलो नानो ने देवल जुनूँ थयू।
आ रे काया रे हँसा, डोलवाने लागी रे।
पडी गया दाँत, माँयली रेखू तो रही।
तारे ने मारे हसा, प्रीत्युँ बँधाणी रे।
उडि गयो हस, पाँजर पडी रे रहियु।
बाई मीराँ कहे छे, प्रभु गिरधर ना गुण।
प्रेम ना प्यालो तमने, पाऊँ ने पीऊँ ॥ ५८९ ॥†

५

आरत तोरी रे प्रिय, मोरी आरत तोरी रे।
आरत तोरा नाम की, भजलो साँझ सबेरी।
श्रावण भादरवो उलट्यो रे, बृखा ऋतु आगी रे।
बीज झबाझब हो रही रे, मेह झड़ लागी रे।
आतन को दिवडा करूँ रे, मनस करूँ बाती रे।
तेल जलावूँ प्रेमनाँ रे, मोती माँग समाऊँ रे।
प्रीया तोरणे कारणो रे, भर जोबन वारूँ रे।
तम हो पुरण पुराणा रे, पुरण सुख देजो रे।
मीराँ बाई ब्रेहनी व्याकुली, अपणी कर ले जो ले ॥५९०॥†

यह पद मिश्रित भाषा मे प्राप्त पद सं० ५८२ का ही गुजरातीकरण सा प्रतीत होता है।

शब्दानुक्रमणी

मीरॉं के जीवन सम्बन्धित विशिष्ट व्यक्ति तथा स्थान